# ... जिसका इन्तिज़ार था

माहिरुल क़ादरी

अनुवादक
कौसर यज़दानी

| क्या | कहां |
| --- | --- |

# कुछ पुस्तक के बारे में

प्रस्तुत पुस्तक 'जिसका इन्तिज़ार था' माहिरुल क़ादरी साहब की लोकप्रिय उर्दू पुस्तक 'दुर्रे-यतीम' का हिन्दी अनुवाद है। 'दुर्रे-यतीम' का अर्थ है 'यतीम मोती'। यह पुस्तक इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की जीवनचर्या है जो उपन्यास की शैली में लिखी गई है।

इस पुस्तक का उर्दू एडीशन अति लोकप्रिय हुआ है और अब तक इसके कई एडीशन प्रकाशित हो चुके हैं। 'जिसका इन्तिज़ार था' को सबसे पहले सन् 1979 ई. में इस्लामी साप्ताहिक 'कान्ति', नई दिल्ली ने अपने विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया था, जिसे बहुत पसन्द किया गया। हिन्दी जगत की बार-बार माँग पर इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक हिन्दी जगत् में बहुत पसंद की जाएगी और दयामूर्ति, विश्व पथ-प्रदर्शक और विश्व-उद्धारक हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के जीवन और उद्देश्य से मानव को परिचित कराने का एक बेहतरीन ज़रिआ सिद्ध होगी।

**नसीम ग़ाज़ी फ़लाही**
*अध्यक्ष*
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट, दिल्ली

# सांकेतिक शब्दार्थ

संक्षिप्त रूप में प्रयुक्त कुछ ऐसे शब्द इस पुस्तक में आएंगे, जिनका पूर्ण रूप अर्थ किताब के अध्ययन से पूर्व जान लेना ज़रूरी है, ताकि अध्ययन के दौरान कोई परेशानी न हो। वे शब्द निम्नलिखित हैं:—

**अलैहि :—** इसका पूर्ण रूप है, **'अलैहिस्सलाम'** अर्थात् 'उन पर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों ने नाम के साथ यह आदर और प्रेम सूचक शब्द बढ़ा देते हैं।

**रज़ि० :—** इसका पूर्ण रूप है, **'रजियल्लाहु अन्हु'** इसके मायने हैं, 'अल्लाह उनसे राजी हो!' **सहाबी** के नाम के साथ यह आदर और प्रेम सूचक दुआ बढ़ा देते हैं।

**'सहाबी'** उस खुश किस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल०) से मुलाकात का अवसर मिला हो। **सहाबी** का बहुवचन **सहाबा** है और स्त्रीलिंग **सहाबियः** है।

**रज़ि०** अगर किसी **सहाबियः** के नाम के साथ प्रयोग हुआ हो तो **रजियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं अगर **सहाबा** के लिए प्रयोग हो तो **रजियल्लाहु अन्हुम** कहते हैं।

**सल्ल० :—** इसका पूर्ण रूप है, **'सल-लल-लाहु अलैहि वसल्लम'** जिसका अर्थ है, 'अल्लाह उन पर रहमत और सलामती की बारिश करे!' हजरत मुहम्मद (सल्ल०) का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो आदर और प्रेम के लिए दुआ के ये शब्द बढ़ा देते हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह—कृपाशील, दयावान के नाम से

# अपनी बात

उपन्यासों और कहानियों का आधार मन की गढ़ी हुई चीज़ों पर होता है, जिस में कहानीकार या उपन्यासकार की कल्पनाएं अपना रंग भरती हैं। 'वह यतीम' भी उपन्यास शैली ही में लिखा गया है, पर इस उपन्यास का 'नायक' वह 'महामानव' है, जिस से बेहतर इन्सान पर आज तक सूर्य उदित नहीं हुआ। इसलिए 'वह यतीम' में एक शब्द भी ऐसा न मिलेगा, जो कुरआन के शब्दों के अनुसार 'जो कुछ वह कहता है, वह्य है जो अवतरित होती है' आप (सल्ल०) के मुख से न अदा हुआ हो और इसमें शामिल कर दिया गया हो।

इस उपन्यास की घटनाएं ऐतिहासिक आधार और परम्परागत गवाहियां रखती हैं, बुद्धि को भी नज़रंदाज़ नहीं किया गया, फिर हमने कल्पना-जगत की उड़ान भरने में बड़ी सावधानी से काम लिया है। हां, यह अवश्य हुआ है कि कुछ भावनाओं की अभिव्यक्ति 'ज़ुबानेहाल' में हुई है, जिन में उपन्यासकार की कल्पना भी आ गयी है।

जैसे इसके लिखित प्रमाण मिलते हैं कि अब्दुल मुत्तलिब ने मन्नत मानी थी कि जब मेरे दस बेटे हो जायेंगे, तो एक बेटे को खुदा की राह में क़ुर्बान कर दूंगा। इस मन्नत के पूरा करने का उन्होंने इरादा किया तो अब्दुल्लाह के ननिहाल वालों ने अवरोध पैदा करने की कोशिश की। इस सम्बन्ध में जो वार्तालाप दिया गया है और घटना का जो विस्तार प्रस्तुत किया गया है, वह काल्पनिक है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इतिहास के इस पन्ने को मैंने कहानी शैली में फैला दिया है कि इस विषय में इन घटनाओं को मनोविज्ञान के अनुरूप घटित होना चाहिए, बल्कि घटित हुए होंगे और इस ढंग की बात-चीत हुई होगी।

दूध पिलाने वालियों का वार्तालाप, हलीमा सादिया की बातचीत और उनकी यात्रा की घटनाएं भी आज की भाषा में अदा हुई हैं। इस 'भाषा' का आधार ऐतिहासिक गवाहियां हैं, पर विस्तृत विवेचन मेरी कल्पना की उपज है—इस शैली से बचता, तो फिर यह उपन्यास विशुद्ध ऐतिहासिक पुस्तक बन

कर रह जाता।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के नबी बनाये जाने के बाद का हिस्सा सब से ज़्यादा प्रामाणिक और विश्वसनीय है। 'सीरत' (जीवन–चर्या) की किताबें इस का मूल स्रोत हैं। इस सावधानी के बावजूद मुझ से भूल-चूक हो सकती है। मैं इन्सान हूं, फ़रिश्ता नहीं हूं, लेकिन अल्लाह दिल का हाल जानता है कि जहां तक मुझ से हो सका है, कहानी और उपन्यास की शैली बनाए रखते हुए भी मैंने सावधानी बरती है।

मेरे बहुत-से उपन्यास और कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन यह उपन्यास (वह यतीम) मेरे पारलौकिक जीवन का भंडार और शाश्वत जीवन की सामग्री है। न जाने कितनी बार स्वयं ही लिखते-लिखते बे-अख़्तियार रो दिया हूं। यही आंसू मेरे जीवन की पूंजी और मेरी ख़ुशियों का आधार हैं।

—माहिरुल क़ादरी

# बलिदान की सुबह

सितारों के बुझते दीपों से धुवां-सा निकल रहा था, यह डूबती रात-धुंधलका और उजाला एक दूसरे में घुल-मिल गये थे, सूर्य पूरब के झरोखे से झांकने ही वाला था। चांद-तारे-रात के मुसाफ़िर, यात्रा समाप्त कर जाने के लिए तैयार खड़े थे, रात का पर्दा उठने वाला था, उसके मोहरे आप ही आप कपकपा रहे थे।

सुबह के नर्म और ठंडे झोंके थपकियां देते हैं, बहुत कम लोग इन थपकियों के आधार पर स्वप्न से जाग पाते हैं, बिस्तर की सिलवटें सोने वाले का दामन थाम कर कहती हैं कि यकायकी बे-वफ़ाई न करो, अभी दिन कहां निकला है? धूप अच्छी तरह फैल जाए तो यहां से उठ कर जाना, ख़ूब मज़े ले कर करवटें बदलो, अंगड़ाइयां लो, हथेलियों से स्वप्निल आंखें मलने के बाद भी लेटे रहो, ऐसी जल्दी क्या है? कलियों को तो चटक जाने दो, ओस ने अभी अधखिले फूलों के मुंह भी पूरी तरह नहीं धुलाए, नींद का आनन्द जागने पर ही महसूस होता है, इस आनन्द को देखो, अधूरा न छोड़ देना। आंख खुलते ही तुरन्त बिस्तर से उठ जाने वाले सपने के अन्तिम आनन्द से वंचित रहते हैं।

यह मक्का की डूबती रात थी। लोग ठंडी हवाओं की गोद में सो रहे थे, रात का मौन पूरी तरह टूटा न था, किसी-किसी रास्ते से ऊंटों के गल्ले की घंटियों के बजने की आवाज़ आ रही थी —हल्की और टूटी-फूटी आवाज़, जैसे कोई नया पुजारी, जिस का अभ्यास न हो, मन्दिर में घंटी बजा रहा हो। मक्का निवासियों के घरों पर नींद की चुप्पी छायी हुई थी।

ऐसी स्थिति में बनू हाशिम के लम्बे-चौड़े मकान के दरवाज़े के पास एक गंभीर स्वभाव का व्यक्ति काला कम्बल ओढ़े दीवार पर कमर टेके बैठा था। वह गहरी सोच में डूबा हुआ था। उसके माथे पर लकीरें जल्दी-जल्दी उभरतीं और फिर फैल जातीं। चिंता के भार ने उसके पपोटों को बोझिल बना दिया था, उसकी आंखों में कभी चमक पैदा होती और कभी अंधेरा, विचार गहरे होते जा

रहे थे। वह यकायकी खड़ा हुआ और अंगनाई में तेज़-तेज़ टहलने लगा।

खूब धूप फैल चुकी थी। अबू क़बीस की चोटियों पर सूर्य की किरणों ने सुनहरी पद लिख दिए थे, चिड़ियां चहचहा रही थीं, बकरियाँ मिमिया रही थीं और ऊंट बलबला रहे थे, पर यह व्यक्ति अपने विचारों में मग्न था। चिन्ताओं ने सुबह की चहल-पहल से उसे चेतना-शून्य बना दिया था। घर के लोग उसे चकित हो देख रहे थे —कहीं बनू उमैया से किसी बात पर झगड़ा तो नहीं हो गया? उमैया और हाशिम के उत्तराधिकारियों की तलवारों को म्यान से तो बाहर आना न पड़ेगा? शाम (सीरिया) से जिन ऊंटों पर व्यापार का माल लदा आ रहा था, कहीं वह तो नहीं लुट गया? हज का ज़माना करीब आ रहा है, शायद इसके प्रबंध के लिए यह सोच-विचार हो रहा है। अब्दुल मुत्तलिब को इतना चिन्तित तो कभी नहीं देखा गया, आज यह दारुन्नदवः भी नहीं गये, क़ुरैश के सरदार उनका इन्तिज़ार कर रहे होंगे —सभी अपने-अपने ढंग से उनके बारे में सोच रहे थे, अब्दुल मुत्तलिब से बात करने का साहस किसी को नहीं हो पा रहा था।

अब्दुल मुत्तलिब ने माथे पर से पसीना पोंछा, कई बार हाथों की मुट्ठियों को बन्द किया और खोला, फिर अपने नीचे से कुरते को ऊपर उठाते हुए बोलेः-

'-अब्दुल्लाह कहां है? उसे बुलाओ, काबे की दीवार के साए में आज उसे बलि देकर अपनी मनौती पूरी करूंगा।'

घर वाले सब एक दूसरे का मुंह तकने लगे। अब्दुल मुत्तलिब के निर्णय को सुन कर सब के चेहरे यकायकी पीले पड़ गये, जैसे उनके जिस्मों में लहू नहीं, पानी है। मकान के सेहन में ऊंटों के क़जावों के पास दीवार में बहुत बड़ा ताक़ था, जिस में मिट्टी के प्याले, रस्सियां,सत्तू के खाली थैले, लौह कवच, टूटी ज़िरह के टुकड़े और लोहे के कुछ हथियार रखे थे। अब्दुल मुत्तलिब ने ताक़ से छुरी उठायी और उसकी धार देखने लगे, धार तेज़ थी पर अब्दुल मुत्तलिब ने एहतियात के तौर पर कवच के लोहे पर उसे रगड़ना शुरू किया।

क्षण भर में बिजली की तरह हर ओर ख़बर फैल गयी। अब्दुल मुत्तलिब ने जो मन्नत मानी थी कि अल्लाह ने मुझे दस बेटे दिए तो मैं एक बेटे को ईश-सान्निध्य के लिए बलि दे दूंगा, आज इस मन्नत को पूरा करने की वे तैयारी कर रहे हैं। छुरी की धार तेज़ की जा रही है। अब्दुल्लाह के बुलवाने के लिए आदमी भिजवा दिया है। हाशमी घराने के लोग बात के पक्के और निश्चय के

दृढ़ होते हैं और फिर अब्दुल मुत्तलिब तो कुरैश के सरदार हैं। उनके निश्चय का बदल जाना तो बहुत कठिन है।

थोड़ी देर में अब्दुल्लाह हारिस, अबू तालिब और दूसरे भाइयों के साथ बाप की सेवा में आ पहुंचे और उनके आने के थोड़ी देर बाद अब्दुल्लाह के ननिहाल वाले भी नाती के बलि दिए जाने की ख़बर सुनकर वहां चले आए।

अब्दुल्लाह चुप-चाप एक तरफ़ खड़े थे, सब की निगाहें उन्हीं पर थीं-तरस खाने वाली निगाहें, विनती भरी निगाहें कि काश! अब्दुल मुत्तलिब के हाथ से कोई छुरी छीन लेता।

लोगों की हमदर्दी के इस दृश्य को देखकर अब्दुल मुत्तलिब ने ऊंट के कजावे पर पैर रखते हुए कहा-

मुझे बुज़दिल बनाने के लिए तुम लोग यहां इकट्ठा हुए हो। हमदर्दी का यह अनोखा ढंग है। एक सुशील व्यक्ति को प्रतिज्ञा निभाने और मन्नत पूरी करने से रोका जाता है, मेरी मन्नत सब को मालूम है। रात मैंने कुरआ डाला था, सतर्क होकर और पूरी सावधानी और ज़िम्मेदारी के साथ कुरए डाले थे। अब्दुल्लाह के नाम कुरआ निकल आया। आज उसको बलि देकर अपनी मन्नत पूरी करूंगा। जो लोग कम हिम्मत और बुज़दिल हैं, वे अपनी आंखों पर कमीज़ों के दामन डाल लें, जो ज़िब्ह होने वाले की चीखें सुनने की शक्ति नहीं रखते, वे अपने कानों में रुई ठूंस लें। लोगों को मेरे बच्चे से हमदर्दी है, पर मेरी शालीनता तथा मेरे स्वाभिमान से हमदर्दी नहीं है। अदनान की औलाद हाय! इतनी बे-हौसला हो गयी। काश! बू कबीस का सीना फट जाता और तमाम भीरु कुरैश उस में समा जाते।

अब्दुल मुत्तलिब बार-बार दाढ़ी पर हाथ फेरते और छुरी को उलटते-पलटते अपने निश्चय की दृढ़ता दिखाने के लिए।

अब्दुल्लाह के ननिहाल के लोग और सबसे बढ़कर अबू तालिब दर्मियान में आ गये कि ऐसा नहीं हो सकता, हम यह काम नहीं होने देंगे, पहले हमारी गरदनों पर छुरी फेर दो, फिर अब्दुल्लाह के शरीर को हाथ लगाना। बात बढ़ने लगी। अब्दुल मुत्तलिब अपनी ज़िद पर अड़े रहे कि चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाए, मेरा इरादा नहीं बदल सकता। मर्दों का प्रण-प्रण होता है। मैं इस प्रण को रिश्ते-नातेदारों के कहने में आकर खोटा न होने दूंगा। मुझे अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से दस बेटे दिए हैं, एक बेटा जाता रहेगा, तो क्या जाता रहेगा, फिर मन्नत का पूरा करना हर स्नेह तथा संबंध से बढ़ कर है।

घोर संघर्ष शुरू हो गया। दोनों ओर से कोई भी अपनी बात से तनिक भर भी हटने को तैयार न था। एक हाथ में छुरी थी और दूसरी ओर दसियों छातियां अब्दुल्लाह के सामने ढाल बनने के लिए तैयार थीं।

-'ऐ कुरैश के सरदार! एक बात कहूं, मानोगे?' एक बूढ़े अरब ने अपनी कमर से रस्सी की गिरह ढीली करते हुए कहा।

-'मुझ से किसी बात का वचन न लो बड़े मियां! तुम्हें जो कुछ कहना है, कह डालो।' अब्दुलमुत्तलिब ने जबाव दिया।

—'बनू आमिर के महल्ले में जो काहिना रहती है, उसे तो आप जानते हैं?' बूढ़े ने पूछा।

'मैं क्या सारा मक्का उसे जानता है।' कहानत में आज उस का जवाब नहीं है। यमन और नज्द तक के लोग उस से शकुन निकलवाने के लिए आते हैं -अब्दुल मुत्तलित छुरी की नोक दीवार में चुभोते हुए बोले।

-'इतना ही नहीं, ग़स्सान और सीमाना के बादशाह उस काहिना की सेवा में भेंट और उपहार भेजते हैं, चलो, उस के पास चल कर झगड़े का फ़ैसला कराएं। वह जो कहेगी, उस पर अमल करेंगे, उसे किसी बात का लोभ है, न किसी चीज़ का भय। उसका फैसला दो टूक होगा।'

बूढ़े के कहने पर अब्दुल मुत्तलिब ने कुर्ते का उठाया हुआ दामन हाथ से छोड़ दिया, मानो वह काहिना के पास चलने को तैयार हैं और यह बात उन्हें स्वीकार्य है।

-'इस छुरी को तो घर में रखते चलो।' एक रिश्तेदार ने कुछ झुंझलाहट भरे स्वर में कहा।

-नहीं, यह नहीं हो सकता, काहिना के फैसले तक यह छुरी अब्दुल मुत्तलिब के हाथ से जुदा न हो सकेगी, मुझे हर बात के लिए विवश न करो -'अब्दुल मुत्तलिब ने घर के दरवाज़े से निकलते हुए जवाब दिया।

बनूहाशिम के कुछ लोग अब्दुल मुत्तलिब को साथ लेकर काहिना के पास पहुंचे।

काहिना अधेड़ उम्र की औरत थी, बिखरे और उलझे हुए बाल, धूल से भरा हुआ चेहरा, अर्ध नग्न देह, गले में ऊंट की हड्डियों की कुरूप माला, हाथों, पैरों और बांहों में लोहे के मोटे-मोटे कड़े अति भयावह और डरावना चेहरा,

लाल-पीली आंखें, तनी हुई भौंहें, सिलवटों भरा माथा, नीले होंठ, चौड़ा जबड़ा, औरत काहे को थी, अच्छी भली दैतनी थी, इस कुरूपता ने काहिना का लोगों को श्रद्धालु बना दिया था। लात व उज़्ज़ा के पुजारियों का विचार था कि अनदेखी बातें आम चेहरे-मोहरे के आदमी नहीं बता सकते, इसके लिए तो सबसे अलग चेहरे और अलग वेश-भूषा होनी चाहिए।

सभी श्रद्धा-भाव के साथ काहिना के आस-पास खड़े हो गये। उस ने अपनी लकड़ी के इशारे से, जिस पर ज़ैतून का तेल मला हुआ था, ज़मीन पर बैठने के लिए इशारा किया। अब्दुल मुत्तलिब छुरी को ज़मीन में गाड़ कर उसके सहारे बैठे, कोई आधा झुका खड़ा रहा, कोई उकड़ूं बैठ गया।

काहिना के सामने मामला पेश हुआ। वह ध्यान से सुनती रही, आंखें बन्द किए हुए, मानो उसका शरीर धरती पर है, पर उसका मन आकाश में विचर रहा है और अनदेखे समयों के लेखपत्र उस के अन्तर्मन में खुले हुए हैं।

-हम चाहते हैं कि किसी प्रकार अब्दुल्लाह की जान बच जाए और -एक हाशमी की बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि अब्दुल मुत्तलिब बीच में बोल पड़े।

-'आप (काहिना को संबोधित करते हुए) इन के कहने में न आएं, जो कुछ आप का मन, आपकी अंतरात्मा और सबसे बढ़ कर यह कि आप का ज्ञान कहे, उसको ज्यों का त्यों व्यक्त कर दें।'

इस पर काहिना ने ठहाका लगाया, बड़े-बड़े दाँतों की पीलाहट ने इस ठहाके को डरावना बना दिया। वह अपनी विशेष शैली में बोली-

'मन्नत दूसरी तरह भी पूरी हो सकती है। अब्दुल्लाह के नाम के साथ ऊंटों का भी कुरआ डालो, यहां तक कि अब्दुल्लाह की जगह ऊंटों का नाम निकल आए, तब ऊंट कुर्बान कर दिए जाएं मन्नत पूरी हो जाएगी।'

सब लोग स-हर्ष घर वापस आए और कुर्आ-डालाना शुरू हुआ। कुर्आ का आरंभ दस ऊंटों से हुआ। हर बार अब्दुल्लाह का नाम निकलता, घर वालों के चेहरे बुझ-से जाते, सौ ऊंटों पर जा कर अब्दुल्लाह की जगह ऊंटों के नाम का कुर्आ निकला और अब्दुल मुत्तलित ने सौ ऊंट कुर्बान कर दिए।'

अब्दुल्लाह आज छुरी तले से निकले थे, उन्हें दोबारा जीवन मिला था, जितनी प्रसन्नता होती, थोड़ी थी। कुंवारी लड़कियां खुशी के गीत गाने लगीं, बच्चे छोटे-छोटे बरछे और धनुष लेकर खेलने लगे।

अब्दुल मत्तलिब का घर मेहमानख़ाना बना हुआ था। हर ओर चूल्हे, देगचियां, रोटियां और शोरबे के प्याले दिखायी देते थे। कुरैश उस नामी सरदार (कुसई) की सन्तान थे, जिसने अब से सैंकड़ों वर्ष पहले कुरैश को जमा करके भाषण दिया था कि सैकड़ों-हज़ारों मील से लोग चल कर हरम की ज़ियारत को आते हैं, इनके खाने-पीने का प्रबंध करना हमारा कर्त्तव्य है।

कुसई के भाषण ने सबके मन पर प्रभाव डाला। कुरैश साल के साल एक रक़म जमा करते, जिस से हाजियों को खाना खिलाया जाता, पानी के लिए चमड़े के बड़े-बड़े हौज़ बना दिए गये थे। अब्दुल मुत्तलिब अपने दादा कुसई के उचित उत्तराधिकारी थे, वही गंभीरता, वही सरसता और वही आतिथ्य-सत्कार -उनके यहां जो कुछ होता, कम था।

अब्दुल्लाह की बलि होते-होते रह गयी। कुर्बानी की मन्नत दूसरी शक्ल में पूरी हुई। अब से कई हज़ार साल पहले उसी मक्का में हज़रत इस्माईल के साथ 'महान बलि' की शानदार घटना घटित हुई थी, इतिहास ने थोड़े बदले हुए अंदाज़ में फिर अपने को दोहरा दिया था, वही नस्ल, वही घराना, वही शहर, उन रहस्यों पर अभी प्रकृति ने ज्योतिर्मय पर्दा डाल रखा था, जिसके प्रकट होने के लिए सूर्य-चन्द्र की निगाहें इन्तिज़ार में थीं। □

# पाकबाज़ अब्दुल्लाह

अब्दुल मुत्तलिब के एक छोड़ दस बेटे थे, पर इन सब में मनमोहक, सुन्दर तथा आकर्षक यही अब्दुल्लाह थे, जिन की बलि के लिए बाप ने छुरी हाथ में संभाल ली थी। चेहरा अबू लहब का भी सुर्ख़ था, पर अंगारे की तरह लाल भभूका, जिस को देख कर मन आकृष्ट नहीं होता था बल्कि भयभीत हो उठता था। अब्दुल्लाह के रूप में अपार आकर्षण और खिंचाव था। उनके माथे पर विशेष चमक थी, जो कुरैश के किसी युवक में दिखायी न पड़ती थी। उनका माथा सच-मुच नूर का तड़का था, जिस में बहुत-सी सुबहें मुस्काती थीं।

एक दिन दोपहर के समय एक कुरैशी चरवाहा घर भागा हुआ आया और अपने घर वालों से कहने लगा कि मैंने एक अजीब बात देखी है। उसी के कहने के लिए मैं जंगल से बस्ती में आया हूं। अभी थोड़ी देर हुई मैं बकरियां चरा रहा था, अब्दुल मुत्तलिब का बेटा अब्दुल्लाह हमारे निकट से गुज़रा। तेज धूप पड़ रही थी। वायुमंडल बिल्कुल स्वच्छ था। सूर्य की किरणें जिस्मों को झुलसे देती थीं, इतने में क्या देखता हूं कि अब्दुल्लाह के सर पर बादल का टुकड़ा साया किए हुए है और वह टुकड़ा उसके साथ-साथ चल रहा है।

लोग हंसने लगे कि चरवाहा सपना देख कर आया है या उस की आंखें धूप में चुंधिया गयी हैं और उसने कुछ का कुछ देख लिया। सब ने लड़के की बात हंसी में उड़ा दी -चरवाहा इस पर झल्ला उठा, बोला, 'आप मुझे झूठा समझते हैं, मेरी आंखों को तनिक भी धोखा नहीं हुआ। आप को विश्वास न आए तो काबे का पर्दा थाम कर इसी बात को दोहरा दूं या लात व हुबल के पवित्र पांवों को छू कर कसम खा लूं। बात वास्तव में अजीब है, पर मैं अपनी आंखों को आखिर किस प्रकार झुठला दूं।

इस पर एक बूढ़ा अरब धनुष पर कुहनी का ज़ोर देकर बोला, हमारे खुदा लात व उज़्ज़ा गर्मी में जलते रहते हैं और बादल के इन टुकड़ों को उन पर छाया करने की तौफ़ीक नहीं होती, हालांकि ये मूर्तियां हमारी ज़रूरतें पूरी करती हैं,

इन्हीं के दम से मक्का के खजूर हरे-भरे हैं और तायफ़ के चमन लहलहाते हैं, लड़ाइयों में यही उपास्य हमारी सहायता करते हैं। यह अब्दुल मुत्तलिब का बेटा क्या लात व हुवल से भी अधिक पवित्र और पहुंचा हुआ है—इस कल के लौंडे की बातों में हम दुनिया देखे हुए लोग नहीं आ सकते—सब हंसने लगे, चरवाहा खिसयाना होकर जंगल को लौट गया।

मक्के का माहौल बे-हयाइयों और बद-कारियों का माहौल था, पर अब्दुल्लाह के स्वभाव में शुरू ही से पाकबाज़ी और नेकचलनी की तरफ़ झुकाव था। खाना काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करते, नंगी औरतों की हलचल सुनते ही वह आंखें बन्द कर लेते। कुरैश के युवकों की रंग-रलियों से उन्हें स्वभावतः कोई लगाव नहीं था, उनके साथी छेड़ते थे कि अब्दुल्लाह को तो चूड़ियां पहन कर और दोपट्टा ओढ़ कर घर में बैठ जाना चाहिए। जवान मर्दों की सी तरंगें अब्दुल मुत्तलिब के इस शर्मीले बेटे में नहीं पायी जातीं, जवानी में योगियों-सन्यासियों की तरह ज़िदगी बिताना बहुत बड़ी मूर्खता है। यही तो आनन्द लूटने और मज़े उड़ाने के दिन हैं— आह! बेचारे अब्दुल्लाह की जवानी, शुष्क, नीरस, स्वादों से खाली दिन से ज़्यादा रातें बे-मज़ा, मानो कि इस चमन में बहार ही नहीं आयी।

अब्दुल्लाह एक दिन मक्का की एक गली से गुज़र रहे थे। रास्ते की धूल पर ऊंटों के पैरों के निशान उभरे थे, जैसे अभी-अभी कुछ ऊंट इधर से गुज़रे हैं। अब्दुल्लाह की निगाहें उन्हीं निशानों पर जमी थीं कि यकायक एक मकान का दरवाज़ा खुला। अब्दुल्लाह ने देखा तो मुराखशअमा की जवान लड़की दरवाज़े का पट खोले खड़ी थी—यौवन, सौन्दर्य, बचपन, अनुकूलता! लड़की सिर से पैर तक मनमोहकता तथा सौन्दर्य का प्रतिरूप थी। लड़की ने इशारा करके अब्दुल्लाह को रोका और वासना भरी इच्छा व्यक्त कर दी। यह यौवन और सौन्दर्य की ओर से पहल हो रही थी, मनमोहकता स्वयं आगे बढ़ आयी थी। अब्दुल्लाह के सीने में जवान दिल था, गर्म वलवलों से धधका हुआ। मन में कुलबलाहट हुई कि ऐसे रंगीन मौके रोज़-रोज़ नहीं आते। इस रूपवती की ओर कुरैशी नव-जवानों की टोलियों झुकाव रखती हैं, हर कोई उसके लिए अपनी मुट्ठी में दिल दबाए फिरता है और तेरी ओर वह आप ही बढ़ रही है। देखना, चूकना नहीं, ग़फ़लत न करना, हुस्न व जवानी की दर्ख्वास्तें ठुकरायी नहीं जातीं, पर अब्दुल्लाह की अन्तरात्मा जागी, लाज और शर्म की रग को दबाया, अब्दुल्लाह ने अरब युवती की एक मुस्कान को भी स्वीकार नहीं किया।

खशअमा की सुन्दरी को विश्वास था कि अब्दुल्लाह उसकी पहल पर हंस-खेल कर दौड़ा आएगा। अब जो आशा के विपरीत विफलता हुई, तो हुस्न अपनी नाकामी पर झुंझला गया। रोष ने गालों के उजलेपन में लाली घोल दी।

लड़की थी सचेत, रोष को पी गयी और रूप और यौवन के साथ सुर्ख़ ऊंटों का भी लोभ दिला दिया।

-पर अब्दुल्लाह उसके उत्तर में यह पद पढ़ते हुए आगे बढ़ गये-

'हराम काम करने से तो मर जाना ही अच्छा है। हलाल को मैं निश्चय ही पसन्द करता हूं, पर इसके लिए एलान ज़रूरी है, तुम बहकाती और फुसलाती हो, पर सज्जन के लिए अपने धर्म और अपनी पाकदामनी की सुरक्षा अनिवार्य है।'

लड़की देखती की देखती रह गयी। अब्दुल्लाह के पद-चिन्ह बस वहां दिखायी देते थे, वह वासना की पुकार को अनसुनी करके चले गये थे।

अब्दे मनाफ़ के घराने में शिकार का गोश्त आया है। देगची चूल्हे पर चढ़ी है। एक बूढ़ी औरत लकड़ी के करछुल से देगची के पानी को चला रही है। खाने के इंतिज़ार में घर के लोग ज़मीन पर बैठे हैं। मिट्टी के बड़े-बड़े प्याले उन के आगे रखे हैं।

—'आप ने अब्दुल मुत्तलिब के यहां क्या उत्तर भिजवाया'— एक अधेड़ उम्र के अरब ने पूछा।

'मैं बिल्कुल तैयार हूं, बस, तनिक एक दो दिन में मेरे चचा नख़्ला से आ जाएं, उनसे मशिवरा कर लूं। बड़े-बुढ़ों का मशिवरा अच्छा होता है।' बूढ़े ने उत्तर दिया।

'मैं कहता हूं, इस भले काम में देर करना उचित नहीं। अब्दुल मुत्तलिब के बेटे अब्दुल्लाह के लिए मक्का में लड़कियों की कमी नहीं। लोग तमन्नाएं कर रहे हैं कि किसी प्रकार हमारी लड़की का अब्दुल्लाह के साथ रिश्ता हो जाए। अब्दुल्लाह जैसा लड़का चिराग़ लेकर भी ढूंढोगे, तो भी सारे अरब में न मिलेगा। उसका घराना कुरैश का सबसे आदरणीय घराना है। उसके बाप अब्दुल मुत्तलिब कुरैश के सरदार हैं और उनकी यह महत्ता ही क्या कम है कि ज़मज़म का कुवां, जिसे अम्र बिन हर्स जहंमी ने बन्द करा दिया और किसी को याद भी न रहा कि यहाँ इस नाम का कोई कुवां भी था, अब्दुल मुत्तलिब ने अपने बेटे हारिस को लेकर, खोद निकाला। भाई! जल्दी करो, आमना के भाग्य के सितारे को जल्द चमकने दो।

बात तै हो गयी। अब्दुल मुत्तलिब के यहां उत्तर भिजवा दिया गया कि हमें यह रिश्ता मंजूर है। दोनों ओर खुशी की लहर दौड़ गयी। अब्दुल्लाह बाप का चहेता और लाडला बेटा था, जिसकी शालीनता और जिसके सदाचार की कुरैश सौगंध खाया करते थे और बीबी आमना अपने घराने की रोशनी थीं, पाकदामनी और लज्जा की मूर्ति, पवित्रता का सजीव चित्र, अरब की औरतें मेलों में बे-झिझक शरीक होतीं, कुरैश की खाने-पीने की मज्लिसें गरमातीं, पर आमना

का स्वभाव इनसे अलग था। वह अपने रिश्तेदारों से बात करते लजातीं। सिर से दोपट्टा ढलकने न पाता। कुरैश की औरतें कहा करती थीं कि आमना तो सच-मुच गुड़िया है, बे-मुंह की, गंभीर और हौसला मंद! दूसरी लड़कियों की तरह शोख़ियां उसे नहीं आतीं, आमना के घर वाले उस से प्रेम ही नहीं, बल्कि उसका आदर भी करते थे।

अब्दुल मुत्तलिब अपने साथ कुरैश के सरदारों को लेकर अब्दुल्लाह की ससुराल पहुंचे। लड़की वालों ने बारात का स्वागत किया—लम्बे-लम्बे कुर्ते, कमर से बटी हुई रस्सियां बंधी हुई, हाथों में तलवारें, किसी-किसी के कांधे पर यमनी चादर पड़ी थी और किसी के कुर्ते के गरेबान पर शामी कला के फूल बने थे। बेटी वाले के घर में गाना बजाना हो रहा था। कुरैश की छोटी-छोटी लड़कियां दफ़ पर गीत गा रही थीं। इन गीतों में काबा की महानता, कुरैश के वंशगत अभिमान, बूकबीस की प्रशंसा और ऊंटों की मेहमानी का उल्लेख था और किसी के पद में कुरैश के शौर्य को भी सराहा गया था कि कुरैश की तलवारों का कीर्तिमान लहू चाट कर चमकता है और उनके विरोध का यह अर्थ है कि धरती और आकाश की शत्रुता मोल ली जा रही है। लड़कियों के गीत पूरी तरह शास्त्रीय न थे, पर स्वर में दर्द और अत्याधिक मिठास थी, अरब झूमे जा रहे थे और इन संगीतों के कारण प्रसन्नता बराबर बढ़ती जा रही थी-संगीत प्रसन्नता को जन्म देता है और स्वर के उतार-चढ़ाव से हर्ष फूटता है।

अरब के पुराने तरीके पर विवाह संपन्न हुआ, बड़े सादा ढंग से। एलान हुआ कि अब्दुल्लाह बिन अब्दुल-मुत्तलिब और आमना बिन्त वहब एक दूसरे के विवाह-पाश में जकड़ गये। अब्दुल मुत्तलिब को लोगों ने शुभ कामनाएं अर्पित कीं। कुरैश के सरदार ने कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए आसमान की ओर देखा, दो भाग्य के सितारे मिल गये और दो जीवन एक-दूसरे के संगी बन गये।

आमना विदा होकर ससुराल आयीं। सौभाग्य-शालिनी बहू का घर वालियों ने स्वागत किया, बल्कि उसकी राह में आंखें बिछा दीं। हर किसी के मुख पर था कि दुल्हा-दुल्हन का ऐसा भाग्यवान जोड़ा आज तक देखने में नहीं आया। अब्दुल्लाह सूरज, तो आमना चांद है। दोनों सुशील और शर्मीले! शालीनता के आदर्श! एक दूसरे का जवाब, इसे छिपाओ और उसे निकालो।

अब्दुल मुत्तलिब ने रिश्तेदारों, नातेदारों और दोस्तों को खाना खिलाया। बड़ी-बड़ी देगचियों में शोरबा भरा था। इसमें रोटियां टुकड़े करके भिगो दी गयीं। यह अरबों का प्रिय भोजन 'सरीद' था। बड़े-बड़े थालों में सरीद निकाला गया और कई-कई अरब एक-एक थाल को लेकर बैठ गये। आपस में हंसी-मज़ाक की बातें भी होती जाती थीं।

'यह उस ऊंट का गोश्त है, जो यमन से लोबान, इत्र और दूसरे सामान लेकर आया था।'

'हां, हां, जभी तो यह गोश्त सुगंधित है।' (ठहाका)

'अबू कारिआ! इस हड्डी को देखो, तलवार की तरह तेज़ है। इस ऊंट के बाप-दादा शायद लोहारी का पेशा करते थे।' (नवजवान हंसने लगे)

'धीरे बोलो वलीद! यह अब्दुल मुत्तलिब का घर है। कुमैया के बेटे रज़ाआ का शराबख़ाना नहीं है। गंभीरता तो हाशमी घराने का निशान है।'

अब्दुल्ल मुत्तलिब ने अब्दुल्लाह और दूसरे बेटों को साथ लेकर काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) किया, शुक्र का तवाफ़! इस में प्रेम, श्रद्धा और आन्तरिक उत्साह भी सम्मिलित था, काबे की मुंडेरों पर सुन्दर कबूतर भी नाच रहे थे, मानो कि तवाफ़ करने वालों का साथ दे रहे हैं और कह रहे हैं कि हमें भी इस खुशी में बराबर का शरीक समझो। □

# शाम की ओर

विवाह हुए लगभग ढाई तीन महीने गुज़र चुके हैं। अब्दुल मुत्तलिब के मकान में ऊंटों के कजावे कसे जा रहे हैं। सत्तू की थैलियों के मुंह बंध रहे हैं और पानी की छागलें भरी जा रही हैं, तलवारों की फटी हुई म्यानें बदली गयीं, तूण (तरकश) में तीखे वाण रखे गये—यह यात्रा है —पराए देश में जाना होगा और परदेश को हर कोई स्वदेश के मुक़ाबले में ज़्यादा बन-संवर कर जाता है।

अब्दुल्लाह, जिन्हें दूल्हा बने कुछ दिन हुए हैं, शाम की ओर व्यापार करने जा रहे हैं। नाते-रिश्तेदार जाने वाले को 'अलविदाअ' कहने के लिए जमा हो गए। यह यात्रा निर्जन स्थानों, भयानक वनों और निर्गम मार्गों से होकर ही पूरी होगी।

'ऐ अब्दुल मुत्तलिब के बेटे! मदीने से छः मंज़िल जा कर जो रेगिस्तान आता है, वह भयानक है, वहां कारवां लुट जाया करते हैं। सुना है कि कबीला ग़िफ़ार के लुटेरों ने इधर बड़ी हलचल मचा रखी है, सावधानी के साथ जाना।

अब्दुल्लाह ने इस के उत्तर में अपनी तलवार की ओर देखा। यही तलवार देखना, कहने वाले की बात का जवाब था कि लुटेरों और बटमारों का सामना हो गया, तो इस तलवार से 'जैसे को तैसा' जवाब दिया जाएगा। हाशमी घराने के लोग शूर-वीरता में अपूर्व हैं; ख़तरे इनको डरा नहीं सकते। इनकी तलवारों ने बड़े-बड़े ख़तरनाक मौक़ों पर काबे की रक्षा की है।

अब्दुल मुत्तलिब ने अब्दुल्लाह के माथे को चूमा। अब्दुल्लाह का विनम्र सिर आप ही आप झुक गया। बेटे की सफल वापसी के लिए दुआएं कीं। होंठों के साथ सफ़ेद दाढ़ी भी हिलने लगी। अब्बास ने नकेल पकड़ी। हमज़ा ने कजावे पर बैठते हुए सप्रेम भाई का हाथ थामा। आमना चुप-चाप मूर्ति की तरह खड़ी हुई इस दृश्य को देख रही थी, पति, नहीं उसका संसार जा रहा था, निर्जन बनों की ओर, जहां क्रोसों तक आबादी का निशान नहीं मिलता। वह अपना दुख किसी से कहते हुए भी शर्माती थी। उसका बस चलता तो रखे हुए कजावे को उतरवा देती और जाने वाले को यात्रा पर जाने से रोक देती।

आमना का दिमाग़ तसल्ली दे रहा था, ढाढ़स बंधा रहा था कि इतनी दुखी क्यों है, तेरा पति व्यापार-यात्रा पर शाम जा रहा है, लड़ाई पर नहीं जा रहा है, स-कुशल वापस आ जाएगा। कुरैश आए दिन यमन, शाम, नज्द और मिस्र जाते ही रहते हैं। कुरैश का तो जीवन घोड़ों की पीठों और ऊंटों की कोहानों पर गुज़रता है, पांच-छः महीने की बात ही क्या है! पलक झपकाते इतने दिन बीत जायेंगे।

पर उसका मन आप ही आप बैठा जा रहा था। कोई उसके कानों में कह रहा था कि अब्दुल्लाह को खूब जी भर कर देख ले, फिर देखने को मिले या न मिले।

अब्दुल्लाह ने भी दर व दीवार पर हसरत की निगाह डाली, मानो कोई सदा के लिए विदा हो रहा हो। उसकी आंखों में हमेशा की जुदाई झलक रही थी। देखने वाले महसूस कर रहे थे कि कुरैश के घरानों से हर दिन लोग यात्रा पर जाते रहते हैं, लेकिन इस ढंग से तो कोई विदा नहीं हुआ करता। जुदाई का यह दृश्य ही विचित्र-सा है। काबा का स्वामी अब्दुल्लाह को स-कुशल वापस लाए, जिस तरह हम आज उसकी पीठ देख रहे हैं, कल उस का मुंह भी देखें।

अब्दुल्लाह जब मक्के की गलियों से गुज़र रहे थे, तो बाज़ार के मोड़ के पास ही एक छप्पर वाले घर के पास कुछ औरतें खड़ी थीं, उनकी बातें—

'उम्मे साद! यह आमिर का चहेता बेटा अब्दुल्लाह व्यापार के लिए ऊंट लेकर यात्रा पर जा रहा है।'

'इसके बाप का नाम अब्दुल मुत्तलिब है—कुरैश के सरदार, मुकद्दस काबा के दरबान—और तुम—तुम—

(बात काट कर) 'अनजान कहीं की, तुझे तो बस गुड़ियों के साथ खेलना और गीत गाना आता है। अरी नादान! अब्दुल मुत्तलिब का असली नाम आमिर है और इनकी उपाधि शैबा है, समझी!

—शुक्रिया! मेहरबानी!! लात व हुबल की सब बरकतें तेरे हिस्से में आएं।

—और यह भी कहो कि मेरा बेटा लबीद की तरह कविता कहने लगे, अरब में उस का नाम हो और उकाज़ और ज़ुलमजीना के बाज़ार उसकी प्रशस्तियों से गूंज उठें।

—ज़ुबान ने नहीं, दिल ने कह दिया।

—हां! तो मैं यह कह रही थी कि विवाह होने से पहले अब्दुल्लाह के माथे

पर जो नूर नज़र आता था, अब वह दिखायी नहीं देता। माथे में बस इस ज्योति की झलकियां-सी रह गयी हैं, जैसे सूरज छिपने के बाद कबीस की चोटियों पर किरणों की धुंधली-सी धारियां छोड़ जाता हैं।

—तुम्हारी बात की मेरी ये निगाहें पुष्टि कर रही हैं। मुझे भी अपने विचारों से सहमत समझो। (तीसरी औरत ने कहा।)

अब्दुल्लाह के कान में भी इन बातों की भनक पड़ी, पर हल्की सी। कुछ सुना, कुछ न सुना। ऊंटों की घंटियों की आवाज़ अब तनिक तेज़ होती जा रही थी।

आमना कोठे पर चढ़ गयी और उस वक़्त तक अब्दुल्लाह के ऊंटों की क़तारें देखती रही, जब तक कि खजूरों के झुंड में यह कारवां छिप न गया, मक्का की पहाड़ियों ने इस धुंधलके पर और पर्दे डाल दिये। वह छत से उतरी, दुखी, उदास, जुदाई का ग़म लिए हुए, भीगी पलकों को कुर्ते के दामन से पोंछा—कांपते हुए हाथों से! अब्दुल्लाह जा चुके थे, उनकी निगाहों की छाप आमना को दर व दीवार पर ज़रूर दिखायी दे रही थी— झलकियां, परछाइयां, लकीरें, अतीत की याद के कुछ अधूरे चित्र। □

# इन्तिज़ार

आमना को इन्तिज़ार था, शौहर की वापसी का इन्तिज़ार! वह एक-एक घड़ी गिन रही थी। सुहागिन की उदास रातें और अधिक उदास होती हैं। वह लोगों से पूछती रहती कि तेज़ ऊंट पर शाम से मक्के का सफ़र कितने दिन में तै हो सकता है। और अब्दुल मुत्तलिब जब कभी व्यापार के लिए जाते हैं, तो शाम में कितने दिन ठहरते हैं, इन बातों से वह अपने मन को बहलाती, जुदाई की भावना को थपकियाँ और वियोग के शोक को लोरियां देती। शाम से वापस आने वाले ख़बर देते कि हमने अमुक पहाड़ी के दामन में अब्दुल्लाह को जाते हुए देखा था, इस पड़ाव पर अब्दुल्लाह ठहरे थे, अमुक मरुद्यान में अपने ऊंटों को वह चारा खिला रहे थे, पर शाम से वापसी का हाल कोई न बताता।

जिस रास्ते से अब्दुल्लाह गये थे, वह आमना की निगाह में था, वह मन ही मन में प्रसन्न होकर कहती कि इन्हीं खजूरों की ओट से वह सूर्य की तरह उदित होते दिखायी देंगे। सुर्ख़ ऊंट, उसकी गरदन में घंटी पड़ी हुई, सुन्दर कजावा, पानी की वह छागल, जिसका फ़ीता मैंने अपने हाथों से बांधा था–और फिर वह! कुरैश उनका बढ़कर अभिनन्दन करेंगे और अब्दुल मुत्तलिब बेटे के लाए हुए दिरहम व दीनार खुशी-खुशी गिनते होंगे।

इसी इन्तिज़ार में कई महीने बीत गये। स्वयं अब्दुल मुत्तलिब को बेटे की ओर से चिन्ता हो गयी। मालूम हुआ कि मदीना से संध्या समय क़ाफ़िला आया है। क़ाफ़िले वाले बहुत थके-हारे हैं। सुबह-सवेरे अब्दुल मुत्तलिब के यहां ख़ैर-ख़बर देने के लिए आयेंगे, पर अब्दुल मुत्तलिब तलवार लेकर उठे, आने वालों से खुद जा कर मिले, उन्हें बताया गया कि अब्दुल्लाह शाम से वापस होकर यसरिब (मदीना) में ठहर गये हैं, बीमार हैं, जब हम चले हैं, तो उनको बुख़ार था।

आमना ससुर के इन्तिज़ार में ड्योढ़ी से लगी खड़ी थी कि यसरिब से आए हुए क़ाफ़िले वालों की ज़ुबानी कोई ख़ैर-ख़बर ज़रूर मिली होगी। अब्दुल

मुत्तलिब के चेहरे पर चिन्ता और परेशानी के चिन्ह स्पष्ट थे, पर बहू को इन्तिज़ार में देख कर उन्होंने दिल की धड़कनों को छिपा लेना चाहा, कड़क कर बोले—

'अब्दुल्लाह को यों ही-सा ज्वर आ गया है। यात्रा भी तो लम्बी थी, जवान आदमी का शरीर थकन से यों भी गर्म हो जाता है। चिन्ता की कोई बात नहीं है। वहां अपने नातेदारों में वह ठहरा हुआ है। यसूरिब के लोग अति विनम्र होते हैं। सेवा-सुश्रूषा में कोई कसर न उठा रखेंगे। मैं कल सुबह हारिस को यसूरिब भेज दूंगा। वह अब्दुल्लाह को अपने साथ ले आएगा।'

पति की बीमारी की सूचना पाकर आमना का कलेजा धक से होकर रह गया— 'वह बीमार हो गये हैं, यसूरिब में हैं'— 'ये शब्द उसके कान के पर्दों में चुभ कर रह गए। एक ज़बरदस्त धक्का-सा लगा।' आंखें सूखी थीं, पर मन रो रहा था, वह इसी हालत में टहलने लगी।

ग़म के बोझ से वह दबी जा रही थी। रह-रह के दसियों-बीसियों वस्वसे मन में आते थे। आशा बंधती तो आंखें चमक उठतीं और टूटती तो चेहरे पर धुंधली छाइयां सी छा जातीं। उसके विचारों का एक पांव नदी में और दूसरा तट पर था— आशाओं की धूप-छांव-सी।

'बीबी! सुहागिनों और नयी-नवेली दुल्हनों को इस 'युग' में ग़म न करना चाहिए। यह नाज़ुक दिन हंसी-ख़ुशी में बिताने चाहिएं— लौंडी के इस कहने से आमना के चेहरे पर लज्जा की लाली दौड़ गयी।

'—पर वह बीमार हैं, परदेश है—और—'

आमना की बात पूरी होने से पहले लौंडी झट से बोल पड़ी—

'तो क्या हुआ, तन्दुरुस्त आदमी तो बीमार हुआ करते हैं, इस में दिल थोड़ा करने की क्या बात है? मेरे बड़े भाई बीमारी दूर करने का अमल जानते हैं। उनके पास अभी जाती हूं, उन्होंने यहीं मक्का में बैठे-बैठे मंत्र पढ़ कर यसूरिब की ओर फूंक दिया, तो चुटकी बजाते ही बीमारी जाती रहेगी। लात व हुबल उन की सुनते हैं और उज़्ज़ा उन पर बहुत मेहरबान हैं।'

अब्दुल मुत्तलिब लोगों के झगड़े चुकाने और ज़रूरी बातों में मश्विरा करने के लिए दारुन्नदवः चले गए। लौंडी रोटियां पकाने लगी। घर की दूसरी औरतें अपने-अपने कामों में लग गयीं, पर आमना का मन यसूरिब में पड़ा था। वही एक चित्र! वही एक याद— पतिव्रता की दुनिया पति के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती।

# आगमन–शुभ घड़ी

जीवन एक सपना है—और बहुत से सपने सचमुच जीवन बन जाते हैं। हर किसी को ऐसे सच्चे सपने दिखायी नहीं देते। बहुत से लोग सपनों को कल्पनाओं की रोचक कहानी ओर अंध विश्वासों की शानदार दास्तान बताते हैं, पर यह अपने-अपने विचारों के फैलाव और अपने-अपने मन की पावनता की बात है। कुछ सपने अंध विश्वासों के शीश महल से उच्च होते हैं, वर्तमान और भविष्य के चित्र को इस तरह दिखाते हैं कि आने वाली घटनाओं का प्रतिबिंब साफ़ झलकने लगता है—ये सपने दूसरों के जागरण से अधिक सच्चे, उपयोगी, बल्कि पवित्र होते हैं।

इस जगत में बहुत-से ऐसे भी हैं, जो जागते हैं, पर उनके दिल सोते रहते हैं। न निज में, न जगत की निशानी में उन्हें सन्मार्ग का कोई संकेत नहीं मिलता। अतीत और वर्तमान की घटनाओं के भंडार से भविष्य की एक परछाईं भी उनको दीख नहीं पड़ती। सारा जीवन बे-ख़बरी में बीत जाता है—पर कुछ भाग्यवान सपनों में भी जाग्रतावस्था का अनुभव करते हैं और भविष्य उनके सामने आप ही आप आ खड़ा होता है।

आमना को सपने दिखायी पड़ने लगे, विचित्र, पर शुभ सपने।

—कभी यह कि आमना का देह यकायकी आईने की तरह झलकने लगा और रोएं-रोएं से ठंडी किरणें निकलने लगीं।

कभी कानों ने सुना कि जन्नत की हूरें, आसमान के फ़रिश्ते और पवित्रात्माएं अभिन्दन कर रही हैं।

कभी सोते में ऐसा लगा कि वह अपने चमकदार और झलकते शरीर के साथ ऊंचाई पर हैं, ऊंचे पहाड़ छोटे नज़र आते हैं। आमना के तलवे सितारों को छू रहे हैं और चारों ओर अभिनन्दन गीत गाये जा रहे हैं।

जैसा कि प्रथा थी, क़बीले की औरतें आमना का पूछना करने आतीं, तो

उन्हें कुछ ऐसा दिखायी देता, जैसे काबे की छत से लेकर अब्दुल्लाह के घर तक नूर का शामियाना तना हुआ है, जिसे कपूरी बत्तियों से अधिक उजले और रोशन हाथ थामे हुए हैं।

घरों में चर्चे होने लगे कि आमना पर आसमान की नूरानी देवियां बहुत मेहरबान हैं। वहब की बेटी, अब्दुल मुत्तलिब की बहू, अब्दुल्लाह की जीवन संगिनी और होने वाले बच्चे की मां आमना स्वयं ज़ोहरा व मुश्तरी बनी जा रही है।

—ऐ लो! सितारे धरती पर झुक आये। यह आज क्या हो रहा है? —अब्दुल्लाह की फूफी ने कहा। मैं भी देख रही हूं कि जितनी उजली यह पिछली रात है, इतने उजले तो दिन भी नहीं होते—एक बूढ़ी औरत ने उत्तर दिया।

उम्मे माबद! और ये ठंडी हवाएं, प्रातः मंद गति से बहने वाले पवन के झोंके, सुगन्धित सुमीर की अठखेलियां, दर व दीवार झूमे जा रहे हैं। तायफ़ के चमनों और बाग़ीचों की प्रातः भी मैंने देखी है, पर आज की सुबह तो मोह लेने वाली है—और सुगंध की लपटें मानो यमन का सब इत्र जमा करके किसी ने छिड़क दिया है। काश! इस रात की प्रातः न ख़त्म होती और हम सदैव यही दृश्य देखते रहते। तीसरी औरत ने दोपट्टे का आंचल मोड़ते हुए कहा।

कुरैश के जिन घरानों में लोग आज जल्द उठ बैठे थे, वे अपनी मूर्तियों को थामते-थामते और उठाते-उठाते थक जाते थे—पर मूर्तियाँ, किसी तरह खड़े रहने के लिए तैयार न थीं। उन के माथे आप ही आप सज्दे में झुके जा रहे थे।

आज क्या हो गया है मेरे उपास्य देव को! लेटे जाते हैं, गिरे जाते हैं, शायद नींद आ रही है, पर मूर्तियां तो सोया नहीं करतीं, कहीं मुझ से रुष्ट तो नहीं हो गये। लाओ फिर एक बार श्रद्धाआस्था के साथ माथे टेक दूं—बूढ़े कुरैशी ने मूर्ति को दीवार के सहारे खड़ा करके माथा टेका और फिर जो सिर उठाया तो मूर्ति का माथा भी धरती पर रखा था। इतने में एक औरत दौड़ती हुई आयी और बूढ़े का हाथ थाम कर बोली—

'मेरे साथ चलकर देखो, फ़रीसा का उपास्य, ज़ुहैर का खेवनहार, क़बीस की मूर्ति और स्वयं मेरा ख़ुदा सबके सब धरती पर माथे के बल गिर पड़े हैं—

इस पर बूढ़े अरब ने औरत का हाथ झटक कर उत्तर दिया,'मैं स्वयं इसी परेशानी में पड़ा हूं। मेरे उपास्य को नहीं देख रहीं हो, धरती पर माथा टिका हुआ हैं। तुम अपने उपास्यों को संभालो, मैं अपने देवता को थामता हूं।'

यहां अब्दुल मुत्तलिब के घर में आमना पर हर्षमय ऊंघ सी छायी हुई थी, इसी अवस्था में उनके कानों ने सुना—

—यह इस्माईल ज़बीहुल्लाह की मां हाजरा हैं।

आवाज़ थोड़ी देर के लिए रुक गयी और क्षण भर बाद अति मीठे स्वर में किसी ने कहा--

—अहमद की मां! इब्राहीम की दुआ मुबारक!

—आमना! यह ईसा रूहुल्लाह की मां मरयम हैं, कुमारी मरयम!

—शानदार नगर के प्रचारक की मान्य माता-फिर दूसरा स्वर—

—मुहम्मद की मां! ईसा का संदेश मुबारक!

अभी दिन रात मिले-जुले थे, इसलिए के दोनों के भाग्य को एक साथ चमकना था। प्रातः का उजाला फैल ही रहा था, खिलती कलियों की कोमल गिरहें खुल रही थीं, फूलों के होंठों पर मुस्कान फैल रही थी, बनफ़शा व शक़ीक़[1] की कोमल पत्तियों पर ओस के मोती ढलक रहे थे, सर्व व शमशाद ने फूलों की महक पाकर अंगडाई ली थी। सुस्वर चिड़ियों की चहकारों से संपूर्ण वातावरण संगीतमय बन गया था, स्वर्ग आज सचमुच धरती पर उतर आया था। मिना की घाटी, मर्वः के मरु-कण, क़बीस की चोटियां, अरफ़ात का मैदान ज्योति पाकर जगमग-जगमग कर रहा था।

सितारे झिलमिला रहे थे, कलियां चटक रही थीं और फूल महक ही रहे थे कि इतने में घर की औरतें मारे प्रसन्नता के चिल्ला पड़ीं—

कोई अब्दुल मुत्तलिब को जा कर मुबारकबाद पेश करो।

अब्दुल मुत्तलिब इस शुभ-सूचना के सुनते ही तेज़ी के साथ आए। मारे प्रसन्नता के पांव बहके-बहके-से पड़ रहे थे। अब्दुल मुत्तलिब के चेहरे की झुर्रियों में प्रसन्नता झिलमिला रही थी। आमना ने लज्जा से चादर मुंह पर डाल ली। अब्दुल मुत्तलिब ने पोते को देखा, माथा चूमा, उनकी आंखों में बिजलियां-सी चमक रही थीं।

कुरैश के सरदार! इतना ज्योतिर्मय चेहरा आप ने आज तक देखा न होगा, औरतों ने एक साथ कहा।

---

१. फूलों के नाम,

'संदेह नहीं। न केवल मैंने, शायद संसार में किसी आंख ने ऐसी ज्योति न देखी हो, चन्द्र, सूर्य, आकाश-गंगा, इंद्र धनुष, फूल, खिलती कलियां, चकित हूं कि किस चीज़ से इस शिशु के मुखड़े की उपमा दूं, उसके सौन्दर्य के सामने तो ये सब फीके तथा बे-रंग हैं! और ये बातें में प्रेमवश नहीं कह रहा हूं, यह वास्तविकता है, जो अब्दुल मुत्तलिब के मुख से आप ही बोल रही है—अब्दुल मुत्तलिब के उत्तर पर औरतों में आपस में काना फूसियां होने लगीं, जैसे कोई अपने मन की बात कहना भी चाहे और किसी कारण खुलकर न कह सके।

'क्या काना फूसियां हो रही हैं। अच्छा गीत गाना चाहती हो, मैं चला जाऊं! मुझ बूढ़े के सामने दफ़बजाते हुए लाज आती होगी।' अब्दुल मुत्तलिब के कहने पर औरतें बोलीः—

'—अब्दुल्लाह के बाप! रात हम ने अपनी इन आंखों से जो दशा देखी है, अगर किसी के सामने बोलें तो लोग कहेंगे कि ये औरतें दीवानी हो गयी हैं। किसी ने इन पर जादू कर दिया है, इन का दिमाग़ चल गया है। रात का दृश्य शब्दों में नहीं बखाना जा सकता, वह देखने ही की चीज़ थी, कहने की नहीं और कोई कहना भी चाहे तो वह बात शब्दों में कहां समाएगी।'

अब्दुल मुत्तलिब ने मुस्कराकर जाना चाहा।

—'इब्ने अब्दुल्लाह कहा करें इस हाश्मी शिशु को' —एक महिला ने पूछा।

—अच्छा, नाम की ओर संकेत है! बहुत ख़ूब अब्दुल्लाह के जिगर के टुकड़े और आमना की आंखों के तारे का नाम हम ने रखा, अहमद और हां मुहम्मद भी, सम्पूर्ण जगत में प्रशंसा की जाएगी मेरे चांद की! वातावरण में उसी समय एक धीमी सी आकाशवाणी प्रस्फुटित हुई—धरती में ही नहीं, आकाश में भी उसके स्तुतिगान उच्चरित होंगे। अब्दुल मुत्तलिब का उत्तर सुन कर आमना के होंठों पर मुस्कान फैल गयी, उसके दिल की बात अब्दुल मुत्तलिब के मुख पर आ गयी। □

# ...चर्चा और चर्चा

काबा से हट कर कुछ दूरी पर जहां आमुलफ़ील में अब्रहा की फ़ौज ने हरम पर चढ़ाई के लिए आते हुए आख़िरी मंज़िल की थी, कुछ दुकानें हैं —कच्ची दुकानें और भोंपड़ियां भी; किसी-किसी के मेहराबों में पक्की ईंटें भी लगी हैं। इन दुकानों पर घरेलू ज़रूरत का सौदा-सुलफ़ मिलता है, आटा, चावल, सत्तू, नमक, ज़ैतून का तेल, कपड़ा सिलने का धागा और फ़सल की तरकारियां और फल भी—ग्राहक आते हैं, सौदा लेकर चले जाते हैं और दुकानदार और उनके दोस्त अहबाब फिर बातें करने लगते हैं—

—कुछ सुना तुमने उबैद! अब्दुल मुत्तलिब ने अपने पोते के दो नाम रखे हैं, अहमद और मुहम्मद—एक सांवले रंग के दुकानदार ने कहा।

—बिल्कुल नया नाम है। मैं कुरैश वंशावली का विशेषज्ञ हूं और न केवल हर पीढ़ी की वंशावली मुझे याद है, बल्कि अदनान के हालात, मुर्रा का जीवन, किलाब की जीवन-कथा, लुवी की घटनाएं और कुसई के कारनामे गिन-गिन कर बता सकता हूं। मुझे मालूम है कि बनू बिक्र और बनू तग़लब के बीच जब ऊंट चराने पर झगड़ा हुआ था, तो किस क़बीले के कितने व्यक्ति मारे गये थे।

—तुम्हारे इस गुण पर तो बनू ख़ुज़ैम गर्व करते हैं—उन्हीं लोगों में से एक बोल पड़ा इस पर वंशावली विशेषज्ञ मुस्कराते हुए बोलाः

—आदमी तो आदमी, मैं यह तक बता सकता हूं कि उमैया जिस घोड़े पर चढ़ा करते थे, उसकी नस्ल के घोड़े कहां-कहां हैं? और यह अबू सुफ़ियान के पास जो तलवार है, उसे नज्द के शासक ने हर्ब को कब और क्यों दी थी? यही नहीं, खजूरों तक की वंशावली मुझे याद है।

—अरे साहब! आप तो इस अथाह समुद्र के ग़ोताख़ोर हैं! ख़त्ताब इस कला में आपकी बराबरी करें तो करें, और तो कोई मक्का में आपके जोड़ का नज़र नहीं आता, सुनने वालों में से एक ने कहा।

और बूढ़े के स्वर में अभिमान और बलवान हो उठा।

—यह जो मुताले का बाग़ सु-स्वाद खजूरों के लिए सारे हिजाज़ में प्रसिद्ध है, उस की नस्ल का सिलसिला क़बीला तै के उस मरुद्यान तक पहुंचता है, जो फ़िजार की लड़ाई में उजड़ गया। कहो तो हियरा के बादशाहों की दास्तानें सुना दूं, क़िब्तियों की उन्नति अवनति का इतिहास बखानूं।

—(चचा जान!) इब्ने अब्दुल्लाह का उल्लेख हो रहा था।

इस पर बूढ़े ने गहरी सांस ली, तेज़ और निर्बाध वार्ता ने उसे थका-सा दिया था। बोला—

मैं यक़ीन के साथ कह सकता हूं कि अहमद और मुहम्मद आज तक किसी क़ुरैशी का नाम सुनने में नहीं आया—बिल्कुल नया नाम, अछूता नाम, पर कितना प्यारा, इस नाम की तरफ़ मन आप से आप खिंचा जाता है।

इस पर एक अधेड़ उम्र का अरब, जो रस्सी बट रहा था, इस काम करते में बातें भी सुनता जाता था, कहने लगा—

'मेरी सौतेली मां, अब्दुल्लाह के बेटे को देखकर आयी है। वह बुतों पर हाथ रख कर कहती थी कि इतना हंस मुख, प्यारा, होनहार और सुन्दर बच्चा मैंने आज तक नहीं देखा, आंखों को, बराबर देखते रहने के बाद भी, संतोष नहीं होता। जी चाहता है कि बस देखते ही रहें। अब्दुद्दार के घर वालों को ज़ुबैद के सौन्दर्य पर बड़ा गर्व है। निश्चित रूप से ज़ुबैद अति सुन्दर है, पर आमना के बेटे के तलवे उस ज़ुबैद के गालों से अधिक रोशन हैं। मैं कहती हूं अब्दुल मुत्तलिब के घर में अब चिराग़ जलाने की ज़रूरत नहीं है। मुहम्मद का चेहरा स्वयं रोशन चिराग़ है। दारुन्नदवः में भी क़ुरैशी नेता इसी विषय पर वार्ता कर रहे थे। उन की बातें—

'अब्दुल्लाह के बेटे की हर घर में चर्चा है।'

'जी हां! यही हाल है। उमैया ने बेटा पैदा होने की ख़ुशी में सारे मक्का को भोज दिया था, पर यह ख्याति और लोकप्रियता तो उसे भी नहीं प्राप्त हुई।'

'आज जब काबे की परिक्रमा कर रहा था, तो अब्दुल्लाह के बेटे के जन्म का ध्यान आते ही मुझे ऐसा लगा, मानो कोई मेरे कान में कह रहा है कि अरब के इतिहास का सब से ज़्यादा रोशन, बल्कि अनश्वर पन्ना उलटने वाला है।'

'और मेरा सपना—आप लोग न सुनें तो अच्छा है, आप को दुख होगा।

(सब ने मिल कर कहा, नहीं नहीं, यह नहीं हो सकता। जब बात मुख पर आ गयी, तो उसे कह डालना ही अच्छा है।) मैंने रात सपना देखा कि मैं शराब पीना चाहता हूं, पर किसी ने मेरे हाथ से प्याला छीन कर फेंक दिया। मैंने अपने उपास्य यऊक़ को सज्दा करना चाहा तो एक हाथ ने पकड़ कर मुझे सीधा कर दिया कि अब बुतों की पूजा न हुआ करेगी। (कुरैशी नेताओं के माथे पर पसीना आ गया) और मैंने अपनी रखैल ज़हबा की ओर बढ़ने का यत्न किया तो मुझे किसी ने झटका मार कर पलंग से नीचे गिरा दिया कि इन बद-कारियों को अब ख़त्म करो।'

(एक बूढ़ा कुरैशी, जिस की भवें तक सफ़ेद हो गयी थीं) 'सपना बड़ा भयानक है। मैंने बड़ी-बड़ी भयानक लड़ाइयां देखी हैं और उनमें बड़ी वीरता से सम्मिलित हुआ हूं और कभी धैर्य का साथ नहीं छोड़ा, पर न जाने क्यों इस सपने के सुनने से मन बैठा-सा जाता है। (हाथ उठा कर) उज़्ज़ा मेरे दिल को संभाल! लात! मुझमें साहस जन्मा, मनात! यह हम क्या सुन रहे हैं? तेरी खुदाई के झंडे कहीं झुक न जाएं।'

(नव-जवान अरब जोश में आकर उकडूं बैठते हुए)

'कायरता की कैसी बातें कर रहे हो, अबू मर्जान! बुतों के अनादर का पहलू निकलता है तुम्हारी बातों से। मैं डरता हूं कि कहीं तुम हमारे खुदाओं के अज़ाब में फंस न जाओ। सपने की बातें सुन कर तुम्हारे छक्के छूट गए। तुम तो कहते थे कि बनी कनाना से जब लड़ाई हुई थी, तो मुझ अकेले ने बीस शत्रुओं की तलवारें बेकार कर दी थीं और मेरा घोड़ा बहुत देर तक शवों पर दौड़ता रहा, पर आज तो तुम्हारा धैर्य छूट रहा है। लगता है तुम्हारे बाल धूप में सफ़ेद हुए हैं। जभी तो सपनों को इतना महत्व दे रहे हो। मैं अभी-अभी नायला की पूजा करके आ रहा हूं। रास्ते में मेरी प्रेमिका ग़ज़ाला मिल गयी, उस ने तेज़ शराब के तीन प्याले पिला दिए, फिर उसकी छोटी बहन तुर्फ़ा को यह पद गाकर सुनाया—

'दिल की लगी शराब ही से बुझती है और कभी मन की आग भड़क भी जाती है, इसी लगाने-बुझाने में जीवन का आनन्द है।'

(कुरैश का एक सरदार, जिस की दाढ़ी घनी और सर के बाल उलझे-उलझे से थे) जब काव्य की बात छिड़ गयी है, तो मुझ से भी दो पद सुन लीजिए, आज ही कहे हैं अब्दुल मुत्तलिब[1] के बेटे के जन्म की सूचना पा कर—

१. अरब पोते को दादा का बेटा कहते हैं।

'अब्दुल्लाह निर्जन स्थान पर है और उस के घर में चांद निकला है। काश! उस तक यह संदेश पहुंच सकता'।

बनी हाशिम पहले से ही मान्य तथा आदरणीय थे, पर अब उन का गर्व आकाश से भी ऊंचा हो गया है—ये आदर भाग्यवान ही को मिलते हैं'।

'क्या खूब! सच कहा, सच कहा!' का स्वर गुंजरित हो उठा।

मक्का मुअज़्ज़मा से थोड़ी दूर पर एक स्थान का नाम,'मर्रुज़्जहरान' है जो जन-साधारण में 'फ़ातमा घाटी— के नाम से प्रसिद्ध है। इस घाटी में एक संयासी रहता था, जिसका नाम 'ईस' था। ईस ने ईश-सान्निध्य की धुन में अपनी धार्मिक परंपराओं के आधार पर संसार-त्याग कर रखा था। मोटा-झोटा, खाता-पहनता और भक्ति-उपासना में लगा रहता। सब लोग उसे आदर तथा श्रद्धाभाव से देखते थे। अब्दुल मुत्तलिब भी ईस के पास आते-जाते रहते थे।

जिस सुबह अरब का सूर्य उदित हुआ है, उसी दिन अब्दुल मुत्तलिब खुशी-खुशी ईस के पास पोते के जन्म की शुभ-सूचना देने पहुंचे। ईस मठ के द्वार पर खजूर के नीचे कोई मंत्र पढ़ रहा था।

'आज बड़े तेज़ तेज़ कदम उठ रहे हैं—अब्दुल मुत्तलिब! ईस ने मुस्कान भरे चेहरे के साथ कहा।

ऐ मठाधीश! एक शुभ-सूचना लाया हूं, प्रफुल्लित करने वाली सूचना! आप बाल-बच्चों और सन्तान के नातों से स्वतंत्र हैं, फिर भी आप को प्रसन्नता होगी।' —अब्दुल मुत्तलिब ने पगड़ी का पेच संभालते हुए उत्तर दिया।

'कहो-कहो! तुम्हें तो प्रसन्नता ने इस बुढ़ापे में जवान बना दिया।' ईस बोला।

'—अब्दुल्लाह के आज सुबह बेटा पैदा हुआ—सुन्दर मुखड़ों वाला बच्चा! सारे मक्के में उसके सौन्दर्य की धूम मची है। लोगों का अभिनन्दन स्वीकार करते-करते मैं थक गया,' अब्दुल मुत्तलिब ने इबा का दामन उठाते हुए कहा।

'—उसका तुम ने नाम क्या रखा?—'ईस राहिब ने पूछा।

'—मुहम्मद!' (होंठों पर जीभ फेरते हुए, जैसे कोई मिठास का स्वाद चाटना चाहता हो) अब्दुल मुत्तलिब ने उत्तर दिया।

'अब मैं तुम्हें मुबारकबाद देता हूं। यह वही बच्चा है, जिसके जन्म की सूचना मैंने बार-बार तुम्हें दी है। सुनो! इस लड़के को मैंने तीन कारणों से

पहचाना—

१. एक तो यह कि रात एक सितारा उदित हुआ, जो इस से पहले कभी नहीं देखा गया।

२. दूसरे जन्म सोमवार को हुआ।

३. तीसरे उसका नाम 'मुहम्मद' रखा गया। अपने भाग्य पर गर्व करो अब्दुल मुत्तलिब! बनू हाशिम को इतिहास कभी न भुला सकेगा। काश! तुम उसका कीर्तिमान वैभव देखने के लिए ज़िंदा रह सकते! □

# आमना विधवा हो गयीं

बीबी आमना के मन में तमन्नाएं मचल रही थीं कि अब्दुल्लाह अपने बेटे को देख कर कितने प्रसन्न होंगे, उन का सुन्दर चेहरा मेरे चांद का माथा चूम कर प्रफुल्लित हो उठेगा। वह पूछेंगे, नाम क्या रखा है मेरे लाडले का। मैं लजा कर कहूंगी—अहमद और मुहम्मद!—वह और अधिक प्रसन्न हो उठेंगे, क्योंकि इन नामों में विचित्र संगीत और अति शोभनीय मिठास है। फिर मैं शिकायत करूंगी कि आप ने यात्रा में इतने दिन लगा दिये, क़ाफ़िले तो मक्का से शाम जा-जा कर कभी के लौट आए—वह कहेंगे, मुहम्मद की मां! मैं यसूरिब में बीमार हो गया था। तुम्हारे ही नाते-रिश्तेदारों बनू नज्जार के यहां ठहर गया था। अच्छा होते ही मक्का दौड़ा चला आया—और मैं उत्तर दूंगी, इसकी तो मुझे हसरत रह गयी कि मैं बीमारी में तुम्हारी सेवा न कर सकी। मैं तुम्हारी बीमारी की सूचना पा कर बहुत बे-चैन हो गयी थी। ऐ मुहम्मद के बाप! दिल कहता था कि मेरे पर लग जाएं और मैं कैसे ही यसूरिब पहुंच जाऊं—बनू हाशिम के घराने की औरतें, तुम्हें मालूम है कि अकेले यात्रा नहीं किया करतीं, वरना मैं तेज़ ऊंटनी पर सवार होकर यसूरिब पहुंच कर ही चैन लेती।

हज़रत आमना को हर क्षण अब्दुल्लाह के आने का इन्तिज़ार था। वह इस विचार में मग्न थीं कि वह (अब्दुल्लाह) यसूरिब से ऊंटों सहित चल दिये होंगे। उनकी ऊंटनी तो बहुत तेज़ है, हवा से बातें करती है और लोग बीस दिन में यसूरिब से मक्का आते हैं, तो वह दस दिन में आ जाएंगे—वह आ रहे हैं, आ चुके। द्वार पर उनके क़दमों की आहट सुन रही हूं।

यसूरिब से क़ाफ़िला आ गया। अब्दुल मुत्तलिब क़ाफ़िले वालों से मिल कर आ रहे हैं—एक लड़की ने बाहर से आकर कहा।

क्या कहा—क़ाफ़िला आ गया? और वह नहीं आए—आमना के मुख से रुक-रुक कर ये शब्द निकले। इतने में अब्दुल मुत्तलिब आए, चेहरा कुम्हलाया-सा, बाल परेशान, माथा पसीने में डूबा हुआ, पगड़ी के पेच गरदन में

पड़े हुए—इस स्वरूप को देख कर ही आमना के कलेजे में धक्का-सा लगा—अरब ऐच-पेच से बात कहने के आदी नहीं होते—अब्दुल मुत्तलिब आते ही बोले—आमना तू विधवा हो गयी! मुहम्मद यतीम हो गया, अब्दुल्लाह मर गया— दो ढाई महीने हुए—काश! मरने वाला अपने चांद के सुन्दर मुखड़े को एक नज़र देख लेता, पर भाग्य के लिखे को बदलना इंसान के बस का है ही नहीं!

आमना की आंखों में आंसू आ गए। अब्दुल मुत्तलिब के वहां रहने तक आंसू रुके रहे—स्वाभिमान ने भावनाओं को थामे रखा। ससुर के जाते ही आंखों से आंसुओं की वर्षा होने लगी। पास-पड़ोस और घर-बाहर की औरतें भी अब्दुल्लाह को रोने के लिए इकट्ठी हो गयीं। कुरैशी औरतें बैन कर-कर के रोने लगीं—

अब्दुल्लाह! तुम्हारी सज्जनता के चर्चे हर किसी के मुख पर हैं और तुम्हारे सौन्दर्य की ख्याति मक्का की गली-गली में है। अब्दुल्लाह! उदारचेता अब्दुल्लाह! शालीन तथा सच्चरित्र अब्दुल्लाह! बनी हाशिम तुम्हारी युवा-मृत्यु के शोक से टूटे जा रहे हैं—हाय मक्का का चांद यसूरिब की धूल में मिल गया—हज के लिए जब बाहर से लोग आएंगे, तो तुम्हारी तरह कौन उनका आतिथ्य सत्कार करेगा! अब्दुल्लाह तुम्हारे बूढ़े बाप की सफ़ेद दाढ़ी आंसुओं में भीग रही है। आमना का सुहाग उजड़ गया। उस का रंडापा देखा नहीं जाता। हाय मुसीबत! उसका शोकाकुल मन डोलता जा रहा है—और तुम्हारा—अहमद—मुहम्मद (हिचकियां—लगातार हिचकियां, मानो भावुकता ने बोलने वाली ज़ुबान गूंगी कर दी हो, अब अधिक बोला नहीं जा सकता।)

आमना चुप थीं, मौन, लम्बा मौन, मानो सचमुच बे-जान हो गयीं, चेहरा सुता हुआ, होंठों पर आहों की धीमी-धीमी आंच, आंसुओं में डूबी आंखें! उजड़ा हुआ सुहाग, ममता बनकर अब्दुल्लाह के यतीम मुहम्मद को टकर-टकर देख रहा था।

बहुत से ग़मों का बखान नहीं किया जा सकता। मन की बहुत सी चोटें शब्द नहीं बन सकतीं, बहुत से दुख कहे नहीं जा सकते। ग़म के पंख तो शब्दों में आ कर और चोट खा जाते हैं—आमना का ग़म भी इसी प्रकार का ग़म था, शोकाकुल, शान्त—दुखी, मौन, आंसुओं से मन के बोझ को थोड़ा समझा जा सकता था—हाय! वह विधवा युवती, जिस का सुहाग यकायकी पति की मौत ने खसोट लिया हो। □

# हलीमा के यहां

आमना के लाल को दूध पिलाने का सौभाग्य अबू लहब की लौंडी सुवैबा को प्राप्त हुआ। 'इसके बाद अरब की रीति के अनुसार मक्का के नवजात शिशुओं को लेने के लिए बाहर की बस्तियों से दूध पिलाने वाली औरतें आयीं—दुनिया में क़दम-क़दम पर माया के फंदे लगे हैं। हर किसी के मन में रुपये-पैसे का लोभ होता है। फ़ायदा कमाने की लालसा, नफ़ा की उम्मीद! अरब की दाइयां भी इस भावना से अछूती न थीं, उनके साथ भी पेट की आग लगी हुई थी। वे मक्का इसी कामना के साथ आयी थीं कि मालदार घरानों के बच्चे लेकर इनाम व इक्राम से अपनी-अपनी गोद भर लेंगी। सब ने ऐसे ही बच्चों को चुन लिया, जिन के मां-बाप ज़िंदा थे, खाते-पीते घरानों के थे।

यह संसार बहुत ज़्यादा प्रत्यक्ष को पूजने वाला और संकुचित दृष्टि रखने वाला पाया जाता है। यहां के लोग छिलके पर जान देते हैं, उसकी तह तक पहुंचने और उसे प्राप्त करने का यत्न नहीं करते। फूलों के रंग पर निछावर होते हैं, लेकिन यह कोई नहीं सोचता कि आओ रंग-सुगंध के इस पर्दे को भी तनिक उलट कर देखें कि इस के पीछे भी कुछ है कि नहीं—लोभ और स्वार्थ ने आँखों पर पर्दे डाल रखे हैं। प्रत्यक्ष के ये दीवाने वास्तविकता को छू भी नहीं पाते—बस ऊपरी स्वाद, आन्तरिक आनन्द से अनभिज्ञ—मात्र स्वरूप पर मोहित, अर्थ से परायापन।

अरब की दूध पिलाने वालियाँ—भाग्यहीना तथा प्रत्यक्ष की पुजारिनें मालदार घरानों में फिरती रहीं, पर अब्दुल मुत्तलिब के घर आते हुए झिझकीं। अब्दुल्लाह के मोती जैसे यतीम पर किसी का ध्यान न गया—यह सोच कर कि बे-बाप का बच्चा है, हमें क्या हाथ आएगा, विधवा माँ परेशान और दुखी है।

—हमें बेचारी क्या देगी—माना कि अब्दुल मुत्तलिब क़ुरैश के जाने-माने सरदार और काबे के मुतवल्ली हैं, सभी उन का आदर करते हैं, पर उदारता तथा दान-वीरता के कारण उनके पास बचता ही क्या है—सौ की आमदनी, दो सौ का

ख़र्च—जब देखो, घर में यात्रियों का सत्कार हो रहा है और हज़ के अवसर पर तो अब्दुल मुत्तलिब की ज़ेब ख़ाली हो जाती है, साल भर की कमाई हाजियों के आदर-सत्कार की भेंट चढ़ जाती है। दाइयाँ कुरैश के बच्चों को मक्का से लेकर बहुत-से सामानों के साथ रवाना हुईं।

अब्दुल उज़्ज़ा ने बीस दीनार और दो सौ दिरहम मुझे दिए हैं—एक दाई ने स-गर्व कहा।

और मुझे इस बच्चे के मामू ने अलग इनाम दिया, चचा ने अलग और बाप ने तो मुझ ग़रीब को मालामाल कर दिया। दिरहम व दिनार से थैली भर कर ले जा रही हूं—दूसरी दाई ने उत्तर दिया।

यह देख यमनी चादरें, चाँदी का हार और मूल्यवान बाज़ूबंद और अबू रफ़ादा ने अपने उपास्य बुत पर हाथ रख कर कहा कि जब तू मेरे बच्चे को सही-सलामती के साथ वापस ले कर आएगी, उस वक़्त अपने दिल के अरमान निकाल लूंगा, यह तो मेरी कृपाओं की पहली वर्षा है—तीसरी औरत ने कहा।

इस लाडले (बच्चे की ओर इशारा करते हुए) के दादा ने एक ऊंट सामान से लदवा दिया है। खजूर, अन्न, सत्तू, बर्तन, पहनने के जोड़े और चलते समय बड़े मियाँ ने कहा—अनीज़ा! हज के अवसर पर अपने किसी रिश्तेदार को मक्का भेज देना, एक दो ऊंट और दस-बीस बकरियाँ तेरे लिए उसके साथ कर दूंगा।

पर बेचारी हलीमा—चौथी औरत की बात अधूरी रह गयी, (बात काट कर) हाँ! ग़रीब हलीमा पर मुझे भी तरस आता है, किसी मालदार घर का बच्चा उसे न मिल सका। अब्दुल मुत्तलिब के घर गयी है, अब्दुल्लाह के यतीम को लेने के लिए। वहाँ उसे क्या मिलेगा।—बहुत-से-बहुत दस पांच साअ खजूर और सत्तू की एक-दो थैलियाँ—यतीम बच्चों के दूध पिलाने में सदा घाटा रहा करता है दाइयों को! आमना के पास दुआओं के सिवा और क्या रखा है, पर निरी दुआओं से तो भूखे का पेट नहीं भरता। मैं कहती हूं कोई सौ दुआएं न दे एक दिरहम दे दे—पाँचवीं दाई ने दया-भाव से कहा और उस का ऊंट बलबलाने लगा।

बनी साद बिन बिक्र के क़बीले की दाई हलीमा बहुत दुखी थी। मन ही मन पछता रही थी कि हाए! अमीर घरानों के तमाम बच्चे दूसरी दाइयों ने चुन लिए, मेरे भाग्य में यतीम बच्चे को दूध पिलाना लिखा था। शीमा (हलीमा की लड़की का नाम) के बाप झुंझला कर ताने देंगे कि अच्छे बच्चे को लेकर आयी है, जिस के घर वालों को दिरहम व दीनार तो एक ओर रहे, दो-चार मन अनाज भी साथ

करने को न था। उन के ताने मुझे सुनने पड़ेंगे, मुझ से कोई उत्तर न बन पड़ेगा।

हलीमा, दुखी हलीमा, हाथ मलती अब्दुल मुत्तलिब के घर पहुंची। मुहम्मद सो रहे थे। मुबारक चेहरे से हल्का-हल्का नूर छन रहा था, चाँदनी से अधिक दिलकश और मनमोहक! हलीमा दबे पाँव नज़दीक गयी। मुबारक सीने पर प्यार से हाथ रखा। मुहम्मद ने आँखें खोल दीं। मुस्कराए और हलीमा की ओर देखने लगे।

हलीमा ने सैकड़ों बच्चे देखे थे और दसियों को दूध पिलाया था, पर उस यतीम का ढब ही सबसे अनोखा था। उसकी मुस्कान में तस्कीन का पैग़ाम, प्रेम की आवाज़ और सब से बढ़ कर यह कि एक निराली शान थी। छोटे और इतने छोटे बच्चे यों ही मुस्का दिया करते हैं, लेकिन अब्दुल्लाह के यतीम की मुस्कान में एक संदेश, एक उद्देश्य झलक रहा था। मुस्कान आप ही आप बोल रही थी और चुप निगाहें कुछ कह रही थीं।

हलीमा इस बच्चे को यतीम समझ कर दुखी न होना। खुदा की कसम! इसकी बड़ी शान होने वाली है—आमना ने दाई हलीमा से कहा।

बीबी सच कहूंगी, झूठ न बोलूंगी, अब से पहले मैं बहुत दुखी थी, रह-रह कर पछतावा आता था कि किसी अमीर घराने का बच्चा क्यों न मिला। अपने दुर्भाग्य पर मैं झुंझला कर रह जाती थी, पर तुम्हारे लाडले यतीम की मुस्कान ने मेरे मन से सारा दुख दूर कर दिया, उसकी निगाहों ने तमाम ग़म भुला दिये। मुहम्मद की माँ! मैं अपने मन के भाव शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। मेरे मन को आज जितनी पहले कभी प्रसन्नता नहीं हुई। तुम्हें खुद भी नहीं मालूम बिन्ते वहब! तुम्हारे मुहम्मद की मुस्कान ने मुझे क्या बना दिया। इस सुबह से बेहतर सुबह मुझ पर आज तक उदित नहीं हुई। (बीबी आमना मुस्कराती हैं)।

हलीमा आमना के लाल को लेकर विदा हुई। विधवा माँ ने यतीम बच्चे को चूमा। ममता के चिह्न चाँद से मुखड़े पर उभर आये, पलकें अनचाहे ही भीग गयीं। मासूम यतीम की जुदाई ने उस के बाप की मौत के ग़म को ताज़ा कर दिया। एक ग़म दूसरे ग़म की याद दिला दिया करता है।

बूढ़े अब्दुल मुत्तलिब ने पोते को स-प्रेम विदा किया। मक्का की पहाड़ियों तक हलीमा के ऊंट के साथ-साथ अब्दुल मुत्तलिब पैदल चले गये। भर्राई हुई आवाज़ में बोले—

'हलीमा! यतीम बच्चा समझ कर देख-भाल में कमी न करना, खुदा की

कसम! कुरैश में इतना भाग्यशाली बच्चा आज तक नहीं पैदा हुआ। मुझ से काहिनों, राहिबों, बतरीक़ों, उस्कुफ़ों ने कहा है कि एक दिन ऐसा आएगा कि तमाम दुनिया मुहम्मद के क़दमों पर झुकी होगी।'

हलीमा ने उसके उत्तर में कहा—

'कुरैश के सरदार! आप इत्मीनान रखें, आपके बच्चे का अल्लाह ने चाहा, तो कान भी गर्म न होने पाएगा। मैं खुद गीले में सोऊंगी और उसे सूखे में सुलाऊंगी। मेरी बच्ची शीमा के होंठ उस समय तक दूध नहीं चख सकेंगे, जब तक मुहम्मद पेट भरे न हो जाएं। यह मैं पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कह रही हूं अब्दुल मुत्तलिब! खुदा को बीच में ला कर! मुझ पर भरोसा करो, ऐ अबू-अब्दुल्लाह।'

हलीमा खुश-खुश चली।

ऊंट रेगिस्तान में चल रहा था और हलीमा मुहम्मद के चेहरे को देखे जा रही थी। बार-बार मुबारक माथा चूम कर कहती—

'मुहम्मद! अहमद!! अब्दुल्लाह के यतीम!! आमना के लाडले! अब्दुल मुत्तलिब की आँख के तारे!! तुम तो मुझे इस तरह देखते हो, जैसे मुझे पहले से पहचानते हो। तुम्हें जब से देखा है, मुझे अपने बच्चे याद नहीं आए, तुम मेरी ममता बन कर रह गये हो! अब्दुल्लाह के बेटे! (मुहम्मद मुस्कराते हैं) हाँ! हां! तुम मुस्का कर मेरी बात की पुष्टि कर रहे हो कि हलीमा तू सच कह रही है, तुम्हारी मुस्कानों ने मेरी अंधेरी दुनिया में उजाला कर दिया—मुहम्मद! और—अरे—यह—यह मेरी सुस्त क़दम ऊंटनी हवा की तरह उड़ी जा रही है (और चारों ओर चकित होकर देखते हुए) यह क्या हो रहा है? खजूर की सूखी डालियों से यकायकी रोशनी-सी बरसने लगी। पहाड़ियों की चट्टानें लौ दे रही हैं और यह रास्ता! जैसे किसी ने सितारे कूट कर बिछा दिये हैं—बड़े हो कर न जाने तुम क्या बनने वाले हो मुहम्मद! उस वक़्त अपनी दाई हलीमा को कहीं न भूल जाना, पर यह मैं क्या ना-समझी की-सी बातें कर रही हूं। तुम मुझे नहीं भूल सकते। तुम्हारे मुंह से तो मुहब्बत और वफ़ा की बू आती है। इन प्यारी आँखों में मुरव्वत झलक रही है और मुझे तो ऐसा दिखायी देता है जैसे मुहम्मद तुम्हारे कंधे दुनिया-जहान के ग़मों का बोझ उठाए हुए हैं।'

हलीमा की ऊंटनी खूब तेज़-तेज़ जा रही थी। ऊंट वाला उस की तेज़ी पर खुद हैरान था। पिछली रात थी, सितारे झिलमिला रहे थे। ठंडी हवाओं की गोद

में बबूल की डालियाँ झूला झूल रही थीं। ऊंटबान गीत गाने के लिए बे-चैन-सा हो गया। उसे आज शराब संगीत और वासनात्मक भावनाओं के विषय पर पद याद ही नहीं आ रहे थे। उस ने स्मृति पर बल डाल कर तुर्फा के पद याद करने का यत्न किया, पर याद न आए। ऐसा लगता था, मानो उस के मानस-पटल से किसी ने रंगमय पदों को धो दिए हैं। हिंजाज़ी सुर में उस का गीत-

'बर्कुल ग़माद के मरूद्यान में जब तीमा के सरदार सुर्ख़ ऊंटों पर यात्रा कर रहे हों, तो उनसे कहना कि शालीनता का एक कण चाँदी-सोने के पहाड़ों पर भारी होता है। यमन के लाल हुल्लों (पहनावों) से इस कम्बल के पैवंद अच्छे हैं, जिसे किसी सज्जन के हाथ ने छुआ हो—यह बात वह है, जो सूर्य हर प्रातः उदित होते समय मुझ से कहता है।

अदन के मोती परिश्रम से निकाले जा सकते हैं, पर सौभाग्य की बात ही कुछ और है—यह प्रकृति की देन है और आसमान की ऊंचाइयों से उतरी हुई नेमत।'

संगीत के इस रसिया ने फिर हलीमा को संबोधित करते हुए कहा—

शीमा की मां! तुम भी तो कोई पद सुनाओ! तुम्हारा क़बीला तो उच्च श्रेणी की भाषा में प्रसिद्ध है, हम देहाती तो भाषा में तुम लोगों के शिष्य हैं।

हलीमा ने उत्तर दिया—

मुझे बस एक ही पद याद है—मुहम्मद—मुहम्मद—अहमद—अहमद—इस नाम से अधिक मीठे अरब कवियों के तमाम काव्य मिल कर भी नहीं हो सकते! अब्दुल फ़स्ह पर जब बनू साद की युवतियां गीत गा कर मुझ से कुछ सुनाने के लिए कहेंगी, तो मैं बस 'मुहम्मद' कह कर चुप हो जाऊंगी। यह नाम उन सब गानों का उत्तर होगा। ऐ ऊंटबान! तुम अपना संगीत चलाए जाओ, मुझे संबोधित करने की कोशिश न करो—यह देखो मुहम्मद मुस्कराने लगे—(हलीमा के होंठ झुकते हुए धनुष बन जाते हैं)।

रास्ते के पेड़, रेत के टीले, पथरीली घाटियां, यहां तक कि हवा में उड़ने वाली पत्तियां हलीमा का अपनी मूक भाषा में अभिनन्दन कर रही थीं और कहती थीं—

'हलीमा! भाग्यवती हलीमा! अभिनन्दन स्वीकार कर। जानती है तू किसे लिए जा रही है। अब संसार में जिसे भी सौभाग्य और सन्मार्ग मिलेगा, वह इसी

के कारण होगा। इसके पद-चिह्नों को 'सीधा मार्ग' बनाया जाएगा। क़ैसर व किसरा के ताज इसके गुलामों की ठोकरों में होंगे। हिदायत के जितने दीप अब तक रोशन हो चुके हैं, इन सब का उजाला उसकी हिदायत के नूर में मिल कर 'सदा जलने वाला दीप' बन जाएगा, जिसकी रोशनी कभी हल्की पड़ने न पायेगी—हलीमा! बादशाहों और सम्राटों के नाम मिट जायेंगे, पर अब्दुल्लाह के यतीम मोती के कारण तेरा नाम इतिहास में सदैव याद रहेगा। जब कभी मुहम्मद की जीवन-गाथा बखानी जाएगी, लोग कहेंगे, हलीमा सादिया ने उन्हें दूध पिलाया था। अमिट हो गया तेरा नाम हलीमा! बनू साद की गुमनाम दूध पिलाने वाली, तुझे हमेशा की ख्याति प्राप्त हो गयी। कुरैश का बड़े से बड़ा अमीर तुझे सोने में तोल सकता था, पर इस यतीम मोती के सदके में जो नेमत तुझे मिली हैं, इसे कौन दे सकता है?

हलीमा जब अपनी बस्ती में पहुंची, तो उसकी ऊंटनी की तेज़-रफ़्तारी को देख कर सब ताज्जुब करने लगे। एक औरत ने कोठे की खिड़की से झांकते हुए कहा—

'यह हलीमा यहां से मरियल ऊंटनी पर सवार हो कर गयी थी, उससे चला ही नहीं जाता था, दुबली-पतली, उपवासों की मारी ऊंटनी कि एक-एक हड्डी गिन लो और कोई फूंक मार दे, तो बेचारी का दम निकल जाए। सब हंसते थे कि हलीमा उस अधमुई सवारी पर कैसे मक्का पहुंचेगी। हम तो यह ख़बर सुनने के इन्तिज़ार में थे कि फ़लां मंज़िल में हलीमा की ऊंटनी ने ठोकर खा कर जान दे दी।

'पर यह तो कुछ और ही दिखायी दे रहा है। इस ऊंटनी के तो पर लग गये हैं। हवा से बातें करती है, मक्का के बबूल खा-खा कर इस मरियल पर जवानी आ गयी।'

हलीमा उसके उत्तर में मुस्कराकर बोली—

'बहन! यह सब इस यतीम बच्चे की बरकत से है। खुदा की क़सम! हमारी बस्ती और क़बीले का भाग्य बदल जाएगा।'

घर के द्वार पर ऊंटनी जा कर बैठ गयी। हलीमा ने बड़ी सावधानी के साथ इब्ने अब्दुल्लाह को उतारा। इतने में हलीमा के पति आ गये और रोष भरे स्वर में बोले—

तुम अब तक कहां रहीं उम्मे शीमा! मैं तो समझता था, तुम्हारी ऊंटनी ने

बीच रास्ते में धोखा दिया, पर यह तो ज़ालिम यात्रा से मोटी-तगड़ी हो कर आयी है और हां, तुम्हारे पीछे बकरियों ने दूध देना छोड़ दिया। सब के थन सूख गये, जैसे कभी उनमें दूध था ही नहीं। एक विपदा हो तो बताऊं। अब की बार हमारी खेतियां आप से आप सूखी जा रही हैं। सब चिन्तित हैं कि फसल की यही हालत रही तो खाएंगे क्या?

हलीमा ने मुहम्मद को पति की गोद में देते हुए कहा—

'तुम तो दुनिया भर के किस्से सुनाने बैठ गये, शीमा के बाप! इस बच्चे को तो गोद में लो, बनी हाशिम का यह रोशन दीप, कुरैश के सरदार अब्दुल मुत्तलिब का पोता, अब्दुल्लाह का यतीम और आमना के कलेजे का टुकड़ा है—यह शिशु! और इसका नाम सुन कर तो तुम झूम जाओगे—(कुछ रुक कर) अहमद और मुहम्मद भी। इसकी बरकत से सारी परेशानियां दूर हो जाएंगी। रास्ते भर इसके नूर से जगमग-जगमग होती आयी है।

हलीमा के पति ने मुहम्मद को प्यार किया और उनके अपार सौन्दर्य को देख कर मंत्र मुग्ध हो गया। देर तक नज़ारा करता रहा, फिर बोला, तुम भूखी होगी शीमा की मां! तुम्हारे लिए कहीं से दूध ले आऊं, हमारी बकरियां तो—(यह कहते हुए उसकी दृष्टि बकरी के थनों पर पड़ी)-अरे! यह क्या? सूखे हुए थनों में दूध आ गया। हलीमा का पति दौड़ा हुआ गया, दूध दूहने लगा, पूरा बरतन दूध से भर गया। मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं, शीमा की मां—यह तो जादू की-सी बातें हो रही हैं। हलीमा के पति ने कहा।

अभी तो मुहम्मद की बरकतों का आरम्भ है। तुम देखना और क्या-क्या होता है, सारे कष्ट दूर हो जाएंगे और मैं तो कहती हूं कि इस बच्चे के देखने में जो आनन्द आता है, सारी दुनिया की खुशियां उस के आगे कुछ भी नहीं। मैं अपने भाग्य पर गर्व करूं या तुम्हारा अभिनन्दन करूं।

हलीमा ने बड़े चाव और ध्यान के साथ मुहम्मद का लालन-पालन किया। जी हां! लालन-पालन! इस बहाने स्वयं उसके भाग्य और जीवन का लालन-पालन हो रहा था। हलीमा की गोद में दोनों दुनिया की दौलत सिमट कर आ गयी थी, चांद और तारों की निगाहे हलीमा के घर की परिक्रमा कर रही थीं। कबीला साद के भाग्य का सितारा आज सच-मुच चमक रहा था और अल्लाह ने उनके दिन फेर दिये थे।

सुबह को बनू साद के किसान, जो अपने खेतों में पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि

सूखे पौधों और मुरझायी हुई डालियों में यकायकी जान-सी पड़ गयी। सूखी खेतियां लहलहाने लगीं, जैसे किसी ने उन पर अमृत छिड़क दिया है। लोग खुशी-खुशी दौड़े हुए आये और कहने लगे—

'भाइयो! किसी को ज़िंदा जादू और जीते-जागते चमत्कार देखने हों, तो हमारे साथ जंगल में चले। तमाम सूखे और वीरान खेतों में हरियाली ही हरियाली नज़र आती है। फसल पर इतनी छवियों के साथ तो आज तक बहार नहीं आयी, तमाम खेत बाग व बहार बन गये, कोंपलों का उठान और डालियों की बढ़वार इस ढंग की है, जैसे दिनों के होते कुछ क्षणों में बालियां लग जायेंगी, रात की रात में यह क्या हो गया? वर्षा की एक बूंद भी बादलों से नहीं गिरी और हम कहते हैं धुवांधार वर्षा हो भी जाती तो वर्षा का प्रभाव आखिर होते-होते होता है। कबीला बनू साद के अनाज की पैदावार में अरब का कोई कबीला बराबरी न कर सकेगा।'

लोगों में इस बात की चर्चाएं होने लगीं। बड़े-बूढ़े आदमी, जिन्होंने वक्त के बहुत-से-गर्म और सर्द और दुनिया की बड़ी-बड़ी क्रान्तियां देखी थीं, कहने लगे कि ऐसा तो कभी देखने में नहीं आया कि रात की रात में सूखे खेत हरे-भरे हो जाएं-शायद हमारे उपास्य हम पर अधिक कृपालु हो गये हैं। उन्हीं की कृपा-दृष्टि की ये लीलाएं हैं-

पर ये उपास्य तो वर्षों से हम में मौजूद हैं। छः वर्ष हुए, जब सूखा पड़ा था, तो उन्होंने हम पर कब कृपा की थी?-एक व्यक्ति ने कहा-और उस व्यक्ति की बात ख़त्म हुई थी कि हलीमा का पति स-गर्व बोला-

'तुम लोग अटकल के बल पर निरे तुक्के लगा रहे हो, सच्चाई नहीं जानते, सो मैं बताता हूं। सुनो! शीमा की मां मक्के से अब्दुल्लाह के बेटे को दूध पिलाने के लिए लायी है। मुहम्मद है उस यतीम मोती का नाम! जब से वह मुबारक बच्चा हमारे घर आया है, बरकतें और रहमतें उतर रही हैं। मेरी बकरियों का दूध सूख गया, पर रात से उनके थनों से दूध के फव्वारे छूट रहे हैं, उसकी बरकतों की दास्तान तो तुम हलीमा के मुख से सुनो। कहती थी कि रास्ते भर नूर बरसता हुआ आया है। ये हमारे खेत, जो देखते-देखते लहलहा उठे हैं, अब्दुल्लाह के उसी यतीम की बरकत से ऐसा हुआ है। तुम चल कर तनिक मुहम्मद को एक दृष्टि देख तो लो, तुम पुकार उठोगे कि ऐसा चमकता मनमोहक चेहरा हमने आज तक नहीं देखा।'

हलीमा दाई ने मुहम्मद को अपने दूध में मुहब्बत घोल-घोलकर पिलायी।

उसने अपना सारा ध्यान और ममता उस यतीम बच्चे पर लगा दी। मुहम्मद की थोड़ी बे-चैनी भी उस से देखी न जाती, घंटों कलेजे से लगा कर टहलतीं, झूला झुलाती-और अपनी विशेष शैली में पद पढ़ती जाती, उसकी लोरियां—

'नींद आंखों में घुल-मिल कर राहत बन जाती है।

फिर उसी राहत की गोद से जीवन जाग कर अंगड़ाइयां लेता हुआ चौंकता है। बहुतों की आंखें बन्द होती हैं, तो दिल भी सो जाते हैं और कुछ की आँखें सोती हैं, पर दिल जागते रहते हैं।'

दो साल बाद आमना के लाल का दूध छूट गया और हलीमा उसे लेकर आमना के पास आयी।

हज़रत आमना की खुशी का क्या पूछना। लम्बे वियोग के बाद अपनी आंखों के तारे को देखा था, ममता आंखों में खिंच कर आ गयी और सोती आरज़ूएं यकायकी जाग उठीं।

अब्दुल मुत्तलिब ने पोते को बार-बार चूमा और मन मसोस कर बोले—

'आज अब्दुल्लाह होता, तो अपने लाडले को देख कर कितना प्रसन्न होता, पर इस बच्चे के भाग्य में यतीमी का दाग़ लिखा था, भाग्य का लिखा पूरा होकर रहा। मक्के में उन दिनों महामारी फैली हुई थी। एक-एक घर से कई-कई जनाज़े निकलते। तमाम शहर परेशान, आतंकित और भयभीत था और डरने और परेशान होने की बात ही थी। हर व्यक्ति को मौत की परछाइयां दिखायी देती थीं, मानो अब मौत का संदेशा आया और अब आखें बन्द हुईं। किसी के थोड़ी-सी चोट भी लग जाती, तो वह यही समझता कि मौत का दूत अब आया ही चाहता है। जीवन की ये अन्तिम घड़ियां हैं। इसकी आख़िरी सांस और फिर मिट्टी का ढेर। इन अंदेशों ने ज़िंदों को बीमारों से भी बुरा बना दिया था।

बस्ती से बाहर नयी क़ब्रें ही क़ब्रें नज़र पड़ती थीं-यमदूत को शायद मक्का वाले पसन्द आ गये थे, जो इन ग़रीबों की जानों को निशाना बनाए हुए थे-मक्का वालों ने अपने बुतों के आगे बहुत कुछ हाथ जोड़े, माथे टेके, मन्नतें मानीं, चढ़ावे चढ़ाए, दुहाइयां दीं, फ़रियादें कीं, माथे रगड़े, पर महामारी का बल न टूटा, उसका यौवन बढ़ता जा रहा था-कुछ कुरैशी युवकों को झुंझलाहट भी आ जाती थी कि इन बुतों पर हम तो जान देते हैं, पर इनके दिल ऐसे पत्थर के हैं कि किसी तरह पसीजते ही नहीं। जिन ख़ुदाओं से दुख-दर्द और विपत्ति में कोई लाभ न पहुंचे, वे किस काम के! हमारे माथा टेकने का आख़िर कुछ तो बदला

मिलना चाहिए।

महामारी का ज़ोर देख कर बीबी आमना ने मुहम्मद को फिर हलीमा के साथ वापस भेज दिया और तीन साल तक हलीमा को यह सौभाग्य प्राप्त रहा। बनू साद का क़बीला भाषा के सौन्दर्य के लिए अति प्रसिद्ध था। इस क़बीले में श्रेष्ठतम कवियों और आग्नये वक्ताओं का बाहुल्य था। अरब कहा करते थे कि बनी साद के खेतों में हरियाली की जगह श्रेष्ठ भाषा उगती है, पर मुहम्मद के सादा और मीठे बोलों को सुनकर सब चकित थे कि इस अल्पायु में वक्तृत्व की यह शान है, तो बड़े होकर भाषा के सौन्दर्य को इन होठों पर गर्व होगा।

मुहम्मद अपनी दाई हलीमा की बकरी का दूध पीते तो अपनी दूध शरीक बहन के लिए खुद से हिस्सा छोड़ देते, दूसरे थन को मुंह न लगाते। लड़कपन में इस न्याय और इस विवेक को देख कर हलीमा के घर वाले कहते कि अब्दुल्लाह का यतीम मोती बड़ा हो कर संसार को न्याय और भलाई से भर देगा और उसकी मां ने सच कहा था कि इस बच्चे की बड़ी शान होने वाली है। उस नेक बीबी के सपने एक-एक करके पूरे होंगे।

कई साल तक हलीमा का घर इस सौभाग्य से आनंदित होता रहा। मुहम्मद की बरकत ने उनकी सारी परेशानियां और ग़म दूर कर दिये। वे दुआएं करते थे कि हाशमी चमन की यह नूर भरी कली यहीं फूल बने। यह सौभाग्य अब हम से जुदा न हो, पर यह हो न सकता था, प्रकृति इस सौभाग्य को विश्वव्यापी बनाने वाली थी, यह ज्योति किसी एक घर के लिए नहीं, संपूर्ण विश्व के लिए थी। इस ज्योति से पूरब व पश्चिम जगमगाने वाले थे और रहमत के बादल हरियालियों से ले कर चटयल मैदानों तक पर बरसने वाले थे।

मुहम्मद की उम्र पांच वर्ष की थी जब हलीमा उन्हें आमना के घर वापस लायीं और मां की अमानत उन को सौंप दी, ग़म और ख़ुशी की झलकियां! आमना को आंख के तारे से मिलने पर ख़ुशी थी और हलीमा को वियोग का दुख। एक के होंठों पर मुस्कान क्रीड़ा कर रही थी और दूसरी की आंखें आंसुओं से भीग गयी थीं। यह ख़ुशी भी मुबारक थी और दुख भी धन्य था कि इन दोनों बातों का ताल्लुक़ उस एक व्यक्तित्व और एक ही अस्तित्व से था। बीबी हलीमा अरमानों और तमन्नाओं के समूह को मुहम्मद के चारों ओर छोड़ कर वापस हुईं। घर आयीं तो घर को बे-रौनक़ और उजड़ा हुआ-सा पाया, मानो उस घर से बहार विदा हो गयी है। □

# ग़मों के दो पहाड़

बीबी आमना ने सात वर्षों का समय विधवा के रूप में बिता दिया। अब्दुल मुत्तलिब ने सुशीला बहू का बहुत दिल रखना चाहा, पर विधवा होना ख़ुद अपनी जगह एक ग़म है। कोई सद्-व्यवहार और हर्षपूर्ण बर्ताव इस दर्द का इलाज नहीं कर सकता। आमना की दुनिया में बस अब मुहम्मद के दम से रोशनी थी। अपने लाडले यतीम को देख कर, खिला कर और चूम कर अपना ग़म ग़लत करती, कभी ऐसा भी होता कि आंख में आंसू चमक रहे हैं और होंठों पर मुस्कान क्रीड़ा कर रही है—ग़म इसका कि युवा पति परदेश की धरती की गोद में सो गया और ख़ुशी इस बात की कि ख़ुदा ने मुहम्मद जैसा बेटा दिया।

हज़रत आमना के ननिहाल के लोग यसरिब (मदीना) में थे। उन से मिले हुए एक समय बीत गया था। यात्रा में ग़म का बोझ भी कुछ हल्का हो जाता है और यह भी सोचा था कि मदीना के क़रीब ही अबवा में अब्दुल्लाह की क़ब्र है। अगर समय के उलट-फेर ने उनकी क़ब्र का निशान छोड़ा होगा, तो उसकी भी ज़ियारत हो जाएगी। इन आशाओं और विचारों के साथ आमना मदीना रवाना हो गयीं। साथ में उम्मे ऐमन थीं और उनकी आंखों का तारा मुहम्मद भी।

जिस शिशु की बरकतों ने हलीमा की यात्रा को धन्य कर दिया था, उसकी अपनी विधवा मां की यात्रा में क्या कुछ बरकतें न उतरी होंगी।

इब्ने अब्दुल्लाह की यह मदीने की यात्रा, सच पूछिए तो हिजरत (देश-परित्याग) की यात्रा की भूमिका थी। प्रकृति मानवता के इतिहास की अति महत्वपूर्ण घटना के लिए अभी से तैयारी कर रही थी।

मदीने में बीबी आमना पहुंचीं तो सुशील संबंधियों ने अति प्रसन्नता व्यक्त की। यों तो मदीना के तमाम घराने आतिथ्य-सत्कार में बहुत आगे थे, पर बनू नज्जार का इस मामले में कहना ही क्या, वे बाहर से आए हुए परदेसियों की राह में आंखें बिछा देते और आमना तो फिर अपनी ही थीं। जी भर कर आदर-सत्कार किया और आव-भगत का हक़ अदा कर दिया।

बीबी आमना को बड़ी-बूढ़ी औरतों ने कलेजे से लगा लिया और अब्दुल्लाह के यतीम के सर पर स्नेहपूर्ण हाथ फेरा। औरतें यों भी नम्र तथा भावुक होती हैं और यह तो अवसर शोक व्यक्त करने का था। एक विधवा और एक यतीम का वे स्वागत कर रही थीं। सब की आंखें आंसुओं से भीग गयीं। इन आंसुओं में नवागन्तुकों के आने का हर्ष भी सम्मिलित था, इस भाव ने आंसुओं को बहुत ज़्यादा उजला और जानदार बना दिया था, मात्र ग़म के आंसू धुंधले-धुंधले से होते हैं।

मुहम्मद के गांभीर्य को देख कर सब को प्रसन्नता भी हुई और वे स्तंभित भी रहे। मुहल्ले में चर्चाएं होने लगीं कि मक्का मुअज़्ज़मा के हाशिमी परिवार का एक बच्चा आया है, जिसके मुखड़े से कीर्तिमय सूर्य उदित होता दिखायी पड़ता है। उसकी बातों में इस प्रकार की मोहकता है कि मन कहता है हाशमी चमन का यह बुलबुल चहकता ही रहे।

मदीना के बच्चे अति सुसभ्य और चेतनावान बच्चे न थे, उनमें ऐसे भी थे, जो एक दूसरे से निर्लज्जता दर्शाते, आपस में लड़ते, एक का हाथ दूसरे का गरेबान। कोई धूल उड़ा रहा है, कोई कंकरियां फेंक रहा है, पर मुहम्मद इन बातों के क़रीब न फटकते—हां! कोई बच्चा तीर चलाने का अभ्यास करता होता, तो उसका साथ देते या फिर बनू अदी बिन नज्जार की बावली में तैरा करते।

मदीना में एक महीना ठहरने के बाद बीबी आमना मक्का जाने के लिए वापस हुईं। रास्ते में अबवा पड़ता था, यहां हज़रत अब्दुल्लाह की क़ब्र थी, ठहर गयीं, ठहर जाना पड़ा, प्रेम के ग़म ने उनका दामन थाम कर कहा, पति की क़ब्र का निशान तो जाते-जाते देखती जाओ, फिर न जाने इधर आना हो या न हो। दिल की एक-एक चोट उभर आयी और कलेजे का हर घाव हरा हो गया, कुछ थकन, कुछ ग़म, कुछ मौसम का असर, फिर यात्रा में नया दाना, नया पानी मिला, बीबी आमना बीमार हो गयीं। मरज़ बढ़ता ही गया। अबवा क्या, पूरे अरब में उस समय अस्पतालों का रिवाज न था। हकीम-अत्तार जड़ी-बूटियों से इलाज क़रते या फिर काहिनों और सन्यासियों से झाड़-फूंक और अमल पढ़वाए जाते। आमना की देख-भाल को वहां परदेश में कौन बैठा था? बस ले-देकर उम्मे ऐमन थीं जो देख-भाल करतीं और पूरी यात्रा में उनका साहचर्य बहुत कुछ काम आया। बीमार और कमज़ोर आमना की देख-भाल और सेवा-सुश्रूषा में उम्मे ऐमन ने तनिक भर भी कोताही न की।

हर रोग शुरू में मामूली होता है, पर आगे चल कर पेचीदगियां और उलझनें पैदा हो जाती हैं, यहां तक कि उन्हीं पेचीदगियों के साए में मौत का दूत यकायकी आ खड़ा होता है कि ओ बीमार! तेरी सांसों की गिनती पूरी हो चुकी, तेरे जीवन की पुस्तिका लिखी जा चुकी, अब इस में एक बिंदी की भी वृद्धि नहीं हो सकती। तेरा दाना-पानी दुनिया से उठ चुका।

पर मनुष्य तो आशाओं का पुतला है, वह अन्तिम सांस तक निराश नहीं होता। सांस उखड़ने तक यही आशा बनी रहती है कि शायद सांस जा कर पलट आए।

बीबी आमना को अपने मरने से अधिक दुख इस का था कि मेरे बाद मेरे दिल के टुकड़े मुहम्मद की देख-भाल कौन करेगा। पैदा होने से पहले बाप का साया सिर से उठ गया। अब कुछ होश संभाला तो मां की मौत आयी जा रही है। दुनिया में हर बच्चे को मां-बाप ही का सहारा होता है। उन्हीं के स्नेह के सहारे बच्चे पलते-बढ़ते हैं। दूसरे नाते-रिश्तेदार कितना ही दिल रखें, मां-बाप के स्नेह वाली बात कहां पैदा होती है? यही ग़म आमना को मरते-मरते खाए जा रहा था।

उम्मे ऐमन तसल्ली देतीं, ढाढ़स बंधातीं कि मुहम्मद की मां! इतना हतोत्साहित न हो, तुम अच्छी हो जाओगी। बीमार को इतना परेशान न होना चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति ही बीमार हुआ करते हैं और बीमार अच्छे भी हो जाते हैं। यात्रा में घर जैसा आराम नहीं मिलता। हर मंज़िल पर पानी बदलता रहता है, कहीं हल्का, कहीं भारी, कहीं इतना मीठा, जैसे किसी ने मिस्री घोल दी है और किसी जगह इतना खारी, मानो पानी नहीं, नमक ही नमक है। इन्हीं बातों ने तुम्हें बीमार डाल दिया है और कोई बात नहीं है। तुम्हारे चेहरे पर बहाली के चिह्न पाये जाते हैं मुहम्मद की मां! बस अब दो-चार दिन में तुम अपने आप को अच्छा हुआ समझो।

आमना के चेहरे पर बहाली आ गयी थी-पर यह संभाला था मौत से पहले का—देख-भाल करने वालों के लिए यह धोखा बड़ा दर्दीला होता है। वे समझते हैं कि रोगी अच्छा हो रहा है और बीमार मरता हुआ होता है। बीबी आमना की हालत बिगड़नी शुरू हुई, अपने बेटे के सिर पर हाथ फेरा, आख़िरी हाथ! कुछ कहना चाहा, पर अन्तिम सांसों ने ज़ुबान को सुन्न कर दिया, दो-चार करवटें लीं और मुहम्मद परदेस में बे-मां के रह गये-वहीं अबवा में, जहां अब से सात वर्ष

'पहले अब्दुल्लाह दफ़्न किये गये थे, आमना को भी दफ़्न कर दिया गया। प्रेम ने सचमुच धरती को समेट दिया था, यही भाव था, जिस ने आमना को मक्का से खींचकर प्रिय पति की 'आरामगाह' में पतिव्रता पत्नी को भी सुला दिया।

मुहम्मद ने अपने जीवन में यह पहली दुर्घटना देखी थी और दुर्घटना भी दुखद—मां की हमेशा की जुदाई, वह भी कहां परदेस में! नाते-रिश्तेदारों से दूर, विवशता और परायेपन की मौत! मक्का में आमना मरतीं, तो सैकड़ों हाशिमी जनाज़े के साथ होते, घर-घर से रोने वालियां आतीं और यहां उम्मे ऐमन के सिवा आंसू बहाने वाला भी कोई न था—मुहम्मद को रोता देख कर उम्मे ऐमन ने बहुत कुछ तसल्ली की बातें कीं, पर यतीम बच्चे के लिए मां के मरने का शोक बड़ा ही मार्मिक होता है, जिस पर बीतती है, वही जानता है।

उम्मे ऐमन कुछ दिनों के बाद यतीम और अबोध मुहम्मद को लेकर मक्का आयीं, अब्दुल मुत्तलिब को बहू और पोते के आने का हर वक़्त इन्तिज़ार रहता था। पोता तो आ गया, पर बहू न आयी, न आ सकी, मौत ने न आने दिया। अबवा की धरती ने उन्हें ढांक लिया—आमना की यह यात्रा परलोक-यात्रा थी, मौत को तो एक बहाना चाहिए—बनू हाशिम के घराने में कोहराम मच गया, शोकाकुल औरतों ने बिलखना शुरू कर दिया।

'क़ुरैश के सरदार! मुहम्मद का अब तुम्हारे सिवा कोई नहीं है।' उम्मे ऐमन ने झिझकते हुए कहा।

'उम्मे ऐमन! क्या तू समझती है कि आमना की यादगार और अब्दुल्लाह की निशानी को यों ही बे-सहारा छोड़ दूंगा। मुहम्मद मेरे कलेजे का टुकड़ा और मेरे बूढ़े और सफ़ेद चक्षुओं की ज्योति है। यह हमज़ा, अक़ील, अबू तालिब, हारिस, अबू लहब और अब्बास मेरे बेटे हैं, पर काबा के रब की क़सम! मुहम्मद इन सबसे मुझे प्यारा है, तुम मेरे स्नेह का अनुमान नहीं कर सकतीं उम्मे ऐमन! काश! दिल दिखाने की चीज़ होती।

प्रकृति जिसको बड़ा बनाना चाहती है, उसे परीक्षा की भट्टियों में तपाती और शोक और दुख की कांटेदार झाड़ियों से गुज़ारती है। पहले दुख देकर हृदय को कोमल बनाया जाता है कि इस कोमलता को दूसरों का दुख दूर करने के काम आना है और दुर्घटनाएं स्वभाव को निखार देती हैं। सुख-ऐश्वर्य से संसार के महान व्यक्तियों को जान-बूझ कर दूर रखा जाता है। दुख और कष्ट के क्षितिज ही से महानताओं के सूर्य उदित हुआ करते हैं। प्रकृति का यही गुण और उसका

यही विधान और उसका यही नियम है।

मां के मरने के एक वर्ष बाद अब्दुल मुत्तलिब, जो अब्दुल्लाह के लाडले का पालन-पोषण करते थे, संसार से विदा हो गये। अब्दुल मुत्तलिब को मरते समय इस बात का बड़ा दुख था कि बिना मां-बाप के बच्चे का भरण-पोषण अब कौन करेगा। काश! मैं कुछ दिन और जीवित रहता, यहां तक कि मुहम्मद अपने पैरों पर खड़े हो जाते।

अब्दुल मुत्तलिब की इस कामना पर प्रकृति मुस्करा रही थी कि इब्ने हाशिम मुहम्मद को बे-सहारा समझ कर दुखी होता है, उस को यतीम जान कर रोता है। बूढ़े सरदार! यह यतीम तो यतीमों का संरक्षक और दासों का सहारा है। जिस के संसार में सहारे टूट गये हों, उसे यह एक दिन सहारा देगा। यह वह है कि चांद-तारे इसके संकेतों पर नाचेंगे। अब्दुल मुत्तलिब शांति-पूर्वक जान दे। मुहम्मद का दुख न कर, उस का दुख हरने के लिए उस का ख़ुदा काफ़ी है।

---

मुबारक चेहरा उतरा-उतरा-सा था, पर इस शोक में भी पवित्र चेहरा उस अध-खिली कली जैसा था जो ओस में तनिक भीग गयी हो। दुख की सच्चाइयां चेहरे की कान्ति को हल्की नहीं कर सकतीं, बल्कि और निखार देती हैं। □

# चचा का सहारा

अब्दुल मुत्तलिब के देहान्त के बाद मुहम्मद (सल्ल०) के चचा अबूतालिब ने यतीम भतीजे को अपनी निगरानी और संरक्षण में ले लिया। कुरैश कहते थे कि यतीमों का उनके रिश्तेदार बस दुनिया के दिखावे के लिए दिल रखते हैं, सच्ची हमदर्दी किसे होती है, पर अबूतालिब ने उनकी शंकाओं को ग़लत सिद्ध कर दिया। घटनाओं ने इन अनुमानों को एक-एक कर के झुठला दिया। अबूतालिब सच्चे हितैषी निकले मानो उनके मन में पहले ही से मुहम्मद (सल्ल०) के लिए जगह थी। बाप (अब्दुल मुत्तलिब) के जीते जी इस भावना को प्रकट करने का अवसर नहीं मिला और बाप का साया दूर होते ही भाई के बेटे की मुहब्बत उसके संरक्षण के लिए अंगड़ाई लेकर उठ बैठी।

अबूतालिब ने अपने स्नेह और प्रेम के आंसुओं से भतीजे के चेहरे से यतीमी की धूल धोयी, हर प्रकार से साथ दिया। दिल रखने के लिए तमाम साधन जुटाए, अपने बच्चों से अधिक स्नेह और आराम के साथ पाला। अब्दुल्लाह के यतीम लाडले की थोड़ी-सी बेचैनी भी स्नेही चचा को गवारा न थी। मुहम्मद (सल्ल०) के पैर में छोटा-सा कांटा भी चुभता तो उसकी खटक अबूतालिब का मन अनुभव कर लेता। यह हालत देख कर मक्का वासी कहने लगे, भाई! अबूतालिब आख़िर कुरैश के सरदार अब्दुल मुत्तलिब का बेटा, बल्कि सही उत्तराधिकारी है। उस से इसी प्रकार के शालीनतापूर्ण व्यवहार की आशा थी। फिर मुहम्मद कोई पराया नहीं है, अबूतालिब का खून और उसी का मांस-चमड़ा है—और फिर बच्चा भी कैसा? कि दूसरे देख कर न केवल प्रेम, बल्कि आदर करते हैं। इस यतीम की सेवा करके अबूतालिब अपने लिए पुण्य-भंडार जमा कर रहे हैं।

अरबों का ज़ीवन सीधा-सादा था, संस्कृति व सभ्यता की औपचारिकताओं से वे पूर्णतः अनभिज्ञ थे। अच्छे-भले खाते-पीते घरानों के बच्चे जंगलों में जा कर ऊंट और बकरियां चराते। चरवाही अरबों का प्रिय कार्य था और आदरणीय

भी। मुहम्मद (सल्ल०) ने भी मक्का के बनों में बकरियां चरायीं। प्रकृति मक्का के बबूलों की एक-एक पत्ती के माध्यम से बोल रही थी कि आज इन घाटियों में जो बकरियां चरा रहा है, कल मानवता-समूह की देख-भाल करेगा। 'बकरियों का यह चरवाहा' वास्तव में मानवता का चरवाहा है। जो उसके समूह में आ जाएगा उसका कल्याण होगा और जो उसकी टुकड़ी और दल से बाहर हो जाएगा, उसके लिए दुर्भाग्य लिख दिया जाएगा।

अरब योंही संस्कृति और सभ्यता से परिचित न थे। बच्चे लोगों में मिलने-जुलने और उठने-बैठने से दूसरों का प्रभाव स्वीकार किया करते हैं, तो उसके लिए प्रकृति ने यह व्यवस्था की कि मुहम्मद (सल्ल०) के बचपन के दिन जंगल में बीतने लगे। सृष्टि के स्रष्टा ने पसंद न किया कि मुहम्मद (सल्ल०)के चरित्र और आचरण पर समाज की परछाईं भी पड़ने पाए। मुहम्मद (सल्ल०) के स्वभाव-पटल पर स्वयं प्रकृति के हाथों ने चिह्न उभारे, इसलिए कि अल्लाह ने उसको दुनिया से कुछ सीखने के लिए नहीं, बल्कि दुनिया को सिखाने के लिए भेजा था—वह 'अपढ़' था, पर खुदा का पढ़ाया हुआ, प्रकृति किसी माध्यम के बिना स्वयं उसका प्रशिक्षण कर रही थी, उसको बिना किसी माध्यम के पवित्र लोक से लाभ पहुंचना था।

हर राष्ट्र और देश के बच्चे शोख़ और चंचल होते हैं और यह तो उन अरबों के बच्चे थे, जिन के घर के लोग बात-बात पर कट मरते, किसी का ऊंट दूसरे की चरागाह में आ गया और इतनी-सी बात पर तलवारें चलने लगीं, ऐसे मां-बाप के बच्चों को लड़ाकू और झगड़ालू होना ही चाहिए था—पर मुहम्मद (सल्ल०) का स्वभाव ही सबसे जुदा और चाल-चलन सबसे भिन्न था। इस अंधेरे में यही एक दीप और झाड़-झंखाड़ में यही एक सुमन था, बच्चों के साथ खेलने से मुहम्मद की तबियत नफ़रत करती, कोई अशिष्ट बातें करता होता, तो आप दूर चले जाते। गंदे शब्दों का सुनना तक प्रिय न था। बहुत से बहुत इतना करते कि साथी चरवाहों के साथ जंगली झड़बेरियां तोड़ कर खा लीं और उसमें भी शालीनता का दामन हाथ से न जाने देते।

कुरैश के घराने में मुहम्मद (सल्ल०) के इस अनोखे जीवन की चर्चाएं होने लगीं—साहब! यह अब्दुल्लाह का बेटा मुहम्मद तो देवता तुल्य है। हम ने आज तक इसे दूसरे बच्चों की तरह लड़ता-झगड़ता और तू-तू, मैं-मैं करते नहीं देखा।

अजी! आप लड़ने-झगड़ने की बात कर रहे हैं, मैंने इस अबोध को खिलखिला कर हंसते तक नहीं देखा, बस होंठों पर हल्की मुस्कान! गलियों से आंखें नीची किए गुज़रता है-ऐ कुरैश! यह बच्चा बहुत बड़ा आदमी बनने वाला है-आगम कह रहा है, बोल रहा है, बता रहा है। संभव है कि इस के कारण हम रेगिस्तानियों के भाग्य का सितारा चमक जाए और अरब-वासियों की महानता तथा प्रतिष्ठा पर मिस्र और ईरान वाले रश्क करने लगें।

एक बूढ़ा कुरैशी-पर साहिबो! मुहम्मद की धनुष-विद्या और घुड़ सवारी में हम में से किसी का नव-जवान बेटा भी मुकाबला नहीं कर सकता। इस का निशाना तो चूकता ही नहीं और घोड़े पर बैठ कर तो ऐसा सजता है, मानो उस ने उकाज़ और जुल मजन्ना की घुड़-दौड़ में नज्द व हिजाज़ के सवारों को नीचा दिखाया है।

एक लम्बी दाढ़ी वाला व्यक्ति, जिस के गरेबान में ख़ाना काबा के पर्दे का पैबंद लगा था—

'मैंने तो इस से अधिक विचित्र बातें सुनी हैं।'

'क्या? वह क्या?' तमाम लोग एक साथ प्रश्न कर बैठे।

'मेरा छोटा लड़का फ़ज़्ल कह रहा था और इस बात की पुष्टि अम्मारा के भांजे अशअस ने भी की, कि मुहम्मद जिस समय पेड़ों के पास से गुज़रता है, डालियां झुकने लगती हैं, पत्थरों से आवाज़ें-सी निकलती हैं, जैसे कोई किसी को सलाम करता है।'

(एक शोख़ नव-जवान) तुम लोगों की बातें बड़ी रोचक हैं, पर आओ शराब का एक-एक प्याला चढ़ा लें, आनन्द दोगुना हो जाएगा।

युवक के कहने पर वातावरण में ठहाके लगे, पर गंभीर स्वभाव व्यक्तियों को युवक का यह हास्य अच्छा न लगा। वे चाहते थे कि ये बातें और लम्बी खिंचतीं तो अच्छा था।

अबूतालिब व्यापार किया करते थे। वर्ष में एक बार शाम जाते और कारोबार कर के चले आते। मक्के का माल शाम की मंडी में ले गये। वहां से ज़रूरत की चीज़ें ला कर यहां बेच दीं। इस उलट-फेर में जीवन-निर्वाह भर को फ़ायदा मिल जाता, पर परिवार बड़ा था, फिर स्वभाव के सख़ी-दाता भी थे-अब्दुल मुत्तलिब सरीखे दानी व्यक्ति के बेटे को ऐसा होना ही चाहिए था, इसलिए खा-पी कर कुछ न बचता था।

अबूतालिब जब शाम जाने लगे, तो मुहम्मद (सल्ल०) की उम्र बारह वर्ष के लगभग थी। अबूतालिब यतीम भतीजे को अतिप्रिय रखते थे, पर इस यात्रा में साथ ले जाना उचित न समझा। सोचते थे, दूर-दराज़ की यात्रा है, रास्ते में न लहलहाते खेत मिलेंगे, न घाटियों के बाग़ कि बच्चे का मन बहलता रहे, हर ओर मरुस्थल ही मरुस्थल है, कोसों तक आबादी का नाम व निशान नहीं, मंज़िलों तो पानी नहीं मिलता-और यह भ्रम भी था कि शाम की यात्रा उसके बाप अब्दुल्लाह को फली नहीं, दुश्मनों के मुंह में धुल, कहीं मुहम्मद के साथ भी ऐसी ही दुर्घटना न हो जाए। अब्दुल्लाह भी तो जवान दुल्हन को छोड़कर अच्छे-भले शाम गये थे, पर परदेश में ज़िंदगी ने धोखा दिया और मुहम्मद की मसें नहीं भीगीं। इन कठिनाइयों के होते हुए उसे ले जाने के लिए मन नहीं चाहता।

अबू तालिब मकान से चलने लगे, तो मुहम्मद (सल्ल०) चचा से लिपट गये, स्नेह आशंकाओ पर छा गया। यतीम भतीजे का दुख स्नेहिल चचा से न देखा गया, कम-सिन मुसाफ़िर को साथ ले लिया और यह छोटा-सा क़ाफ़िला मक्का से शाम के लिए चल पड़ा। अबू तालिब का विचार था कि मुहम्मद को रास्ते में संभालना पड़ेगा, पर मुहम्मद (सल्ल०) में न केवल यह कि अपने को संभालने की क्षमता थी, बल्कि चचा का भी हाथ बटाया, अति मुस्तैदी और कर्त्तव्य परायणता के साथ। यह साथ अबूतालिब के लिए बड़ा सुखद रहा।

इस यात्रा में अनेकों मंज़िलों, घाटियों और मार्गों से गुज़रना पड़ा। कहीं रेत ही रेत, कहीं पथरीले रास्ते और पहाड़ों की तलैटियां, कहीं मरुद्यान और हरियाली भी, सुबह किसी चश्मे पर हुई और शाम मरुस्थलों में! किसी पड़ाव पर आराम मिला और किसी मंज़िल पर बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा।

हिजाज़ की सीमाओं से बाहर अब्दुल्लाह के लाडले यतीम की यह सबसे पहली यात्रा थी और वह भी इतनी लम्बी और कठिन! यात्रा में बच्चे साथ के लोगों पर बोझ बन जाते हैं, पर मुहम्मद (सल्ल०) की बुद्धिमत्ता और मुस्तैदी लोगों के लिए किसी चमत्कार से कम न थी।

बसरा शाम का एक प्रसिद्ध नगर था और उसके क़रीब ही गांव में एक मठ था, जिसे आस-पास के लोग अति पावन तथा शुभ समझते थे। इस मठ में बहीरा नाम का एक राहिब (ईसाई सन्यासी) रहता था। बहीरा को ईसाइयों में बड़ा आदर तथा प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इस राहिब की बड़े पादरियों में गिनती होती थी। इंजील के अतिरिक्त तौरात के विषयों पर भी उसकी दृष्टि थी और

ईश-ग्रंथों को पढ़-पढ़ कर उभरने वाली ज्योति और आने वाली सत्य-आत्मा की बाट जोह रहा था।

मठ के निकट ही अबूतालिब ने अपने ऊंटों के साथ वास किया। चचा और भतीजे दोनों पेड़ की छाया में ज़मीन पर बैठे थे। बहीरा भी फिरता-फिराता उधर आ निकला और मुहम्मद (सल्ल०)के चेहरे को ध्यान से देखने लगा। उसकी टकटकी बंध गयी, जैसे सामने के दृश्य में स्मृति-पटल के चिह्न में साम्य पैदा होता देख रहा हो।

मुहम्मद (सल्ल०) चुप थे, बहीरा और निकट आया। उसकी आंखों में खुशी की चमक पैदा हुई, मानो वह सत्य दिखायी दे गया, जिसका उसे इन्तिज़ार था। अपनी तमाम महानताओं और पावनताओं के बावजूद वह अति श्रद्धा के साथ ज़मीन पर बैठ गया और कहने लगा—

'तौरात और इंजील पर मैंने वर्षों विचार किया है। इस में हम ने जो निशानियां पढ़ी हैं कि सत्य-आत्मा का प्रकटीकरण होगा, वे निशानियां तमाम की तमाम इस कुमार में पायी जाती हैं। मैं इसकी नबी बनाये जाने से पहले ही पुष्टि करता हूं, न जाने मैं उस समय तक जीवित रहूं या न रहूं।'

ईसाई इतिहासकारों ने अपने परंपरागत इस्लाम-विरोध के कारण इस घटना को विकृत करके प्रस्तुत किया है और झूठ और तोड़-मरोड़ कर बात रखने की परंपरा निभायी है। पश्चिमी इतिहासकारों की इसी संकीर्णता और दुर्भाव के कारण इस्लाम का मूल स्वरूप यूरोप वालों के सामने न आ सका। उन्होंने अपने इतिहासकारों पर विश्वास किया और इस गन्दे जूहड़ से निकलने का यत्न ही न किया, जिसका फल यह निकला कि इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम के बारे में बिल्कुल झूठी और बे-सिर-पैर की बातें प्रसिद्ध हो गयीं और अब तक यह विष पश्चिम की नस-नस में फैला हुआ है।

कई महीने के बाद अबूतालिब अपने कम-सिन यात्री साथी को लेकर मक्का वापस हुए, इतने लम्बे और कठिन यात्रा से स-कुशल वापसी पर नातेदारों और मित्रों को प्रसन्न होना ही चाहिए था। अबूतालिब के कई दिन तो लोगों से मिलने-मिलाने और यात्रा के हालात बताने में लग गये।

कोई पूछता कि शाम की सीमा आरम्भ होने के दो-तीन मंज़िल उधर जो तालाब आता है, वह उसी हालत में है या सूख गया। किसी ने पूछा कि अबूतालिब! मेरा ऊंट अरीज़ा की घाटी में गुम हो गया था, कहीं वह आपको

घूमता-फिरता तो दिखायी नहीं दिया। किसी ने भेड़ों के ऊन का भाव पूछा तो कोई शाम की मंडी का हाल-चाल पूछने लगा। किसी ने कहा, इस बार आप शाम जाएं तो अनाज से लदा एक ऊंट में आपके साथ कर दूंगा। आप की कोशिश से अनाज अच्छे दामों पर बिक जाएगा—

अबूतालिब बड़े हंसमुख तथा नम्र स्वभाव के थे। सब की बातों का उत्तर देते और कहीं भी रुखाई न दीख पड़ती। उनकी जगह कोई और होता तो क्रुद्ध हो जाना असंभव न था।

ज़माना पलक झपकाते कहां से कहां पहुंच जाता है। समय की गति शायद बिजली से अधिक तेज़ है। इधर दिन निकला और उधर दोपहर हो गई और फिर देखते-देखते दोपहर ढल कर संध्या की कालिमा रात का अंधकार लिए आ पहुंची, यहां तक कि रात फैल गयी। और इसके बाद फिर वही प्रातः का उजाला और हर दिन की तरह सूर्य की ताक-झांक।

राज़े हस्ती की यहां किस को ख़बर होती है,
ज़ीस्त एक सिलसिला-ए-शाम व सेहर होती है।

(जीवन-मर्म की यहां किस को ख़बर होती है। जीवन तो सुबह-शाम का एक मार्ग है।)

उदय-अस्त और धूप-छांव की इसी स्थिति में व्यक्ति बच्चा से जवान और जवान से बूढ़ा हो जाता है। कहने को एक महीने की अवधि भी बहुत कुछ होती है, पर वास्तविकता तो यही है कि सदियां की सदियां भी यों ही हंगामों की भागती छाया में बीत जाती हैं। बहुत कम लोग समय की गति को समझ पाते हैं और केवल इतना ही नहीं होता, मां-बाप अपने बच्चे को बड़ा होता देख-कर खुशियां मनाते हैं, हालांकि जीवन का हर बीतने वाला क्षण व्यक्ति को मौत से निकट कर देता है। यही सांस जो जीवन-कारण है, जीवन को मृत्यु की ओर बढ़ाए भी लिए जाता है। यह वर्षगांठों के उत्सव और हर्षोल्लास, वास्तव में मृत्यु के अभिनन्दन-समारोह हैं। आदमी सब कुछ जानने के बाद भी कैसे-कैसे धोखों में आ जाता है——

आदमी नशा-ए-ग़फ़लत में भुला देता है,
बरना जो साँस है पैग़ामे फ़ना देता है।

बहरहाल इसे जीवन का प्रदर्शन कहिए या मौत की नज़दीकी, प्राकृतिक नियम इंसानों को बच्चे से जवान और जवान से बूढ़ा बनाता ही रहता है। इसी के सहारे सृष्टि-व्यवस्था स्थापित है। □

# सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति

अब्दुल्लाह के यतीम मुहम्मद (सल्ल०) प्राकृतिक नियम के अनुसार जवान हो गये। वे शारीरिक दृष्टि से भी अति स्वस्थ, सुडौल तथा सुन्दर थे, सफ़ेदी में लाली मिली हुई रंगत, मन को मोह लेने वाली सुन्दर तथा काली आंखें, चौड़ा माथा, यथोचित क़द और वह सब कुछ जिसे सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति कहा जा सकता है।

किसी के क़द और शरीर का बखान अधिक से अधिक इन शब्दों में किया जा सकता है कि उसका क़द और शरीर सरो और शम-शाद जैसा है,[1] पर मुहम्मद के शरीर को ये उपमाएं छू भी नहीं सकतीं—

तुरा चू सरो न ख़्वानम कि सरो सर ता पा,
हमा तनस्त व तू अज़ पाए ता बसर जानी।

(तुझे मैं सरो[2] नहीं कहता कि सरो सिर से पांव तक मात्र ढांचा है और तू सिर से पांव तक साक्षात प्राण है)

लाला व गुल, यासमीन व नस्तरन, सुंबुल व नर्गिस,[3] सूर्य-चन्द्र, यमन का लाल, अदन के मोती, हिरन का मुश्क, अम्बर की सुगंध, प्रातः की मुस्कान और अध-खिली कलियों का खिलना—व्यक्ति के सौन्दर्य तथा उसके गुण तथा मोहकता के लिए ये सभी उपमाएं और रूपक हैं, पर मुहम्मद (सल्ल०) के सौन्दर्य की व्याख्या के लिए ये सभी उपमाएं और रूपक अधूरे अपूर्ण और उपमा-धरातल की दृष्टि से अति तुच्छ हैं—

रुखे मुस्तफ़ा है वह आईना कि अब ऐसा दूसरा आईना
न हमारी बज़्मे ख़्याल में, न दुकाने आईना साज़ में।

जब काव्य-साहित्य के इन रूपकों तथा उपमाओं का अन्त होता है, वहां से

---

१. अर्थात छरेरे बदन का है। २. युक्लिप्टिस सदृश्य एक चिकना छरेरा पेड़। ३. ये फूलों के नाम हैं।

मुहम्मद (सल्ल०) के सौन्दर्य तथा गुणों का आरम्भ होता है। मुहम्मद आप अपना जवाब हैं—

दोनों जहान आईना दिखला के रह गये,
लाना पड़ा तुम्हीं को तुम्हारी मिसाल में।

प्रकृति ने मुहम्मद (सल्ल०) को 'पुरुषोत्तम' बना कर भेजा था, तो इसकी आवश्यकता थी कि अन्तः ही नहीं, बाह्य भी सुन्दरता में अपूर्व हो। सर्वोच्च आचरण के साथ रूप भी सुन्दर होना चाहिए। हृदय से दृष्टि तक, आत्मा से शरीर तक और सिर से पैर तक सौन्दर्य ही सौन्दर्य, पावनता ही पावनता और आकर्षण ही आकर्षण होना अनिवार्य है, इसलिए कि—

बज़्म में अहले नज़र भी हैं, तमाशाई भी।

'पुरुषोत्तम को आचरण तथा रूप, देह तथा आत्मा तथा अन्तः और बाह्य की दृष्टि से गुण-पराकाष्ठा का 'अन्तिम मानदंड' होना चाहिए और मुहम्मद (सल्ल०) ही पर यह चरितार्थ होता था—

हम चू ता नाज़नीने सर ता ब-पा लताफ़त,
गेती निशां न दादा ईज़द नयाफ़रीदा।

(एक प्रियतम ऐसा भी है कि साक्षात आनंद है, जिसका उदाहरण न धरती ने दिया और न खुदा ने दूसरा पैदा किया है।)

जवानी का समय बीतने के बहुत दिनों बाद जाबिर बिन समुरा एक सहाबी (साथी) ने मुहम्मद को लाल हुल्ले (पहनावे) में देखा, चांद भी उस रात पूरी चांदनी फैला रहा था। वह बड़ी देर तक अरब के चांद और पूर्णिमा के चांद में मुकाबला करते रहे, अन्ततः उन्हें निर्णय करना पड़ा और निगाहें ज़ुबान बन कर पुकार उठीं कि यह घटने-बढ़ने वाला चांद मुहम्मद के सौन्दर्य की कैसे भी बराबरी नहीं कर सकता।

फ़रोग़े मह्र भी देखा नमूदे गुलशन भी,
तुम्हारे सामने किस का चिराग़ जलता है।

अलमानिया (जर्मनी) का प्रसिद्ध कवि नेत्शे, जिसे इकबाल ने 'योरूपीय मज्ज़ूब' कहा है, सारी उम्र 'परामानव' की खोज में भटकता रहा। काश! उसे कोई बताता कि 'महा मानव' तो पैदा हो चुका। इस नश्वर जगत में सदा से इंसान पैदा होते आए हैं और होते रहेंगे, पर इन में 'पुरुषोत्तम' बस यह और

केवल यह एक ही पैदा हुआ। सौन्दय-गुण, पूर्णता-उच्चता का उस व्यक्तित्व पर अन्त हो गया। अब संसार में जिस किसी को भी उत्कर्ष प्राप्त होगा और उन्नति मिलेगी, वह इसी 'महामानव' और 'सत्य-आत्मा' के आदर्श आचरण की परछाइयों में मिलेगी—

मुहम्मदे अरबी क आबरू-ए हर दोसरास्त,
कसे कि ख़ाक दरश नेस्त ख़ाक बर सरे ऊ।

(मुहम्मदे अरबी कि जो खुदा की आबरू हैं, जो व्यक्ति आपकी चौखट की धूल नहीं है, उसके सिर पर धूल अर्थात वह अपमानित हुआ।) □

# अज्ञानता के क्षितिज पर

जिस समय मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह यौवन की चौखट पार कर रहे थे, सम्पूर्ण विश्व का वातावरण अति गंदा, रोगी और खुदा की मारफ़त से अपरिचित था—भारतवर्ष में, जहां कभी ज्ञान-ध्यान और वेदान्त के सुन्दर दीप जलते थे, सांपों, बरगद और पीपल के देवताओं की पूजा होती थी, चीन कन्फ़्यूशस के अंध-विश्वासी गुत्थियों में उलझा हुआ था, मिस्र व यूनान में देवियां और दस बुद्धियां खुदा की भागीदार समझी जाती थीं और 'सारा पश्चिम' घोर अज्ञानता, बल्कि अर्ध-पशुत्व की स्थिति में जीवन बिता रहा था।

अरब जहां खुदा के प्रिय नबी इब्राहीम (अलै०) ने अपने आज्ञाकारी बेटे इस्माईल को साथ लेकर एक अल्लाह की भक्ति के लिए पवित्र घर बनाया था और एक अल्लाह के आज्ञापालन की आवाज़ उठायी थी, वहां पत्थर के अपने ही हाथों गढ़े हुए बुतों ने खुदा की जगह ले ली थी। इस जगह पहुंच कर अरब के इतिहास की एक घटनापरक पृष्ठभूमि लेखनी की नोक से कागज़ पर आने के लिए बे-चैन है।

हज़रत इस्माईल (अलै०) ने मक्का के बनू जरहम क़बीले में विवाह किया था और यहीं उनके ससुराल वाले काबा के मुतवल्ली बन गये और बहुत दिनों तक इस महान पद पर आसीन रहे। पर आगे चल कर समय ने करवट ली, परिस्थितियां बदलीं, और काबा के इतिहास ने पिछले पन्ने उलट दिये। मक्के का एक निवासी रबीआ, जो इतिहास में अम्र बिन लुह्य के नाम से याद किया जाता है, बहुत ज़ोर पकड़ गया। आदमी धनी था, इसलिए उसके बीसियों चाटुकार पैदा हो गये। अपने घराने के अतिरिक्त दूसरे क़बीले के लोग भी उसने अपने साथ मिला लिये और इस तरह बनू जरहम के विरुद्ध मोर्चा स्थापित कर दिया।

बनू जरहम इस षड़यंत्र से बे-ख़बर थे, यकायकी उन पर जो आक्रमण हुआ, तो बेचारों के पांव उखड़ गये। बनू जरहम को लड़ कर काबा से निकाल

दिया गया और अन्ततः जरहम की सन्तान से अम्र बिन लुहय ने यह पद छीन लिया। अम्र बिन लुह्य अब काबे का मुतवल्ली था और इस तरह वह धर्म-गुरु भी बन बैठा।

मक्का वालों के व्यापार की सबसे बड़ी मंडी शाम का देश था। क़ाफ़िले के क़ाफ़िले बेचने और मोल लेने के लिए आए-दिन शाम आते-जाते रहते। बनू जरहम का शत्रु अम्र बिन लुह्य कारोबार करता था। एक बार वह शाम गया, तो उसने देखा कि बहुत से लोग बुतों की पूजा कर रहे हैं। कोई हाथ बांधे खड़ा है और कोई पत्थर की मूर्ति को बड़े श्रद्धा-भाव के साथ चूम रहा है। यह नयापन और नयी बात अम्र को अच्छी लगी।

'आप लोग यह क्या कर रहे हैं?' अम्र ने पूछा।

'पूजा कर रहे हैं अपने देवताओं की, ' शाम के मूर्ति पूजकों ने उत्तर दिया।'

'पूजा! और इन पत्थर की मूर्तियों की! क्या कह रहे हैं आप?' अम्र ने चकित होकर पूछा।

'हमारे उपास्यों और देवी-देवताओं की पत्थर की मूर्ति कह कर अवहेलना न करो' इन लोगों ने उत्तर दिया।

'इस पूजा से तुम्हारा क्या लाभ है?' अम्र बिन लुह्य ने पूछा।

'यह कहानी बड़ी लम्बी है, इसके लिए अतिरिक्त समय की ज़रूरत है। संक्षेप यह कि हमारे ये उपास्य आड़े समय में हमारे काम आते हैं। शत्रु से जो खूनी लड़ाई हुई है, हम ने उनको पुकारा और उनकी दुहाई दी, बस क्षण भर में नक़्शा बदल गया और जीत का सेहरा हमारे सिर रहा। इन्हीं की शुभ कृपा से वर्षा होती है और अकाल दूर होता है। ये रोगियों को रोग मुक्त करते हैं और'—शाम के मूर्तिपूजकों की बात काट कर अम्र बड़ी बे-चैनी के साथ बोला—

'तो साहिबो! इनमें से दो-चार उपास्य मुझे भी दे दीजिए, हमारे देश में आए दिन सूखा पड़ता रहता है और शत्रुओं से लड़ाइयां होती रहती हैं। मैं मक्का में तीव्र महामारी छोड़कर आया हूं। आपकी इस कृपा से हमारा भी भला हो जाएगा।

अम्र बिन लुह्य के निवेदन पर शाम वालों ने कुछ बुत उसे दे दिये।

मक्का वाले अब तक बुतपरस्ती को जानते तक न थे। उन के कानों में तो

'सदैव एकेश्वर के गीत गुंजरित हुए थे, पर अम्र बिन लुह्य ने शाम से वापस जा कर प्रचार किया कि मैं शाम के बड़े-बड़े धनिकों, सरदारों, विद्वानों और सन्यासियों को बुतपरस्ती करता देख कर आया हूं। उनके सामने बुतों की कहानियों को नमक-मिर्च लगा कर बयान किया, बोला, मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा कि क्षितिज बिल्कुल स्वच्छ था, खूब धूप चमक रही थी कि इतने में, शाम के एक सरदार ने बुत के सामने माथा टेक कर पानी बरसने की दुआ की और इतनी-देर में कि उसने माथा उठाया, धुवां-धार वर्षा शुरू हो गयी।

(मक्का वासी एक दूसरे को देख कर मुस्कराते हैं कि अम्र बिन लुह्य हमारी परेशानियों का इलाज शाम से ले कर आया है।)

उसने आगे कहा, 'मैं बहुत कुछ कह-सुन कर के ये बुत तुम लोगों के लिए लाया हूं, इन की पूजा से हमारे दुख-दलिद्दर दूर हो जायेंगे। अब हम जब चाहेंगे, आसमान से वर्षा हो जाया करेगी और जिस बात की इच्छा करेंगे, पूरी हो कर रहेगी।

देह की साज-सज्जा, तन का आराम और पेट की पूजा, इन सब का लोभ बहुत बुरा होता है। मक्का वालों के मन में उस की बातें घर कर गयीं और मक्का में बुतों की पूजा शुरू हो गयी।

मक्का पूरे अरब का केन्द्र था। हज के अवसर पर हर ओर से लोग वहां आते। मक्का वालों को मूर्ति की पूजा करते देख कर उन का भी उत्साह जगा और धीरे-धीरे अरब के तमाम क़बीलों में बुत-परस्ती फैल गयी, यहां तक कि स्वयं ख़ाना काबा में बुत रख दिये गए और उस की दीवारों पर चित्र बना दिये गये। मानव-स्वभाव की बहुत बड़ी कमज़ोरी है कि 'नयेपन' की ओर मन बड़ी जल्दी झुक जाता हैं, हालांकि बहुत-सी नयी चीज़ें और बातें इंसान को पथ-भ्रष्ट भी कर देती और इंसानी समाज के लिए अति हानिप्रद भी होती हैं।

शिर्क (बहुदेववाद) जो फैलना शुरू हुआ तो मक्के का एक-एक घर 'मन्दिर' बन गया, न केवल क़बीले, बल्कि हर व्यक्ति का अपना अलग-अलग बुत था। अंध-विश्वास और अज्ञानता की हद है कि यात्रा में पत्थरों के बुत साथ ले जाने में चूंकि कठिनाई होती थी, इसलिए कुछ लोग, जो कि सत्तू की मूर्तियां बना कर अपने साथ रख लेते, उन्हें पूजते और जब आवश्यकता होती, सत्तू की उन मूर्तियों को घोल कर पी जाते।

यमन में तारों की पूजा होती थी। हिमयर का कबीला सूर्य की पूजा करता

था, कनाना का ख़ुदा 'चाँद' था और ऐसे ही दूसर क़बीलों और क्षेत्रों में अतारद और ज़ोहरा व मुश्तरी की पूजा होती थी, शकुन-अपशकुन, झाड़-फूंक, टोने-टोटकों, और जादू का भी ज़ोरदार चलन था। मन व मस्तिष्क पर शिर्क पूरी तरह छाया हुआ था। ख़ुदा परस्ती (ईश्वरवाद) की धारणाएं समाप्त हो चुकी थीं। वर्क़ा बिन नौफ़ुल सरीखे दो-चार विवेकीं और ईश-भक्तों के सिवा सारा अरब हिदायत की रोशनी से महरूम हो चुका था। इंसान का सब से बड़ा दुर्भाग्य और पतन ख़ुदा को न पहचानना और स्रष्टा तथा उपास्य से दूरी और अनजानापन ही है।

यह तो अरब के धर्म और आस्थाओं की स्थिति थी, अब रहा आचरण और चरित्र, तो एक ख़ुदा को पहचानने वाली क़ौम, जो आख़िरत के हिसाब-किताब और सज़ा और इनाम पाने की कल्पना से बिल्कुल खाली हो, उस को दुराचारी और पापी होना ही चाहिए, जंहा इस धारणा पर जीवन-आधार हो कि खाया-पिया, चैन किये, मज़े उड़ाये और जब समय आया, मर गये, फिर न कोई जीवन है और न किसी प्रकार की पूछ-गछ, बस जो कुछ है, यही दुनिया हैं और उस का जीवन है, वहां सच्चरित्रता तथा शालीनता की जगह दुश्चरित्रता तथा बद-कारियां पायी जाएं, तो इस में आश्चर्य की क्या बात है।

अरब बहुत साहसी, वीर, तथा निर्भीक लोग थे, पर उन के इन गुणों का उपयोग रक्तपात और आपसी लड़ाइयों में होता था। किसी व्यक्ति का ऊंट दूसरे की चरागाह में चला गया, बस इतनी सी बात पर लड़ाई छिड़ गयी। घुड़-दौड़ में किसी का घोड़ा दौड़ शुरू होते समय निर्धारित सीमा से तनिक आगे निकल गया, उस पर तलवारें म्यान से निकल आयीं और इंसानों के खून से धरती लाल हो गयी, फिर इन लड़ाइयों का क्रम आपसी प्रतिशोध का रूप धारण कर लेता और सदियों तक क़बीलों में संघर्ष चलता रहता।

रक्तपात और लड़ाई-झगड़े अरबों के लिए एक खेल थे। इंसानी जान का उन की दृष्टि में कोई मूल्य ही न रहा था, जैसे पेड़ों की डालियां और घास की पत्तियां काट दी और मसल दी जाती हैं, बिल्कुल इसी प्रकार वे वज्र हृदयी भी एक दूसरे का गला काट कर किसी प्रकार खेद और लज्जा का अनुभव न करते थे। इंसानों के देह उन के निकट मिट्टी के घरौंदे थे कि जब चाहा तोड़फोड़ डाला।

शराब उन की घुट्टी में पड़ी थी, शराबें पीकर नाचते, गाते-बजाते और मस्ती दिखाते। शराब तो उन का जीवन-अंग बन गयी थी। उनके एक प्रसिद्ध कवि को जब मृत्यु-दण्ड दिया गया और उस से पूछा गया कि तुम किस तरह मृत्यु चाहते हो, तो उस ने तमन्ना की कि खूब शराब पीकर, जब मैं पूरी तरह मद-मस्त हो जाऊं, तो मेरे घावों को तेज़ और गहरे चाकू से खुलवा देना, यहां तक कि खून टपकते-टपकते मुझ में प्राण बाक़ी न रहे। उन में ऐसे पाषाण हृदयी भी थे, जो अपने शत्रुओं की हत्या करने के बाद उन की खोपड़ियों में, मज़े ले-लेकर अति गर्व तथा अभिमान में डूब कर, शराब पीते थे।

जुआ खेलना अरब वासियों का प्रिय कार्य था। लूट-मार, चोरी, धोखा देही, वचन भंग और झूठ बोलने को वे 'कला' समझते थे। एक दूसरे को धोखा देते, झूठी क़स्में खाते, वायदे करते और तोड़ डालते, कारवानों को लूटते, यतीमों का माल अवैध ढंग से दबा लेते और विडंबना यह कि इन तमाम बुराइयों के बाद भी उनका दावा था कि सम्पूर्ण जगत में बस वही आदर व सम्मान के अधिकारी हैं।

वे अति स्वाभिमानी भी थे, पर उनका स्वाभिमान अति वज्रता तथा क्रूरता के सांचे में ढल गया था। लड़की का ब्याहना उनके स्वाभिमान को ठेस लगाना था। प्राकृतिक नियमों से वे इस प्रकार लड़ाई करते कि लड़कियों को पैदा होते ही ज़मीन में ही गाड़ देते। सैंकड़ों हज़ारों जानें इस अज्ञानतापूर्ण दुराभिमान तथा क्रूरता की भेंट चढ़ गयीं। मांएं अपनी लड़कियों को पैदा होते ही छिपाने की कोशिशें करतीं, पर ये हिंसक पशु उनके धड़कते सीनों से फूल-सी बच्चियों को छुड़ा कर धरती में गाड़ देते, ममता देखती की देखती रह जाती।

अरबों के मेलों-ठेलों में खेल-कूद, मनोविहार, नग्न तथा गन्दी कविताओं की होड़ लगती। उन की कविताएं मानो उस समय का 'कोमल साहित्य' और 'प्रगतिवादी' साहित्य था। यौन-मनोविज्ञान की लज्जाजनक व्याख्या, काम-वासना को उद्वेलित करने वाले विचार, नग्नता तथा निर्लज्जता की अभिव्यक्ति, एकान्तवास की उन बातों का चित्रण, जो वास्तविक होने के बाद भी व्यक्त करने योग्य नहीं होता और शालीनता इसे एक क्षण के लिए भी सहन नहीं कर सकती।

जो कवि अपेक्षतः गंभीर थे, वे अपने क़सीदों (प्रशस्ति गीतों) में नस्ल और परिवार पर गर्व का बखान करते और इस प्रकार क़बीलों में बैर-भाव की आग

बुझने न पाती। उनकी वीर-रस की कविताएं क़बीलागत संकीर्णताओं तथा नस्ली विद्वेष को धधकती आग बना देतीं और उनकी कविताओं से वैमनस्य के ज्वालामुखी सचमुच आग उगलने लगते।

व्यभिचार का चलन अरबों में आम था। वासना के व्यावहारिक प्रदर्शन में उन्होंने आद और समूद को भी पीछे छोड़ दिया था। औरत उनके पास मात्र वासना-तृप्ति का साधन थी। छिपी हुई आशनाइयों से लेकर खुले अवैध संबंधों का बाज़ार पूरा गर्म था। सौतेली माएं तक से अपनी वासनाओं की आग बुझाते थे और इन निर्लज्जताओं पर लज्जित होने के बजाए उलटा गर्व करते। बुराइयां उनका स्वभाव बन गयी थीं। वे एकान्त में हों या महफ़िल में, निर्लज्जता उन का विषय होता था, सतीत्व और पावनता का मूल्य समझने की क्षमता ही उनमें शेष न रही थी। आदमी के भेष में जानवर, दरिंदे और शैतान थे! शैतान ने केवल एक सज्दे से इंकार किया था और यहां पर पूरा जीवन ही पापों का अड्डा बना हुआ था। 

# जवानी

इतने पापयुक्त वातावरण, गंदी सोसाइटी और दूषित माहौल में मुहम्मद (सल्ल०) की जवानी का आरम्भ हुआ। क़दम-क़दम पर बुराइयों का जमघट, वासना के बहाव, उलझाव और झुकाव के लिए हर प्रकार की सुविधाएं मौजूद थीं। शराबख़ाने थे और प्रेमालाप की रंग-रलियां भी, जुओं का भी आधिक्य था और नृत्य-गीत की सभाओं की भी बहुतात। वहां निर्लज्जता के अड्डे भी थे और अनैतिकता के केन्द्र भी। जिस ओर जाइए, बुराइयों के फंदे लगे थे और बद-चलनी के जाल बिछे थे। छोटे-बड़े मर्द-औरत सबका एक ही रंग था।

साक्षात पाप के इस वातावरण में अब्दुल्लाह के लाडले यतीम मुहम्मद (सल्ल०) ने अति संयम, पावनता, शालीनता तथा सदाचार के साथ युवावस्था बितायी। वह इन हत्यारों, अन्यायियों और लुटेरों में अकेला शान्ति-दूत, चोरों, डकैतों, प्राण-घातकों तथा झूठों में अकेला सच्चा और ईमानदार, जुआरियों, शराबियों, ज़ानियों और बद-कारों में अकेला संयमी तथा साधु-स्वभाव था। अधिक से अधिक भलाई की कल्पना, जो एक व्यक्ति कर सकता है, मुहम्मद (सल्ल०) इस से भी अधिक नेक तथा सद-स्वभाव वाले थे। मानवता की उच्चता का अन्तिम स्थान, जो मन में आ सकता है, मुहम्मद (सल्ल०) का व्यक्तित्व इस से भी बहुत उच्च था। संसार के अंधेरे में केवल यही एक दीपक था। समय की कंटीली झाड़ियों में उसका अस्तित्व गुलाब बन कर महक रहा था। ज़माने के घास-फूस और कंकरों-पत्थरों में वह मूल्यवान हीरा था। हर प्याले में विष और कड़वाहट मिला था, केवल उसी एक के जीवन के जाम में अमृत हलकोरे ले रहा था। सामान्य रंग व बू में बस वही ज़ात सत्य का केन्द्र और मार्ग-दर्शन का रोशन मनारा थी। यही एक बोलता इंसान था, जिस के बोल पर सच्चाई गर्व करती थी।

कुरैश के बुज़ुर्गों में उल्लेख होते—

यह अब्दुल्लाह का बेटा मुहम्मद तो कुंवारी लड़कियों से अधिक शर्मीला

और लज्जावान है। रास्ते में चलेगा तो आंखें झुकाए हुए, गंभीर मुद्रा में।

भाइयो! न जाने यह युवक आगे चलकर क्या बनने वाला है? इस ढंग का सज्जन, सच्चा और सदाचारी व्यक्ति हम ने न तो देखा, न कानों से सुना। साहिबो! किसी से वायदा करे तो चाहे धरती टल जाए, आसमान टूट पड़े, पर यह अपने वचन से नहीं फिर सकता।

मदिरा पान तथा मनोविहार के कार्य-क्रम तो एक ओर रहे, गाने-बजाने, यहां तक कि कथा वाचकों की सभा में भी उसे किसी ने नहीं देखा और मज़ा यह है कि सन्यासी भी नहीं है कि संसार से कोई ताल्लुक़ न हो। वह बाज़ारों में जाकर क्रय-विक्रय करता है, ऋण लेता है, लोगों की अमानतें रखता है। शाम देश तक के बाज़ार उसे व्यापारी के रूप में जानते हैं, पर उस के हर काम में अति न्याय, सच्चाई, ईमानदारी पायी जाती है।

(एक युवक) हमारे खुदावंद बुतों की इस मुहम्मद के हाल पर मेहरबानी है, जभी तो इस में इतनी बहुत सी अच्छाइयां जमा हो गयी हैं।

(एक बूढ़ा) पर मियां साहबज़ादे! मुहम्मद को तो आज तक किसी बुत के पास जाते हुए भी नहीं देखा गया, यह तो उनसे दूर-दूर रहता है, मानो उसके दिल में हमारे खुदाओं से कोई लगाव और किसी प्रकार की रुचि ही नहीं है। अनास्था वालों पर ये बुत काहे को मेहरबान होने लगे।

(एक कुरैश, जिसके हाथ में तिरकश है) अब्दुल्लाह के बेटे में और सब भलाइयां ही भलाइयां हैं, बस उस की यही एक बात हमें अच्छी नहीं लगती कि लात व मनात व नस्र व हुबल और हमारे दूसरे खुदाओं में वह आस्था नहीं रखता।

दूसरे इंसानों को डगमगाहट, भटकाव और भूल-चूक के लिए ढील दी जा सकती है, पर 'पुरुषोत्तम' की छोटी से छोटी ग़लती और हल्के से हल्के ऊंच-नीच से बचाया जाता है। प्रकृति स्वयं उसका प्रशिक्षण करती है। एक तो उस के स्वभाव ही को सुशील, शालीन, न्यायप्रिय तथा सत्य प्रिय बना कर भेजा जाता है, इसलिए किसी अप्रिय बात को वह कल्पना-जगत में भी नहीं चाहता, पर मान लीजिए कभी-कभार कोई ऐसा ख़तरा मन में आ भी जाए तो खुदा की मर्ज़ी उसे व्यावहारिक ढंग से प्रदर्शित नहीं होने देती।

मुहम्मद (सल्ल०) के लड़कपन की बात है कि मक्का में नव-जवान

कहानियां कहा और सुना करते थे। ऐसी सभाओं और संगतों की बड़ी धूम थी। एक बार आप भी इसी इरादे से शहर में आए। वहां आ कर क्या देखते हैं कि किसी के यहां ब्याह है और गाना-बजाना हो रहा है। बांसुरी बज रही है और लोग मज़े ले-लेकर झूम रहे हैं। यह अति हल्के क़िस्म का प्रभावहीन मनोविहार था। मुहम्मद (सल्ल०) उस ब्याह के मकान में तश्रीफ़ ले गये, पर वहां जा कर आप ही आप नींद ऐसी छायी कि बाजों-गाजों की आवाज़ न सुन सके और इतने ज़ोर की नींद आयी कि सुबह हो कर धूप फैल गयी तो आंख खुली। उस समय पुरी सभा ही समाप्त हो चुकी थी।

मुहम्मद (सल्ल०) की जवानी चांदनी से ज़्यादा उजली और फूलों से बढ़ कर निष्कलंक और अबोध थी। प्रकृति ने आप के चरित्र पर भूल-चूक की परछाई भी न पड़ने दी। यह आपका अन्तिम मानदंड और चरित्र तथा आचरण का चरमोत्कर्ष था। आप के शत्रु और घोर शत्रु भी आप की पवित्रता तथा सच्चरिता को स्वीकारते थे। इतिहास नहीं बता सकता कि मुहम्मद (सल्ल०) के किसी शत्रु ने आप के आचरण के बारे में किसी प्रकार का संदेह व्यक्त किया हो। खून के प्यासे दुश्मनों ने आप के संदेश को झुठलाया, सारे अरब को आप के विरुद्ध लड़ने के लिए खड़ा कर दिया, पर कोई व्यक्ति आपके जीवन और आपके निज और व्यक्तित्व पर कोई लांछन न लगा सका।

मुहम्मद (सल्ल०) की सच्चाई, ईमानदारी, न्याय तथा सच्चरित्रता से प्रभावित होकर क़ौम ने आप को 'अमीन' (अमानतदार) की पदवी दी। सभी आप का आदर करते थे। बड़े-बूढ़े क़ुरैश मुहम्मद (सल्ल०) की बड़ाई और महानता का अनुभव करके आदर करने पर विवश होते। जिधर से आप गुज़रते लोगों में चर्चाएं होने लगतीं कि अब्दुल्लाह का नेक, सच्चा और पाक-साफ़ बेटा जा रहा है और फिर आप की प्रशंसा होती कि इस में ये गुण हैं, ये बड़ाइयां हैं।

□

# लड़ाई रुक गयी

एक बार मक्का के निकटवर्ती क्षेत्र में बहुत ज़ोर की वर्षा हुई। वर्षा की झड़ी जो लगी, तो यह क्रम कई दिन तक जारी रहा। बादल खुलने का नाम ही न लेते। इस का यह प्रभाव हुआ कि मक्का में बहुत ज़ोर की बाढ़ आ गयी। गलियों में नहरों की तरह पानी बहने लगा। बहुत से मकान ढह गये। मक्का वालों के लिए बड़ी परेशानी का सामना था। ख़ाना काबा भी बाढ़ की चपेट में आ गया, दीवारें गिर पड़ीं और इन के साथ हजरे अस्वद (काला पत्थर) भी अपनी जगह से धरती पर आ गया।

काबा का तमाम अरब वाले आदर करते थे और बुतपरस्ती के बे-पनाह शौक़ और उसके प्रति अपार श्रद्धा के बावजूद अल्लाह के घर के संमान से उन के मन और मस्तिष्क कभी खाली नहीं हुए। अपने मकानों, बैठकों और मवेशी ख़ानों से पहले काबे के निर्माण को प्रमुखता दी गयी। सब लोगों ने अति रुचि तथा श्रद्धा-भाव के साथ उस नेक काम में हिस्सा लिया। मुहम्मद (सल्ल०) भी क़ुरैश के साथ पत्थर ढो-ढो कर लाते और काबा बनाने वालों का हाथ बटाते।

काबा की दीवारें उठ गयीं, तो हजरे अस्वद के लगाने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। हर व्यक्ति कहता था कि इस पावन पत्थर के लगाने का सौभाग्य में प्राप्त करूंगा। इस पर बात बढ़ने लगी। क़बीलों के गर्व और अभिमान की दास्तानें छिड़ गयीं। एक ने कहा कि अब्रहा ने जब काबे पर हाथियों की सेना से चढ़ाई की थी, तो मैं और मेरा बूढ़ा बाप काबे की प्रतिरक्षा में सब से आगे थे, इसलिए हजरे अस्वद के लगाने का अधिकार मुझे मिलना चाहिए। दूसरा बोला कि अगर फ़िजार की लड़ाई में मेरे क़बीले के लोग जान की बाज़ी न लगाते, तो क़ुरैश को ऐसी करारी हार का मुंह देखना होता कि उनकी महानता-महत्ता सब मिट्टी में मिल जाती। तीसरे ने कहा, मेरे दादा ने दो बार तमाम हाजियों को खाना खिलाया था। उनकी सारी कमाई और संजो कर रखी हुई पूंजी इसी आतिथ्य-सत्कार में व्यय हो गयी। चौथा तलवार टेक कर बोला कि काबे में वर्षों

से बखूर और ऊद और अंबर हमारे कबीले के लोग सुलगा रहे हैं।

उत्तेजना बढ़ती ही जा रही थी। कुछ मनचलों ने अरब की रीति के अनसार खून में उंगलियां डुबो लीं। यह इस बात की प्रतिज्ञा थी कि या तो हम काबा की दीवार में हजरे अस्वद लगा करके रहेंगे या फिर लड़ कर के जान दे देंगे, अब इस बात का निर्णय तलवार करेगी, जिसमें शक्ति होगी, वही इस सौभाग्य को प्राप्त कर सकेगा।

चार दिन तक झगड़ा चलता रहा। पांचवें दिन अबू उमैया बिन मुग़ीरह ने, जो कुरैश में सब से ज्यादा बूढ़ा था, कहा कि मूर्खो! इतने बे-क़ाबू क्यों हुए जाते हो? क्या पवित्र हरम परिसर की धरती को रक्त रंजित बनाने का इरादा है? यहां तलवार चल गयी तो फिर रुकेगी नहीं। शताब्दियों तक यह लड़ाई की आग धधकती रहेगी। मैं कहता हूं कि हर बात का निर्णय तलवार ही से नहीं हुआ करता, इसके दूसरे तरीक़े भी संभव हैं। इस पर सब लोग बोले, अच्छा साहब! आप ही कोई उपाय सुझाइये कि हम क्या करें। अबू उमैया ने कहा कि इस समस्या को किसी पंच पर छोड़ देना चाहिए, पर यह बात स्वयं एक झगड़े का कारण बन जाएगी कि मध्यस्थ किस को बनाया जाए—इस कठिनाई का हल भी बताता हूं—वह यह कि ख़ाना काबा में जो व्यक्ति कल सुबह सब से पहले प्रवेश करे, उसी को मध्यस्थ मान लिया जाए और जो निर्णय वह करे, उसे सब लोग बिना किसी आनाकानी के स्वीकार कर लें।

इस पर सब ने 'हां' कह दी। शाम हुई, फ़िर रात और इस के बाद सुबह का उजाला हुआ और इतने में लोगों ने देखा कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह सबसे पहले काबे में दाखिल हो रहे हैं। सब ने कहा कि आप हमारे मध्यस्थ हैं, इस बात का निर्णय आप ही करेंगे। तमाम लोग यह कहने के बाद मुहम्मद (सल्ल०) का चेहरा देखने लगे कि न जाने हिलने वाले होंठों से किस के पक्ष में निर्णय हो। हर कोई मन में कामना लिये था। निराशा भी साथ में थी, ऐसे अवसर पर चित्र के रोशन और अंधेरे दोनों पहलू सामने आया करते हैं।

मुहम्मद (सल्ल०) ने काबे के फ़र्श पर शुभ चादर बिछायी। कुरैश चकित हो, एक-दूसरे का मुंह तकने लगे कि न जाने चादर बिछाने में क्या मस्लहत काम कर रही है। उस पर पांसे डाल कर नामों का कुरआ निकाला जाएगा या इस चादर द्वारा किसी कठिन व्यायाम के लिए हुक्म होगा कि जो इस में सफल हो जाएगा, वही हजरे अस्वद को लगा सकेगा? देखिए क्या होता है?

मुहम्मद (सल्ल०) ने अपनी चादर में हजरे अस्वद उठा कर रखा और फ़रमाया कि तमाम क़बीलों में से एक-एक व्यक्ति इस चादर को थाम ले, ताकि हजरे अस्वद का सौभाग्य तमाम क़बीलों में समान रूप से बंट जाए। हर क़बीले के एक-एक आदमी ने चादर थाम कर ऊपर उठायी और इस तरह सब ने मिल-जुल कर काबे की दीवार में हजरे अस्वद लगा दिया।

मुहम्मद (सल्ल०) के इस निर्णय से सभी प्रफुल्लित थे, खिंची हुई तलवारें म्यान में आ गयीं और एक बहुत बड़ा रक्तपात रुक गया। तमाम लोगों ने मुहम्मद (सल्ल०) के विवेक, बुद्धि तथा सूझ-बूझ को स्वीकार किया। सारे मक्का में इस सौहार्द्र पूर्ण निर्णय की धूम मच गयी कि अब्दुल्लाह के बेटे की बुद्धिमत्ता के कारण रक्तपात न हो सका, वरना तलवारों के कौशल की चमक स्वतः बोल रही थी कि यह लड़ाई बनू बिक्र और तग़लब की रक्त रंजित लड़ाइयों की ख्याति पर पानी फेर देगी। मक्का वासियों ने अनुभव किया कि मुहम्मद मात्र सुशील, संयमी, अमानतदार तथा सच्चे ही नहीं हैं, उन में निर्णय करने और आपस के झगड़े चुकाने की भी असीम क्षमता पायी जाती है। □

# शाम की यात्रा से विवाह तक

लड़कपन में अबूतालिब अपने यतीम भतीजे मुहम्मद (सल्ल०) का यद्यपि भरण-पोषण करते रहे, पर उन दिनों में भी मुहम्मद (सल्ल०) ने दूसरे बच्चों की तरह खेल-कूद में बचपन नहीं बिताया। चचा के बोझ को इस तरह हल्का किया कि तमाम के तमाम दिन जंगल में उनकी बकरियां चरायीं, बड़े होकर वह स्वयं अपने पांवों पर खड़े हो गये और संसार के सब से अधिक प्रतिष्ठित पेशे व्यापार को इस नश्वर जगत में आजीविका-साधन बनाया। मुहम्मद (सल्ल०) हाथ के सच्चे और बात के पक्के थे। व्यापार में जिस से जो मामला हो गया और जिस बात के लिए वचन दे दिया, चाहे धरती और आकाश क्यों न टल जायें और व्यापार में कितना ही घाटा क्यों न हो जाए, अपने वचन और प्रतिज्ञा का अर्थ-निरूपण करके वायदों से विमुख होने की कल्पना भी न करते। किसी से माल खरीदते, तो देने वाले की इच्छा पर छोड़ देते, वह ऊंचा भी तौल देता तो पसंद कर लेते। पर जब स्वयं किसी को माल बेचते, तो खूब झुकता हुआ तौलते। व्यापारियों में आप की सच्चाई और भले मामलेदारी का उल्लेख होता कि व्यापार में दुनिया एक-एक पैसे के लिए जान देती है।हर व्यक्ति अपने लाभ के लिए ग़लत तरीक़े से भी कोशिशें करने में कमी नहीं करता, लाभ-प्राप्ति के लिए नई-नई योजनाएं और बहाने निकालता है और यह अब्दुल्लाह का बेटा तो बड़ा उदार व्यापारी है, व्यापार में उदारता दिखाते हुए इस के अतिरिक्त और कोई नहीं देखा गया।

खुवैलद की विधवा बेटी ख़दीजा एक सुशीला तथा धनी-मानी महिला थीं। नौकर-चाकर और रिश्ते-नातेदार उन का कारोबार संभाले हुए थे। मुहम्मद (सल्ल०) की ईमानदारी और सच्चाई की ख्याति सुन कर ख़दीजा ने अति अनुनय विनय के साथ आप की सेवा में संदेश भिजवाया कि मैं आपके द्वारा अपना माल शाम में व्यापार के लिए भेजना चाहती हूं। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। आप का कष्ट सहन करना मुझ विधवा पर बड़ा उपकार होगा।

मुहम्मद (सल्ल०) ने शाम जाने के लिए 'हां' कह दी और कुछ दिनों के बाद ख़दीजा का व्यापारिक सामान ले कर शाम को चल दिए। इस छोटे से कारोबारी क़ाफ़िले में ख़दीजा का एक रिश्तेदार और उनका दास मैसरा भी था।

यह वही रास्ता था, जिसमें मुहम्मद (सल्ल०) के बाप अब्दुल्लाह के पद चिह्न, यद्यपि समय के उलट-फेर ने मिटा दिये थे, पर बाप के स्नेह की अनुभूति हो रही थी—

अभी इस राह से कोई गया है!

प्रेम की यह विशेषता है कि वह अतीत को वर्तमान और वर्तमान को भविष्य बना सकता है। मुहम्मद (सल्ल०) की अनुभूति ने पिछली घटनाओं के पन्ने उलट दिये । अब्दुल्लाह की युवा-मृत्यु और आमना का जवानी में विधवा होना, प्रेम का मौन स्वर, ऊंटों की घंटियों में मिल-जुल गया।

यह वही रास्ता था, जहां बारह वर्ष की अल्पायु में मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने चचा अबूतालिब के साथ यात्रा की थी, वही घाटियां, वही पहाड़ियां, वही वन, पर हां—तूफ़ानी आंधियों ने रेत के टीलों को कहीं से कहीं पहुंचा दिया था, इसलिए कहीं-कहीं राहें भी मुड़ गई थीं और मंज़िलों के निशान भी बदल गये थे। बारह-तेरह वर्ष की अवधि में इतना कुछ बदल जाना अनिवार्य था।

यह मुहम्मद (सल्ल०) की उम्र का पचीसवां वर्ष था। दायित्व, विवेक तथा बुद्धिमत्ता का सूर्य उदित हो रहा था, क़ाफ़िला चला, चलता रहा, यहां तक कि शाम पहुंच गया। यह कारवां अंधेरे से भी गुज़रा और चांदनी में भी उस ने मंज़िलें तै कीं। धूप की तेज़ी भी देखी और छाया की शान्ति भी, कहीं इतना निर्जन क्षेत्र कि दूर-दूर तक किसी पेड़ का नाम व निशान नहीं, बस कहीं-कहीं धूलों से अटी झाड़ियां दीख पड़ती थीं, वे भी झुलसी हुई, मानो उनमें उगने-बढ़ने की क्षमता ही नहीं और किसी जगह, मरुद्यान का सिलसिला दूर-दूर चला जाता और आस-पास लहलहाते खेत दिखायी देने लगते।

ख़दीजा बिन्त ख़ुवैलद के नातेदार ख़ुज़ैमा और उनके दास मैसरा ने इस यात्रा में बहुत-सी विचित्र बातें देखीं। क़दम-क़दम पर बरकतें थीं, साक्षात सौभाग्य प्रदर्शित हो रहा था—और ऐसी-ऐसी घटनाएं घटित हो रही थीं, कि जो उन्होंने इस से पहले न देखी थीं। उनका आश्चर्य बढ़ता ही चला जाता था, यहाँ तक कि एक सूखा पेड़, जिस के नीचे मुहम्मद (सल्ल०) ने पड़ाव किया, देखते ही देखते हरा-भरा हो गया।

इसी स्थान पर नस्तूर नामी राहिब (सन्यासी) रहता था। उस ने कहा कि भविष्यवाणियों और मान्य बुज़ुर्गों की सूचनाओं के प्रकाश में इस सच्चाई के व्यक्त करने में संकोच नहीं कर सकता। मुझे बताया गया है कि इस पेड़ के नीचे एक पैग़म्बर आ कर पड़ाव डालेगा, जिसकी बरकत से सूखी डालियां हरी हो जाएंगी। उसके हाथ में इंजील के लेख थे और उन्हें पढ़-पढ़ कर वह ये बातें कहता जाता था।

ख़दीजा की व्यापार-सामग्री में आशा से कहीं अधिक लाभ हुआ और मुहम्मद (सल्ल०) ने तमाम माल का मूल्य ज्यों का त्यों ख़दीजा को दे दिया। ख़दीजा आप की इस ईमानदारी से अति प्रभावित हुईं। वह देखती थीं कि मक्का में कारोबार, लेन-देन, मोल-तोल और क्रय-विक्रय पर आए दिन झगड़े होते रहते हैं। हर व्यक्ति दूसरे का माल अवैध रूप से हड़पने का यत्न करता है, लोग वायदे करते हैं, वचन देते हैं, पर उन्हें निभाते नहीं, तोड़ डालते हैं, इन लोगों में मुहम्मद (सल्ल०) सरीखे सच्चे, मामले के पक्के और खरे व्यक्ति का पाया जाना असाधारण घटना बल्कि चमत्कार है।

ख़ज़ैमा और मैसरा ने एक जुट होकर ख़दीजा से कहा कि मुहम्मद के साथ यात्रा में रह कर हम ने अपनी आंखों से ऐसी-ऐसी विचित्र बातें देखी हैं, जो शायद किसी ने सुनी भी न हों। अंधेरी रातों में रोशनी हो गयी है मुहम्मद की बरकत से! सूखे पेड़ के नीचे मुहम्मद बैठे और सूखी डालियां क्षण भर में लहलहाने लगीं, जैसे किसी ने उन पर अमृत छिड़क दिया हो। एक घटना हो तो बताएं। हम तो रास्ते भर उनके साथ सपने देखते रहे और यह मुहम्मद! इतना कुछ बरकत वाले होने के बाद भी अति मिलनसार, अति विनम्र हितैषी तथा शुभेच्छु हैं। रास्ते में उन्होंने हमें किसी प्रकार का कोई कष्ट न होने दिया। अति मुस्तैदी के साथ हर काम स्वयं किया। इतने अच्छे यात्री-साथी हर किसी को नहीं मिलते और उन की पावनता, संयम और शालीनता की तो शब्दों में प्रशंसा नहीं की जा सकती। शाम की औरतें अति सुन्दर होती हैं, उन की मनमोहकता और सौन्दर्य दूर-दूर तक प्रसिद्ध है, पर हमने मुख्य रूप से इस बात का अनुभव किया कि मुहम्मद बाज़ारों, गलियों और सड़कों से गुज़रते हुए इधर-उधर नहीं देखते, साक्षात लज्जा, अभिमान और गाम्भीर्य है उन का व्यक्तित्व! न जाने यह संसार कहां तक है और कितना बड़ा है। हम ने तो अरब और शाम, यही दो देश देखे हैं। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि इन देशों में तो मुहम्मद सरीखा सज्जन,

नेक, संयमी और बरकत वाला आदमी हमारी दृष्टि से नहीं गुज़रा। ये अरब के अज्ञानी अपनी कविता, वीरता और वंशावली पर गर्व करते-करते मरे जाते हैं, हालांकि उनके लिए सबसे बड़ा गर्व मुहम्मद कुरैशी अल-हाशिमी का व्यक्तित्व है।

मक्का का हर व्यक्ति मुहम्मद (सल्ल०) के चरित्र तथा आचरण पर मोहित था। ख़दीजा को व्यापार के संबंध में आपकी ईमानदारी का निजी अनुभव भी हो गया, फिर खुज़ैमा और मैसरा की आंख देखी गवाहियों ने इस विश्वास को और अधिक सुदृढ़ और इस प्रभाव को दूरगामी बना दिया। ख़दीजा विधवा थीं, उन की दुनिया उजड़ी-उजड़ी-सी थी, दुखी और ग़म भरी तमन्नाएं, मुरझायी हुई भावनाएं! दिल व दिमाग़ ने एक साथ कहा कि ख़दीजा! देख, मुहम्मद से अधिक सज्जन और आदरणीय व्यक्ति पूरे अरब में नहीं मिल सकता। उनके पास पाकीज़ा तमन्नाओं का पैग़ाम भेज! मक्का में युवकों और अमीरों की कमी नहीं है, पर तेरी शालीनता का इन दुष्चरित्रों के जीवन से क्या जोड़! मुहम्मद ने अगर तेरे पैग़ाम को कुबूल कर लिया, तो तेरे भाग्य का तारा चमक जाएगा।

ख़दीजा ने मुहम्मद (सल्ल०)की सेवा में विवाह का संदेशा भेज दिया, आप ने स्वीकार कर लिया। आप चचा अबूतालिब, हमज़ा और दूसरे नातेदारों को साथ लेकर ख़दीजा के मकान पर पहुंचे। वहां पहले से व्यवस्था थी और ख़दीजा के नाते-रिश्तेदार बाट जोह रहे थे। विवाह हुआ। अबूतालिब ने खुत्बा पढ़ा। इस खुत्बे में अबूतालिब ने पहले ख़ुदा का गुण-गान किया और इसके बाद कहा कि सारे कुरैश में मुहम्मद के पल्ले का एक आदमी नहीं है। कोई व्यक्ति सौजन्य में मेरे भाग्यवान तथा साधु भतीजे की बराबरी नहीं कर सकता। हां! धन उस के पास नहीं है, पर धन, रुपया-पैसा, ख़ज़ाने, माल व अस्बाब तो चलती-फिरती छांव की तरह हैं। आज उसके पास, कल दूसरे के पास, इन का कोई भरोसा नहीं, असल चीज़ तो निज की शालीनता है, जो हर हाल में बाकी रहेगी।

मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन का यह बिल्कुल नया युग था। ख़दीजा सबसे अच्छी जीवन-संगिनी सिद्ध हुईं, नेक, आज्ञापालक, पति के दुख-सुख में शरीक, हर दृष्टि से समरस, वह किसी बात में मुहम्मद (सल्ल०) से मतभेद ही न करतीं। उन के स्वभाव में प्रेम और वफ़ा रची-बसी थी।

ख़दीजा ने भी मुहम्मद (सल्ल०) को आशा से कहीं अधिक हितैषी और

साथी पाया। वह जितना नेक विवाह से पहले समझती थीं, मुहम्मद उस से बढ़ कर नेक और सज्जन निकले। वह घर में जिस लज्जा और पाकदामनी का सबूत देते हैं, बाहर भी वही हाल रहता है। मक्का की औरतें कहतीं कि ख़दीजा को मुहम्मद जैसा बेहतरीन जीवन-साथी मिल गया, पर रश्क करने से होनी अनहोनी नहीं हो जाती और न किसी का सौभाग्य छीना जा सकता है। ख़दीजा के लिए सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति की पत्नी बनना भाग्य बन चुका था और यह वही भाग्य है कि जिस के लिख देने के बाद प्रकृति के क़लम की रोशनाई सूख गई और उन में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

ख़दीजा के साहचर्य से मुहम्मद (सल्ल०) को भी शान्ति मिली। उनका दाम्पत्य जीवम लड़ाई-झगड़े से पाक था। दोनों एक दूसरे के हितैषी और सच-मुच के जीवन-साथी थे। दोनों का जीवन बड़ी शान्ति-सन्तोष और मेल-जोल का जीवन था—दाम्पत्य जीवन में विवाह का आनन्द ही मेल-मिलाप, एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और समरसता में प्राप्त होता है। यह न हो तो फिर स्वर्ग भी नरक बन कर रह जाता है। पति का आज्ञापालन मंज़िल तक पहुंचाता है और पत्नी के प्रति सहानुभूति परिवार की जान है। जहां यह सन्तुलन न रहे, वहां घरेलू जीवन की संपूर्ण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है।

मुहम्मद (सल्ल०) और ख़दीजा (रज़ि०) का जीवन इस सन्तुलन का सर्वोत्तम आदर्श था। □

# पहली वह्य

जिस शानदार उद्देश्य के प्रचार और पूर्णता के लिए मुहम्मद (सल्ल०) दुनिया में भेजे गये थे, उस के प्रकटीकरण और घोषणा का समय निकट आता जा रहा था। मानवता के इतिहास का अन्तिम और सर्वाधिक चमकदार पन्ना उलटने के लिए प्रकृति के हाथ हरकत में आने वाले थे। अंधेरा आप ही आप कपकपाता और सिमटता जा रहा था, मानो उजाले के लिए जगह ख़ाली करनी है। बुराइयां पसीना-पसीना हुई जा रही थीं कि नेकियों का दौर शुरू होने वाला है, गुमराही की जान होंठों पर आ गयी थी कि हिदायत का सितारा क्रान्ति के झरोखे से झांक रहा है। सृष्टि का एक-एक कण परिवर्त्तन की अनुभूति कर रहा था और—

जब अपनी पूरी जवानी पर आ चुकी दुनिया,<br>
जहां के वास्ते एक आख़िरी निज़ाम आया।

का संदेश वातावरण में गुंजरित हो रहा था।

मुहम्मद (सल्ल०) पर चिन्तन-मनन की स्थिति छायी रहने लगी। मक्का से थोड़ी दूरी पर हिरा नाम की एक गुफा थी। आप सत्तू और पानी लेकर वहां चले जाते और कई-कई दिन तक तप-जप और चिन्तन-मनन करते। मन को वश में करने का यह यत्न और मग्नता की यह स्थिति किसी 'दैवी प्रदर्शन' की बाट जोह रही थी। बड़ी बेचैनी से आप को किसी संदेश का इंतिज़ार था। मन में बेक़रारी थी। इसी खोज, तड़प और बेचैनी को क़ुरआन ने 'मनाल' कहा है। मन की बे-चैनी दिन-रात बढ़ती जा रही थी। खाना-पानी निमट जाता, फिर भी भूखे-प्यासे ख़ुदा की याद गुफा के एकान्त वास में जारी रहती। सत्य चालीस साल से झांक रहा था, पर पूरे तौर पर खुल कर सामने नहीं आया था। हृदय-कली पावन समीर के इंतिज़ार में थी, खोज और बेचैनी की गिरहें, पालनकर्त्ता के नाखून की राह देख रही थीं। निगाहें बार-बार आसमान की ओर उठतीं और सज्दे में झुक जातीं।

इंतिज़ार और लगातार इंतिज़ार! —यहां तक कि हिरा की गुफा में यकायकी रोशनी आयी। फ़रिश्ता ख़ुदा का पैग़ाम ले कर हाज़िर हुआ और उस ईश-सन्देश के शब्द स्पष्ट स्वरों के साथ मुहम्मद (सल्ल०) के मुख से दोहराये गये। इस शुभ सन्देश और पहली वह्य में ख़ुदा के नाम के साथ इंसान की पैदाइश का उल्लेख था और वह इसलिए कि इंसानों से ख़ुदा का टूटा हुआ रिश्ता जोड़ने के लिए मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह को नुबूवत अता हुई थी और इसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप को संसार में भेजा गया था।

किसी मामूली बादशाह, शासक, अधिकारी का हुक्म पढ़ कर और संदेश सुन कर मन में उथल-पुथल होने लगती है और यह तो सृष्टि के स्रष्टा और पूरी दुनिया के पालनहार का संदेश था— उस की ओर से वह्य भेजी गयी थी, जिस की शक्ति और सामर्थ्य संपूर्ण सृष्टि को घेरे में लिए हुए है, जिस के हाथ में तमाम लोगों की चोटियां हैं। वह अगर चाहे, तो ये ऊंचे-ऊंचे पहाड़ पलक झपकने से पहले धुंए की तरह उड़ जाएं, शोर मचाते समुद्र मरुस्थल बन जाएं, और ठंडे सितारों से अंगारे बरसने लगें।

स्वभावतः इस महान संदेश के मिलने के बाद हृदय में प्यार के साथ आतंक को भी जन्म लेना चाहिए था। यही मानव-स्वभाव है। हज़रत मुहम्मद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का मन भी अल्लाह के रौब व जलाल का प्रभाव लिए बिना न रह सका।

यह संदेश अगर मुहम्मद, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बजाए किसी पहाड़ पर उतरता, तो निश्चित रूप से पहाड़ टुकड़े-टुकड़े हो जाता। यह मुहम्मद (सल्ल०) के प्रतिष्ठावान हृदय ही की शक्ति थी, जिस ने ज़िम्मेदारी के साथ इस भारी बोझ को सहार लिया। जिब्रील थे, ख़ुदा का कलाम था, तजल्लियां थीं, मुहम्मद अरबी थे और हिरा की गुफा थी—हम तो बस इतना ही कह सकते हैं, जो बात हमारे ऊपर नहीं बीती, जिस को हम ने अपनी आंख से नहीं देखा, उसकी व्याख्या संभव कैसे है? वह्य की स्थिति वह्य वाले के अतिरिक्त बता कौन सकता है? यही वह स्थान है, जहां शब्द साथ छोड़ जाते हैं, व्याख्याओं का जिस जगह दम घुटने लगता है, ज़ुबानें गूंगी हो जाती हैं और क़लम कांप जाता है।

हम अधिक से अधिक अपनी भाषा में इतना कह सकेंगे कि हिरा की गुफा का भाग्य चमक गया, उस के कण तूर पूर्वत से भी भाग्यशाली ठहरे। पूरा

वातावरण ज्योतिर्मय हो गया, पर ये सभी उपमाएं औपचारिक उपमाएं हैं, जो हर किसी के लिए प्रयुक्त होती रहती हैं। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) को जिन तजल्लियों, और जिन अनुभूतियों का अवलोकन और एहसास हुआ, उन के लिए ये रस्मी बातें शोभा नहीं देतीं। हमारी इंद्रियों ने जिन अनुभूतियों और अवलोकनों का सपना भी नहीं देखा, उन्हें हम बता भी तो नहीं सकते। दर्शन शास्त्र इस स्थान पर चकित रह जाता है, बुद्धि की आंखें चका चौंध रह जाती हैं और मस्तिष्क आश्चर्य में पड़ जाता है। यही वह पावन स्थान और परोक्ष जगत है, जहां विश्वास और मात्र विश्वास के दीपों की रोशनी में सन्मार्ग नज़र आ सकता है। अनिश्चय और संदेह के पांव यहां जम ही नहीं सकते। तंगनज़र लोग, जो 'रोटी और पेट' से आगे देखना ही नहीं चाहते, इन आध्यात्मिक अनुभूतियों और परोक्ष मर्मों को आख़िर कैसे समझ सकते हैं। इस पर विश्वास करने के लिए कार्ल मार्क्स और स्टालिन का दिमाग़ नहीं, अबूबक्र सिद्दीक़, अली मुर्तज़ा और बिलाल हब्शी (रज़ि०) की अन्तर्दृष्टि चाहिए।

अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) हिरा की गुफा से मकान तशरीफ़ लाए, तो शुभ माथे से पसीना टपक रहा था। अल्लाह के रौब से चेहरे का रंग बदला हुआ था। घर आते ही हज़रत ख़दीजा से फ़रमाया—

'मुझे चादर ओढ़ाओ, चादर ओढ़ाओ।'

ख़दीजा (रज़ि०) ने जल्दी से दौड़ कर चादर उठायी और आप को उढ़ा दी। आप ने पूरी घटना सुनायी। ख़दीजा (रज़ि०) के गुणी स्वभाव ने इस घटना में तनिक भी संदेह तथा आश्चर्य नहीं व्यक्त किया, बल्कि कहा कि आप का व्यक्तित्व भलाइयों का स्रोत है, ख़ुदा आप को नष्ट नहीं करेगा। फिर वह आपको वर्क़ा बिन नौफ़ुल के पास, जो एक महा ईश-भक्त थे, लेकर गयीं। वर्क़ा ने कहा कि यही वह फ़रिश्ता है, जो बनी इस्राईल के नबियों पर आया करता था। मुहम्मद! मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूं।

हर्ष हो या दुख, प्रेम हो या आतंक, इन अनुभूतियों की तीव्रता से हृदय पर एक भार सा महसूस होता है और जब तक दूसरे को यह बता न दिया जाए, यह भार हल्का नहीं होता। यह मानव-स्वभाव है और मुहम्मद (सल्ल०) से इस नश्वर जगत तथा कार्य-कारण के इस संसार में स्वभाव की यही सहजता प्रकट हुई।

फिर शायद प्रकृति इस के माध्यम से औरत का स्थान और पद नबी बनने

के पहले ही दिन उच्च करना चाहती थी अर्थात यह कि पहली वह्य और नुबूवत के आरंभ की पहली पुष्टि एक महिला के मुख से हुई, ताकि उसकी प्रेम भरी सान्त्वनाओं से रौब और आंतक में प्रेम-रस घुल उठे। अल्लाह के नाम और संदेश का रौब स्वतः बोलती हुई पुष्टि है। वह व्यक्ति मानव-स्वभाव की कोमलता और आदमी की तबियत की सु-रुचि को नहीं जानता, जो इस सादा-सी बात की पुष्टि और सामान्य पुष्टि के उलझावे में संदेह का द्वार खोलना चाहता है—लोग घटनाओं को अपने निजी रुचियों के पैमाने से नापना चाहते हैं और जब कोई घटना इस पैमाने पर पूरी नहीं उतरती, तो फिर वे उसके घटित होने से ही इंकार कर देते हैं—यह भ्रम में पड़ने और भ्रमित करने की बात है।



# सत्य की घोषणा

सत्य की घोषणा और भलाइयों के प्रचार पर नुबूवत-पद और रिसालत-दायित्व का आधार है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) भी इसी काम पर नियुक्त किए गये। यह कार्य जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही कठिन भी है। यहां क़दम-क़दम पर मुसीबतों, रुकावटों और विरोधों का सामना करना पड़ता है। इस राह में कांटे भी बिछाए जाते हैं, सिर पर कचड़ा भी डाला जाता है, गालियां भी सुननी पड़ती हैं और पत्थरों की वर्षा से शरीर भी लहू लुहान हो जाता है। कोई दुनियादार और लोभी व स्वार्थी व्यक्ति हो, तो इन विपत्तियों से घबरा कर धैर्य खो दे कि मैं बैठे-बिठाए अपनी जान जोखिम में क्यों डालूं? लोग सत्य मार्ग पर नहीं आते तो न आएं, मैं कष्ट क्यों उठाऊं?

पर नबी और रसूल के दिल को अल्लाह सब्र, धैर्य और दृढ़-निश्चय की विशेष क्षमता और शक्ति देता है। कोई विरोध उसे सत्य की घोषणा से रोक नहीं सकता। उसके मार्ग में जोखिम के पहाड़ आते हैं, पर वह दृढ़ता के साथ अपने क़दम आगे ही बढ़ाता रहता है। तलवारों की धारें, बरछियों के फल, नेज़ों की अनियां और तीरों की नोकें भी उसे विचलित नहीं कर पाती। तलवार के नए घावों से लहू टपकता होता है और उस समय भी उसके मुख पर अल्लाह का गुणगान होता है। मुहम्मद (सल्ल०) जिस वक़्त नबी बनाए गए थे, पूरा वातावरण अंधकारमय था। लोग बिगड़े हुए थे, और समाज गन्दा था। शताब्दियों की बुराइयां जड़ पकड़ चुकी थीं, युगों के पाप आदत बन चुके थे। हर ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता था। ऐसी स्थिति में सुधार-कार्य करना केवल एक नबी का ही काम हो सकता था, उस शुभ एवं पावन व्यक्तित्व का काम; जिसे ख़ुदा का समर्थन और सहायता प्राप्त होती है।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) एक दिन सफ़ा पर्वत पर तशरीफ ले गए और लोगों को आवाज़ दी, जैसे कोई प्रमुख घोषणा करनी हो, और किसी महत्वपूर्ण घटना की सूचना देनी हो। जिस ने इस पुकार को सुना,

वही सफा की ओर चल पड़ा। एक ने दूसरे से कहा कि आज न जाने क्यों अब्दुल्लाह के लाडले मुहम्मद सफा की चोटी से लोगों को पुकार रहे हैं, चलो चल कर देखें बात क्या है? और वहां मुहम्मद-सच्चे, अमानतदार मुहम्मद जो अपनी प्रतिष्ठा में अपूर्व हैं—उन्होंने किसी मुख्य सूचना ही के लिए बुलाया होगा।

एक आया, दूसरा आया, संख्या बढ़ती ही गई, यहां तक कि एक भीड़ जमा हो गई। इनमें बूढ़े कुरैश भी थे, जिन्होंने समय के बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे, जवान भी थे जो अनुभवहीन थे, पर उनमें साहस, उत्साह और उमंग थी, बच्चे भी थे जिनके जीवन का घरौंदा अभी बन ही रहा था। कुछ लोगों ने सोचा कि मुहम्मद (सल्ल०)ने जिस तरह पहाड़ी पर से पुकारा है, बिल्कुल संभव है, दुश्मन के हमले की सूचना मिली हो। इसलिए खाली हाथ चलना ठीक नहीं, हथियार साथ रखने चाहिएं। कुछ ऐसे भी थे, जो बाज़ार में खजूर खा रहे थे, उसी हालत में चल दिये कि हाथ में खजूरें थीं और होंठों पर शीरा लगा हुआ था। बड़ों की देखा-देखी बच्चे भी शामिल हो गए।

अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) अति गंभीर मुद्रा में दायित्वभाव के साथ सफा की चोटी पर खड़े थे। आपके चारों ओर कुरैश की भीड़ थी। सबकी नज़रें हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के चेहरे पर थीं कि न जाने वे क्या कहने वाले हैं? इसे पहले तो इससे प्रकार मुहम्मद ने लोगों को जमा नहीं किया था, यह तो बिल्कुल नयी बात है। संभवतया वह किसी प्रमुख घटना की सूचना देना चाहते हों। सभी स्तब्ध खड़े थे।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया:—

'देखो! मैं पहाड़ की चोटी पर खड़ा हूं, तुम इसके नीचे हो! मैं पहाड़ के दोनों ओर देख रहा हूं। अगर मैं यह कहूं कि एक सशस्त्र सेना दूर से आती दिखाई दे रही है, जो मक्का पर चढ़ाई करेगी, तो तुम उसे मान लोगे?'

भीड़ ने एक स्वर से कहा—'निश्चय ही हम तुम्हारी बात मान लेंगे। तुम जैसे सच्चे और वायदे के पक्के को हम भला झुठला सकते हैं?'

लोगों की बेचैनी बढ़ गई। वे चाहते थे कि जो कुछ मुहम्मद (सल्ल०) कहना चाहते हैं, जल्दी से कह दें। सशस्त्र सेना के आक्रमण की सूचना ने उनकी परेशानी और भी बढ़ा दी थी। मुहम्मद (सल्ल०) के मुख से कुरैश ने कभी ग़लत बात न सुनी थी। हर व्यक्ति आपकी सच्चाई को हृदय से स्वीकारता था। वह अच्छी तरह समझता था कि मुहम्मद (सल्ल०) अपने दिल से गढ़ कर कोई बात

कह ही नहीं सकते। निश्चित रूप से लुटेरों की कोई टोली मक्का पर छापा मारने के लिए आ रही है। अब मुहम्मद (सल्ल०) संभवतया इन आक्रमणकारियों से बचाव के लिए कोई उपाय सुझाएंगे। यह मात्र सच्चे और नेक ही नहीं, निर्भीक, वीर और धैर्यवान भी हैं और विवेकशील भी।

इसके बाद आपने फ़रमाया—'यह तो समझाने के लिए एक उदाहरण था। तुम विश्वास करो कि मौत तुम्हारे सिर पर आ रही है और तुम्हें ख़ुदा के सामने हाज़िर होना है। ऐ क़ुरैश के लोगो! जिस तरह तुम दुनिया और उसकी चीज़ों को देख रहे हो, उसी तरह मैं मरने के बाद की दुनिया को देख रहा हूं।'

मूर्ति पूजकों के लिए यह संदेश बिल्कुल अनोखा और विचित्रसा था-उन्होंने कभी सोचा भी न होगा कि मरने के बाद का जीवन भी कोई चीज़ है, और इस लोक के जीवन के कर्मों पर वहां पकड़ भी होगी। उनके कवियों ने तो उनके मन में यह बात बिठा दी थी कि—'मिट्टी में मिलकर ओर फिर जिन्दा होना, यह क्या बेकार की बात है, दीवानों की सी बात'।

अबू लहब अपने गधे पर सवार था। खजूर की छड़ी से धरती की धूल उड़ा कर कहने लगा कि क्या इतनी-सी बात करने के लिए इतने सारे लोगों को कष्ट देना था? दूसरे लोग घरों को वापस हुए। आपस में कानाफूसी करते हुए कि अब्दुल्लाह के बेटे को यह क्या हो गया है कि एकाएकी लोगों को इकट्ठा करके एक ऐसी बात कही, जिसे हमारे कानों ने आज तक नहीं सुना।

'तो क्या झूठा समझ लें हम मुहम्मद को? उनके मुख से तो आज तक किसी ने ऐसी-वैसी बात सुनी ही नहीं थीं।'—एक व्यक्ति ने कहा।

'मैं मुहम्मद को झूठा कब कह रहा हूं? उस पर झूठ का लांछन कौन लगा सकता है? वह तो सच्चों का सच्चा है...! पर भाई! मैं समझता हूं कि उनकी बुद्धि में कुछ ख़लल आ गया है या प्रेत का साया पड़ गया है। यह भी हो सकता है कि बनी हाशिम के किसी दुश्मन ने उस पर जादू कर दिया हो, जिसके कारण अब्दुल मुत्तलिब का सच्चरित्र पोता ऐसी बहकी बातें करने लगा।' दूसरे व्यक्ति ने चलते-चलते जवाब दिया।

जितने मुंह उतनी बातें थीं। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के सत्य-संदेश के नए-नए अर्थ निकाले जा रहे थे। अनुमान, अट-कलें, भ्रांतियां, या दुष्प्रचार—कोई-कोई यह भी कहता कि भाइयो, इतने सच्चे और भले आदमी की बात को इस तरह हंसी में उड़ा देना उचित नहीं। उसने कुछ सोच-समझ

कर ही कहा होगा। अच्छे-भले व्यक्ति को 'दिमाग़ का चला हुआ' और 'प्रेत का मारा हुआ' कह देना बुद्धिमानों की नीति नहीं। जल्दी में किए गये निर्णय ठीक नहीं होते। खूब जांच और परख लेना चाहिए।

सफ़ा पर्वत पर सत्य की इस घोषणा के बाद अल्लाह के रसूल का प्रचार आरम्भ हो गया। गली-कूचों और बाज़ारों में, सड़कों और चौराहों पर दूसरों तक अल्लाह का संदेश पहुंचाते। मक्का ही क्या संपूर्ण अरब देश के सुनने वालों के लिए यह स्वर अनजाना और अनोखा था। लोग अच्छी और भली बातों से बिदकते थे। परंपरागत संकीर्णता और पैतृक धर्म सत्य को स्वीकार करने में रुकावट था कि हें, कहीं अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद की बातों में आकर अपने बाप-दादा के धर्म को न छोड़ बैठना। तुम्हारे पुरखे मूर्ख नहीं थे, तुम से अधिक बुद्धिमान और विवेकशील थे। उन्होंने सोच-समझ कर ही यह मार्ग अपनाया था। जिन खुदाओं ने सदियों से तुम्हारी ज़रूरतें पूरी की हैं, जो तुम्हारे आड़े वक़्त पर काम आए हैं, उन से इस तरह विमुख हो जाना आभार प्रदर्शन नहीं कृतध्नता है। वीर पुरूषों का वचन एक होता है, जिसे एक बार 'महान' कह दिया, बस आजीवन उसकी महानता का संमान करते रहेंगे। इन विचारों और अंध-विश्वासों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की आवाज़ को दिलों तक पहुंच-पहुंच कर वापस कर दिया।

सबसे पहले जिन भले लोगों को ईमान और इस्लाम स्वीकार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे थे—

१. मर्दों में सबसे पहले कहाफ़ा के बेटे अबूबक्र, (रज़ि०)

२. बच्चों में सबसे पहले अबू तालिब के बेटे अली (रज़ि०)

३. औरतों में सबसे पहले खुवैलद की बेटी ख़दीजा, (रज़ि०)

४. दासतामुक्त लोगों में सबसे पहले हारसा के बेटे ज़ैद (रज़ि०)

५. दासों में सबसे पहले बिलाल हब्शी (रज़ि०)।

हिरा की गुफा में हज़रत जिब्रील प्रकट हुए थे। वह अल्लाह का संदेश और वह्य लेकर आते ही रहे। अल्लाह अपने भक्तों का पग-पग पर मार्ग दर्शन कर रहा था, स्पष्ट तर्कों और खुली आयतों के साथ। एक दिन आदेश आया—

"व अंज़िर अशीरतकल अक़्रबीन"

(और अपने करीबी रिश्तेदारों को डराओ)

इसके पालन में आपने अपने क़रीबी रिश्तेदारों को खाने पर बुलाया। सादा खाना, पर सत्कार के साथ, मेहमानों का आदर करते हुए—इन लोगों में बनी हाशिम के सिवा कोई और न था। जब सब खा-पी चुके तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपना उद्देश्य रखना चाहा। पर अबू लहब बड़ा घाघ था। वह ताड़ गया कि मुहम्मद ने हम लोगों को अकारण ही खाने पर नहीं बुलाया। न शादी है, न त्योहार है, न पर्व है। यह दावत कोई उद्देश्य लिये हुए है और मुहम्मद को तो इन दिनों बस एक ही धुन है कि खुदा को एक मानो, मूर्ति पूजा छोड़ दो, भले कार्य करो, बुराइयों से बचो, तुम सब को एक दिन खुदा के सामने जाना है, उस दिन के लिए कुछ कर रखो, तो आज भी निश्चय ही वह यही बातें सुनाएगा। इस लिए अबूलहब ने उस दिन बातों का जो सिलसिला शुरू किया तो किसी और को बोलने ही नहीं दिया। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) को कुछ कहने का अवसर ही न मिल सका।

आपने दूसरी रात फिर खाने का प्रबंध किया। उस दिन अपने नातेदारों को सत्य संदेश सुनाया और इस्लाम की ओर लोगों को बुलाया। इस आह्वान और प्रचार में कोई भेद-भाव न रखा गया। आप जो बात दूसरों से कहते थे, वही अपनों से भी कही। धनिकों की बैठक हो या निर्धनों की भीड़, हर जगह आपका एक ही संदेश था—जिस तरह ठण्डी हवाएं अमीरों और ग़रीबों के शरीरों में, वर्षा का पानी धनवानों और निर्धनों के खेतों में और चांदनी महलों और झोपड़ियों में कोई अन्तर नहीं करती, ऐसे ही नबी का सत्य-संदेश भी किसी भेद-भाव को पसंद नहीं कर सकता। □

# सत्य का विरोध

सत्य को स्वीकार करने के मार्ग में पारिवारिक पक्षपात, बाप-दादों के संस्कार और रीति-रिवाज सदैव रोड़ा बनते हैं। अच्छी सूझ-बूझ वाले भी इस ग़लती का शिकार हो जाते हैं कि जो बात चिरकाल से चली आ रही है, वह बात ठीक है, सही है, जायज़ है। लोग सत्य और न्याय को बाप-दादा के मान-जान की कसौटी पर परखना चाहते हैं। मानव-स्वभाव की इस दुर्बलता ने सच्चाई को मानने में सदा ही रुकावटें पैदा की हैं और रोड़े अटकाए हैं। समस्त समाज-सुधारकों और सत्य के पुजारियों को प्रायः इन्हीं समस्याओं तथा कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।

हज़रत इब्राहीम (अलै०) ने जब एकेश्वरवाद का स्वर उच्चरित किया तो चाँद व सितारों और मूर्तियों को पूजने वाली क़ौम इस बात पर बिगड़ गई कि हें! आज़र का यह बेटा हमारे पुरखों से भी अधिक बुद्धिमान और सत्यवादी बनता है। इतने बड़े-बड़े पदों वाले महात्मा और गुरु क्या बिल्कुल ना-समझ थे। शताब्दियों से हम जिस मार्ग पर चलते आए हैं क्या इब्राहीम के कहने पर उसे छोड़ दें? पूरी क़ौम ने हज़रत इब्राहीम (अलै०) का मज़ाक़ उड़ाया। उनके संदेश को झुठलाया और स्वयं उनके घर के लोग इस विरोध में आगे-आगे थे।

हज़रत मूसा (अलै०) के साथ भी यही पेश आया, फ़िरऔन जिस क़ौम का ख़ुदा था, उसने हज़रत मूसा (अलै०) का घोर विरोध किया। उन लोगों को शाह परस्ती का रोग था। जो व्यक्ति सिंहासनासीन होता, ख़ुदाई का दावेदार भी बन बैठता। बादशाहों के दरबारों में सज्दे होते, और दमन-चक्र की शिकार जनता बादशाह को ख़ुदा का साया नहीं, बल्कि ख़ुदा ही समझती थी।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का जिस जाति से संबंध था, वह पितृ-पूजा में पिछली जातियों से कोसों आगे थी। अपने पुराने संस्कारों के विरुद्ध जब उन्होंने सच्चाई की बातें सुनीं तो पूरी की पूरी जाति विरोध पर उतारु हो गई। आपका चचा अबू लहब इस्लाम के शत्रुओं और रसूल के

विरोधियों का अगुवा था। इस भाग्यहीन व्यक्ति का तो दिन-रात काम ही यही था कि आप (सल्ल०) जहां कहीं भी तशरीफ़ ले जाते, वह भी साथ-साथ हो लेता या पहले ही पहुंच जाता। आप लोगों को समझाते, सत्य और न्याय का पाठ पढ़ाते, भलाई का प्रचार करते, तो अबू लहब आप (सल्ल०) का विरोध करता। कुरैश से कहता कि लोगो! कहीं अब्दुल्लाह के बेटे की बातों में आकर अपने प्राचीन धर्म से विमुख न हो जाना। यह मेरा भतीजा तो (अल्लाह की पनाह) विधर्मी हो गया है। यह कैसे हो सकता है कि हम अपने उपास्यों को छोड़ दें, जिन्होंने हर कठिन घड़ी में हमारा साथ दिया है। शताब्दी से हमारे पुरखे जिन मूर्तियों की पूजा करते आए हैं, क्या इस एक आदमी के कहने से उनको ठुकरा दें? यह नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। जब तक मेरी जान में जान है, लात, मनात और नस्र, हुबल की महत्ता को कम नहीं होने दूंगा। और हां! यह मुहम्मद आख़िरत (परलोक) के अज़ाब से लोगों को प्रायः डराता रहता है। समझ में नहीं आता कि यह आख़िरत क्या बला है? मरने के बाद फिर क्या कभी कोई ज़िंदा हो सकता हैं? ये सब नासमझी की बातें हैं और भाइयो! सौ बातों की एक बात यह है कि अनदेखी हुई बात को हम आख़िर कैसे मान लें? हम तो इस बात को जब सच्चा जानें कि अपने ख़ुदा से हमारी बातें करा दे। यह न हो सके तो कम से कम आसमान से आवाज़ें आएं कि अब्दुल्लाह का बेटा ख़ुदा का भेजा हुआ है और उसकी बात पर दुनिया को ईमान ले आना चाहिए।

और एक अबू लहब ही क्या, तमाम कुरैश यही कहते थे कि यह मुहम्मद ख़ुदा का कैसा नबी है, जो हमारी तरह खाता-पीता और बाज़ारों में चलता-फिरता है। इसके बाल-बच्चे भी हैं। दुनिया की ज़रूरतें भी इसके साथ लगी हुई हैं। रसूल भेजना ही था तो मक्का या तायफ़ के किसी धनी-मानी व्यक्ति को भेजना चाहिए था। अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के घर में तो बैठने के लिए चटाई भी नहीं है, कई-कई दिन का उपवास होता है, उनके घराने में। भला ऐसे दीन-हीन व्यक्ति को नबी मानकर हमें क्या मिल जाएगा? जिन लोगों ने मुहम्मद को अपना मार्ग-दर्शक स्वीकारा है, उनमें अधिकाशं धनहीन, नीच और परेशान व्यक्ति ही हैं। किसी-किसी के पास तो शरीर ढांपने के लिए कपड़े भी नहीं हैं। क्या हम भी मुहम्मद के अनुयायियों में शामिल होकर उन्हीं जैसे बन जाएं? और भाइयो! अब्दुल्लाह के बेटे के विचारों को मानने का अर्थ यह है कि तमाम कुरैश का विरोध मोल ले लें, अपने नातेदारों और सगे-संबन्धियों से संबंध विच्छेद कर लें। यह सौदा बड़ा मंहगा पड़ेगा, बल्कि इसमें घाटा ही घाटा

है।

वे लोग एक दूसरे से यह भी कहते कि निस्संदेह मुहम्मद अति सच्चे, वायदे के पक्के और ईमानदार हैं। उनके चालीस वर्ष हमारे ही साथ बीते हैं और आज तक कोई बुरी बात उनमें देखने को न मिली। उनके आचरण पर कोई उंगली भी नहीं उठा सकता। ऐसा सज्जन, सुसभ्य और सत्यवादी व्यक्ति तो हमारे अरब में दूसरा नहीं है। मक्का की गलियां, कुबीस की चोटियां, सफा की चट्टानें और काबे की मेहराबें इस अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के सदाचरण की गवाही देती हैं। उनकी अब तक की सभी बातें भली ही भली रही हैं। बड़े गुण हैं उनमें, पर कुछ दिनों से उन्होंने हमारी मूर्तियों की निन्दा करनी शुरू कर दी है, यह हमें पसंद नहीं है।

'पर मैं कहता हूं अब्दुल्लाह के बेटे सदा से हमारी मूर्तियों के विरोधी रहे हैं' एक कुरैशी ने कहा।

'नहीं यह बात नहीं है'—दूसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया।

'अरे साहब! आप तो निरे कल्पना-लोक में विचरण कर रहे हैं। और क्षमा कीजिए अदूरदर्शी भी हैं। मुहम्मद के पिछले जीवन पर एक दृष्टि तो डालिये। स्थिति स्पष्ट हो जाएगी और आपको मानना पड़ेगा कि मैं सच कह रहा हूं। बूढ़े व्यक्ति ने कहा।

'अच्छा, कुछ कहिए तो सही। आप तो निकाह की तरह शर्तें कबुलवा रहे हैं।' दूसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया।

'किसी व्यक्ति के विचार, उसके कार्य, चरित्र-आचरण और जीवन से जाने-पहचाने जाते हैं। क्या आपने लड़कपन में मुहम्मद को किसी मूर्ति के पास फटकते भी देखा? (सुनने वाला 'न' के लिए सिर हिलाता है) और युवावस्था में यहां तक कि सफा पर्वत पर इस्लाम का आह्वान करने तक मुहम्मद के ध्यान को मूर्तियों की ओर तनिक भी आकृष्ट होते देखा गया? (फिर सिरों का इंकार में हिलना) तो फिर इसका अर्थ यही निकला कि मुहम्मद ने खुलकर घोषणा तो अब की है, पर व्यावहारिक दृष्टि से वह सदैव ही मूर्ति पूजा का विरोधी रहा है। आपको मालूम न हो तो लाओ, मैं बताऊं! ज़ैद बिन अम्र बिन नुफैल ने मुहम्मद को एक बार भोज पर बुलाया था। गोश्त के डोंगे जब सामने आये तो उसने झट से यह कह कर हाथ पीछे खींच लिया कि मूर्तियों और थानों पर चढ़ाया हुआ

गोश्त मैं नहीं खाता। मैं तो उस जानवर का गोश्त खाता हूं जो खुदा का नाम लेकर ज़िब्ह किया गया हो। हम तो उसी दिन समझ गये थे कि यह व्यक्ति एक दिन कोई रंग लाएगा। और भाई! यह अब्दुल्लाह का बेटा तो हमारी रीतियों, संस्कारों और मेलों-ठेलों तक का विरोधी रहा है। पिछले वर्षों में कैसे -कैसे गाने-बजाने होते रहे हैं! हसीन की दासी रफ़ावा के नृत्य-गान पर नब्बे-नब्बे साल के बूढ़े झूम-झूम गये हैं और आसिम की बेटी के सरोद वादन ने आंखों की नींदें उड़ा-उड़ा दी हैं। सारा मक्का इन महफ़िलों में शरीक हुआ पर मुहम्मद की परछाई भी वहां देखने को न मिली। मदिरापान हम अरबों की घुट्टी में पड़ा हुआ है। हम जामों की खनखनाहट के बिना एक रात भी नहीं बिता सकते पर अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद को मदिरापान की किसी टोली में भी नहीं देखा गया। मैं अपने उपास्यों की सौगंध खा कर कहता हूं कि मुहम्मद ने आज तक शराब के जाम को छुआ तक भी नहीं। तो आख़िर इस से क्या निष्कर्ष निकलता है?'

'आप ही व्याख्या कर दें तो अच्छा है', एक आवाज़ आई।

'जिस प्रकार दो ऊंट और दो ऊंट चार होते हैं, उससे न कम हो सकते हैं न अधिक, वैसे ही यह एक मान्य तथ्य है कि मुहम्मद हमारे धर्म, संस्कृति, समाज और रीति-रिवाज का सदा से विरोधी रहा है। उसे हमारी यह सभ्यता एक आंख भी नहीं भाती। उसका जीवन हम सब के जीवन से भिन्न रहा है अपनों में रह कर यह अनजाना-पन, विरोध, विमुखता और दूरी और घृणा नहीं तो और क्या है?' कहने वाले की बातों पर एक साथ कई सिर हिले कि तुम ठीक कह रहे हो।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (नहीं है कोई उपास्य अल्लाह के अतिरिक्त) का नारा लगा कर कुफ़्र के महलों को कंपकंपा दिया। जहां-जहां यह स्वर गुंजरित हुआ, शिर्क और ज़ुल्म के पोषक थरथरा उठे। अबूजह्ल और अबू लहब भड़के कि हमारी चौधराहट छिनी जा रही है। अबू सूफियान थर्राया कि मेरी सरदारी को चुनौती दी जा रही है। वंश, वर्ण और रक्त तथा रंग पर गर्व करने वाले डरे कि हमारे अभिमान को ठेस पहुंचाई जा रही है। काहिनों (भविष्य वक्ताओं), राहिबों (सन्यासियों), जादूगरों, पुरोहितों और पुजारियों को पसीना आ गया कि हमारी धर्म गुरुता को इस सूत्र ने ख़तरे में डाल दिया है। मनोकामनाओं और इच्छाओं के पुजारी भयभीत हुए कि उनकी मनमानियों के विरुद्ध यह मोर्चा बन रहा है। हमारे भोग-विलास के सारे सहारे टूट जायेंगे और वासनाओं के ताने-बाने बिखर कर रह जायेंगे। जो जितना

अधिक बुरा और सच्चाइयों से जितना दूर था उसे उतना ही अधिक भय लग रहा था। सच्चे खुदा का नाम उच्चरित होते ही हर झूठा खुदा और बनावटी उपास्य कांप कर रह गया।

मक्का के कुरैश, यमन व शाम (सीरिया) और दूसरे देशों में व्यापार के लिए जाते और अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के नबी होने और आपके संदेश की चर्चा करते तो सुनने वाले आप ही आप सोच में पड़ जाते, उनके मन में यह भाव जाग्रत होता कि यह क्रांति मानो हमारी ओर भी बढ़ी चली आ रही है, और इसकी सीमाओं से हम अछूते नहीं रह सकते।

इन तमाम विरोधों, शत्रुताओं और कठिनाइयों के बाद भी खुदा का सच्चा नबी सत्य की घोषणा कर रहा था, कोई विरोध उसके दृढ़ निश्चय में तनिक भी ढील पैदा नहीं कर सकता था। वह सत्य, न्याय और दृढ़ता की प्रतिमूर्ति था। ये तमाम आंधियां उसे डिगा न सकीं। उसके संदेश का दीपक आंधियों की गोद में भी जलता रहा, और तूफान की धार पर भी विकसित होता रहा। विजय उस के पांव छू रही थी।

कुरैश विरोधी होने के बावजूद भी बड़े असंमजस और घुटन में पड़े थे। उनकी अंतरात्मा से आवाज़ आती कि मूर्खो! जिसे तुम लड़कपन से सच्चा कहते आये हो और जिसके मुख से किसी के कान ने एक अक्षर भी ग़लत व झूठ नहीं सुना, आज उसी को किस तर्क के आधार पर झुठलाते हो? यह कैसे संभव है कि एक व्यक्ति जो चालीस वर्ष तक सदा सच बोलता रहा हो और अब एकाएक ही झूठ बोलने लगे और वह भी किसी निजी स्वार्थ या निजी लाभ के लिए नहीं? वह तुम से धन-दौलत नहीं चाहता, सरदारी और बादशाही की तलब नहीं रखता। केवल 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) के एक सूत्र पर तुम्हें जमा करना चाहता है। पर जब बाप-दादा के संस्कार और कौम के रस्म व रिवाज का ध्यान आता तो अन्तरात्मा से निकला हुआ यह स्वर दब कर रह जाता।

कुरैश ने मिल-जुल कर अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) से मांग की:—

१. आप जब खुदा के सच्चे नबी हैं और खुदा आपकी हर बात मानता है तो मक्का के सामने जो पहाड़ खड़े हैं, जिन्होंने सारे शहर को ढाँप और घेर रखा है, उन्हें अपने खुदा से कह कर हटवा दीजिए ताकि हमारे शहर के आस-पास का वातावरण खुला-खुला हो जाए।

२. इराक़ और शाम के निवासी कितने भाग्यवान हैं कि उनके देशों में

नदियां बल खाती हुई चलती हैं, जिनके कारण वहां की धरती हरी-भरी और उपजाऊ है। आप भी अपने ख़ुदा से दुआ कीजिए कि कुछ नहरें हमारे देश में भी जारी हो जायें।

३. आप कहा करते हैं कि मृत्यु और जीवन ख़ुदा के हाथ में है तो फिर अपने ख़ुदा से कहिए कि हमारे बाप-दादाओं को जीवित कर दे और हां! देखिए, एक बात का विशेष ध्यान रहे। वह यह कि हमारे पुरखों में क़ुसई बिन किलाब को तो जैसे-तैसे अवश्य ही जीवित करा दीजिए। क़ुसई हमारा महान नेता था। उसने क़ुरैश के मान-सम्मान को बढ़ाया था और वह सच भी बोला करता था। बस! हम क़ुसई से भी पूछ लेंगे कि क्या अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद सचमुच ख़ुदा के रसूल हैं? क़ुसई झूठ नहीं बोल सकता। सही-सही बात बताएगा। अपनी सन्तानों को क़ुसई जैसा सज्जन पुरुष धोखे और अंधेरे में नहीं रख सकता।

४. और हां मुहम्मद! जीवन की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए तुम्हें स्वयं बाज़ारों में जाना पड़ता है, अपनी पीठ पर लाद कर सौदा सामान लाना पड़ता है, रोज़ी-रोटी के लिए तुम्हें दौड़-धूप भी करनी पड़ती है। तुम्हारी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं है और तुम्हारा मकान कच्चा और टूटा-फूटा है-न गर्मी में आराम देने वाला और न सर्दी में ज़रूरत के लिए काफ़ी—तो फिर तुम अपने ख़ुदा से कहो कि ऐ मुझे नबी बना कर भेजने वाले सामर्थ्यवान! मेरे लिए शानदार महल बनवा दे। मेरे आस-पास सोने-चांदी के ढेर लगा दे और मनोविनोद के लिए बाग़ उगा दे। और यह भी कहो अपने ख़ुदा से कि मेरे साथ एक फ़रिश्ता कर दिया जाये ताकि वह लोगों से कहे कि यह आदमी अपने दावे का सच्चा है।

क़ुरैश की इन मांगों में उनके छिछोरेपन की पूरी-पूरी झलक मिलती है, उनकी संकुचित दृष्टि और दुनियापरस्ती इसमें देखी जा सकती है। सच तो यह है कि उनके मन में दुनियां की रंगीनियां और धन तथा ऐश्वर्य छाया हुआ था। ऊंचे-ऊंचे महलों, सोने-चांदी के ढेरों और लहलहाते बाग़ों को ही उन्होंने सब कुछ समझ रखा था। मानवता और उसके गुणों का मूल्य वे जानते ही न थे। उन्हें नहीं मालूम था और अगर मालूम था, तो वे जानबूझ कर अनजान बन रहे थे कि सज्जनता, शालीनता, सत्यप्रियता और मानवता के लिये महलों की चकाचौंध और सोने-चांदी की तड़क-भड़क आवश्यक नहीं है। धन-दौलत की कसौटी पर किसी व्यक्ति की महानता को परखना सबसे बड़ी मूर्खता है, और

प्रकृति की यही रीति रही है कि सत्य और न्याय के दीप आरम्भ में टूटे-फूटे मकानों और झोपड़ियों में ही जलते रहे हैं।

कुरैश की इन मांगों के उत्तर में नबी के मुख से यों निकला—

'मैं इन बातों के लिए नबी बना कर नहीं भेजा गया। मैं अपने ख़ुदा से ऐसी चीज़ें कभी न मांगूगा। मुझे अल्लाह ने अपनी ही रहमतों की शुभ-सूचना देने वाला और उसके अज़ाब से डराने वाला बना कर भेजा है। तुम मेरी बात मान लोगे तो लोक-परलोक में तुम्हारा भला होगा, वर्ना सब्र करुंगा और ख़ुदा के फ़ैसले का इन्तिज़ार करुंगा।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के इस उत्तर पर कुरैश साश्चर्य एक दूसरे का मुंह तकने लगे। फिर स-संकोच बोले—

'तुम्हें अपने सच्चे होने का इतना अभिमान है और ख़ुदा पर इतना गर्व है तो तुम आसमान का एक टुकड़ा ही हम पर गिरा दो।'

इस के उत्तर में आपने फ़रमाया कि ख़ुदा चाहे तो ऐसा कर सकता है।

इस पर ये लोग बोले कि जब तक तुम ऐसा न करोगे तो हम तुम पर ईमान लाने से रहे।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि यह ख़ुदा के वश में है। वह चाहेगा तो ऐसा हो जायेगा। □

# हज़रत उमर (रजि०) के इस्लाम लाने के बाद

मक्का के रहने वाले बड़े ही क्रूर हृदयी थे। कहा जा सकता है कि उनके दिल पत्थर की तरह कठोर थे। पर कुछ पत्थरों से तो पानी बरसने लगता है, यहां तक कि सोते (चश्मे) फूट निकलते हैं, और यहां तो कुरैश के दिलों में इतनी भी नम्रता न थी। प्रकृति ने उन्हे इस से भी वंचित कर दिया था। सन्मार्ग की ज्योति को देख कर उनके मन के भीतर के अंधकार को भय-सा होता था। उनके दिलों में सचमुच ताले पड़े हुए थे, आंखें थीं पर उनमें देखने की शक्ति न थी, कान थे पर वे सुनने में असमर्थ थे। मन चिन्तन-क्षमता ही खो बैठा था। मूर्खता की प्रतिमूर्ति, साक्षात अज्ञानता और पथ-भ्रष्टता की चलती-फिरती मूर्तियां।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इन मूर्खों को तरह-तरह से समझाया, अति मनमोहक शैली अपनायी। खुदा के अज़ाब के डरावे को बार-बार दुहराया, उनसे कहा कि यह दुनिया की ज़िदगी तो कुछ दिन की है, इस पर न इतराओ, असल ज़िन्दगी तो मरने के बाद की ज़िन्दगी है। मरने के बाद अल्लाह तमाम जीवों को फिर से जीवित करेगा और क़ियामत के दिन हर एक के कर्मों का हिसाब-किताब होगा। अनेकेश्वरवादियों, अनीश्वरवादियों और अवज्ञाकारियों के लिए जहन्नम (नरक) बनाई है, जहां बड़ी दर्दीली यातनाएं दी जायेंगी और यही नहीं, पिछली जातियों के विनाश की कहानियां भी सुनायीं कि उनके चेहरे और उनके रहने के मकान तक पहचाने न जाते थे। अल्लाह के अज़ाब ने जब उनको आकर पकड़ा तो कोई शक्ति उन्हें बचा न सकी। आंधी के एक झोंके और अज़ाब की एक चीख ने उन्हें मौत की नींद सुला दिया।

संमार्ग और भलाई की इन बातों का कुरैश ने उल्टा उपहास किया। मूर्ख आपस में कहते कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद पर किसी ने जादू कर दिया है। कोई मत व्यक्त करता कि यह मुहम्मद जिस को वह्य बताता है, बस अधिक से

अधिक उच्च श्रेणी का काव्य है। इसमें कुछ भविष्य वक्ताओं की झलक भी मिलती है। सत्य का सूर्योदय हो चुका था, पर अन्धे उसके प्रकाश से वंचित थे। कुरैश अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के और आपके संदेश के विरोध में डटे हुए थे। पर इस विरोध के बाद भी उनके मन में भीतर से सिहरन पाई जाती थी। उनकी अन्तरात्मा की आवाज़ थी कि यह सत्य का स्वर किसी के रोके से रुक नहीं सकता। इस सत्य-संदेश में असाधारण शक्ति पाई जाती है। कट्टर से कट्टर विरोधी भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

इस दमन-चक्र के होते हुए भी मुहम्मद (सल्ल०) के मानने वाले भी निरुत्साह नहीं हो रहे थे। वे अडिग थे, निष्ठावान थें और सुदृढ़ संकल्प अपने मनों में संजोए हुए थे। भला ऐसे लोग कहीं निराश होते हैं।

आरम्भ में इस्लाम-प्रचार की गति तेज़ न थी। सच्चाई धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखा रही थी, पर जिस हृदय में भी यह स्वर रच-बस जाता, उसे संसार की कोई भी शक्ति अपनी ओर झुका न सकती थी। ऐसा व्यक्ति संसार के हर काम को लात मार कर बस ख़ुदा और रसूल का हो लेता। उसका जीवन साक्षात इस्लाम बन जाता। इस्लाम की सेवा उसे हर ओर से उदासीन कर देती। वे साथी जो सबसे पहले इस्लाम की गोद में आ गये थे, उनकी संख्या बहुत कम थी। बस कुछ गिने-चुने लोग थे, जैसे आटे में नमक! पर इस्लाम के लिए हर त्याग-भाव से ओत-प्रोत।

ख़त्ताब के नामी बेटे उमर भी उन सौभाग्यशालियों में थे, जिन को बहुत पहले इस्लाम की दौलत मिल गई थी। इस्लाम से पहले उमर (रज़ि०) सत्य-धर्म के कट्टर शत्रु थे, एक दिन तलवार गले में डाल कर घर से निकले कि आज मुहम्मद की हत्या करके इस झगड़े को ही समाप्त किये देता हूं। आदमी थे ही निर्भीक और साहसी। बड़े-बड़े शूर-वीर उमर से घबराते थे। इस्लाम के विरोधी कुरैश उमर के इस रवैये को देख कर अति प्रसन्न थे कि उमर की तलवार से अब पैग़म्बरे इस्लाम बच न सकेंगे। उन की नंगी तलवार उस समय तक म्यान में जाती ही न थी, जब तक कि अपने शत्रू के रक्त में न सन जाए। उमर अपने उद्देश्य में सफल हुए बिना वापस नहीं आयेगा। हमारे उपास्यों का हाथ उस पर है। मुहम्मद कब से हमारे उपास्यों का उपहास कर रहे हैं, अब इसकी सज़ा उन्हें मिल कर ही रहेगी।

उमर के हाथ में नंगी तलवार देखकर कुफ़्र के होंठों पर मुस्कान खेल रही

थी। अबू जह्ल हर्ष विह्वल होकर झूम रहा था, उत्बा की आंखें चमक रही थीं और अबू लहब यह सोच कर प्रसन्न था कि अब अब्दुल्लाह के बेटे का अन्त निकट है। बस! उसकी हत्या होते ही उसका लाया हुआ धर्म भी छिन्न-भिन्न हो जायेगा। उमर अपनी निर्भीक जवानी के नशे में चूर था कि मुहम्मद के साथियों में मेरा कोई मुक़ाबला न कर सकेगा। उसकी चाल तेज़ थी। इतने में मुहम्मद (सल्ल०) के एक साथी उसे रास्ते में मिले। उमर के निश्चय की सूचना पाते ही बोले कि उमर! पहले अपने घर की तो ख़बर लो! तुम्हारी बहिन और बहनोई भी मुसलमान हो चुके हैं।

उमर इस बात के सुनते ही सीधे अपनी बहिन के घर पहुंचे। चेहरा तमतमाया हुआ था और आंखों में ख़ून उतर आया था। उन की बहिन क़ुरआन पढ रही थीं। दरवाज़ा बन्द था। उमर ने दस्तक दी और साथ ही पुकारा भी। बहिन ने क़ुरआन के उन अंशों को समेटा और छिपा दिया।

उमर ने पूछा—'बताओ तुम क्या पढ़ रही थीं?'

बहिन ने बात छिपाना चाही। उमर क्रोध में जल उठा और बहिन को ख़ूब पीटा। बहनोई ने बचाने का यत्न किया और वे भी इस चपेट में आ गये।

उमर की बहिन ने कहा—'उमर! मैं मुसलमान हो चुकी हूं। ईमान अब मेरे दिल से नहीं निकल सकता, भले ही मुझे जान से मार डालो।'

बहिन के इस उत्तर पर उमर को क्रोध के बजाए आश्चर्य हुआ। वह कुछ सोचने लगा कि कैसा नशा है, जो लहू लुहान होने पर भी नहीं उतरा, बल्कि और तेज़ हो गया? कहने लगे—जो चीज़ तुम मेरे आने से पहले पढ़ रही थीं, मुझे भी सुनाओ।'

बहिन ने क़ुरआन की आयतें पढकर सुनाईं। एक-एक शब्द उमर के मन में उतरने लगा। आंखों में आंसू आ गये। ईश-वाणी के प्रभाव ने उमर के भाग्य को बदल डाला। ईमान की पावन समीर जो चली तो उमर के कुफ़्र का दीप क्षण भर में बुझ गया।

वह अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की सेवा में पहुंचे।

आप (सल्ल०) उमर (रज़ि०) का गरेबान पकड़ कर मुस्कराए। उमर (रज़ि०) ने कलिमा पढ़ा और साथियों ने इस जोश के साथ 'अल्लाहु-अक्बर' का नारा बुलन्द किया कि मक्का की पहाड़ियां गूंज उठीं।

मुहम्मद (सल्ल०) की एक मुस्कान ने उमर (रज़ि०) को सब कुछ दे दिया था—संमार्ग, सौभाग्य, सफलता और उत्साह और वह सब कुछ जो एक ईश-प्रिय और सत्य खोजी को दिया जा सकता है।

उमर (रज़ि०), जो मुहम्मद (सल्ल०)को क़त्ल करने का निश्चय करके चले थे, जब वापस हुए तो मुहम्मद (सल्ल०) का दास बन कर वापस हुये थे।

सदसाला दौरे चर्ख़ था, साग़र का एक दौर।
निकले जो मयकदे से तो दुनिया बदल गई।।

क़ुरैश तो इस प्रतीक्षा में थे कि उमर वापस आकर खुशख़बरी सुनायेंगे कि मैं अपने उद्देश्य में सफल हो गया। फिर हम सब मिल कर लात और हुबल की जय पुकारेंगे और उसके बाद अपने कानों से ख़दीजा का विलाप और अबूबक्र का चीत्कार, अली की सिसकियां और बिलाल हब्शी का रुदन सुनेंगे। अबू तालिब के घर में शोक की कालिमा छा जायेगी और मुसलमान शोक के मारे अपनी छातियां पीटते होंगे। कितना समय हो गया है हमें अपने उपास्यों की बुराइयां सुनते-सुनते। आख़िर बर्दाश्त की भी एक हद होती है। ख़त्ताब के बेटे के अभियान ने हमें आशा की किरण दिखाई, वर्ना दुनिया कहती कि ये क़ुरैश बड़े निरुत्साही तथा भीरु हैं कि एक व्यक्ति को भी ये न मार सके।

पर प्रकृति उनके इन अरमानों पर हंस रही थी कि मूर्खो! तमन्नाओं के जिन कमज़ोर खिलौनों से तुम दिल बहला रहे हो वे बहुत जल्द टूटने वाले हैं। तुम्हारी आशाओं के उपवन तो उजड़ सकते हैं, पर लहलहा नहीं सकते। तुम्हारी तमन्नाओं के महल धूल-धूसरित होकर रहेंगे। अपनी संख्या और शक्ति पर इतना मत इतराओ। मुहम्मद (सल्ल०) से लड़ने का अर्थ है—ख़ुदा से लड़ना। अपने को सशक्त और मुसलमानों को निःशक्ति देख कर गर्व न करो। सफलता और विफलता तो अल्लाह के हाथ में है।

हज़रत उमर (रज़ि०) मुसलमान होने के बाद ख़ाना-ए-काबा में पहुंचे। विरोधियों से लड़-झगड़ कर नमाज़ पढ़ी। कुफ़्र चकित था और दुखी था कि यह क्या हो गया? —बुतों का पुजारी उमर एकाएकी ख़ुदा के दरबार में सिर झुकाने लगा। पैग़म्बरे इस्लाम का शत्रु उनका दास बन गया। जिसकी तलवार से हम क़ुरैशियों को बड़ी आशाएं थीं, अब वह तलवार इस्लाम के समर्थन में म्यान से बाहर आया करेगी। ख़त्ताब के बेटे उमर का मुसलमान होना बहुत बड़ी घटना है। ऐसा लग रहा है मानो हम क़ुरैशियों का सीधा बाज़ू टूट गया। उमर से इस

ना-समझी और भीरुता की हमें कदापि आशा न थी। अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद की दृष्टि और वाणी में न जाने क्या जादू है कि आदमी बस उन्हीं का होकर रह जाता है।

हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत हमज़ा (रज़ि०) जैसे सरीखे वीर और साहसी व्यक्तियों को मुसलमान होता देखकर मक्का वासियों की शत्रुता और बढ़ गई। उनके क्रोध की अग्नि और भभक उठी। आपसमें मश्विरे होने लगे कि अगर इस्लाम की प्रगति इसी प्रकार होती रही तो हमारे देखते ही देखते सारा मक्का अपने पैतृक धर्म से विमुख हो जायेगा। और लात और हुबल के लिए एक माथा भी शायद न झुक सकेगा। इसे कैसे भी सहन नहीं किया जा सकता और इसका उपाय शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिये।

सब लोग इकट्ठे होकर अबू तालिब के पास आए। तमतमाए हुए चेहरे, अकड़ी हुई त्यौरी और क्रोध से फैली हुई आंखें किसी के गले में तलवार, किसी के हाथ में बर्दी और किसी के कंधे पर लटती हुई तरकश—दिखाना यह था कि हम लड़ाई के लिए तैयार हैं। हमारे पास शक्ति है, साधन है, जन-शक्ति है, अस्त्र हैं। हमने अगर युद्धनाद किया तो फिर मक्के की गलियों में खून की नदियां बह जायेंगी। इन लोगों ने बल देकर अबू तालिब से कहा—

'अबू तालिब! हम आपका आदर करते हैं। यह आदर ही है कि हमने अब तक कोई चुनौती नहीं दी। हम ढील देते रहे कि आपका भतीजा मुहम्मद शायद अपनी हरकतों से रुक जाये, पर उसकी गतिविधियां तो दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली जा रही हैं। हम आख़िर कब तक अपने उपास्यों की बुराइयां सुनते रहें। वे देवता जो हमारे आड़े समयों में काम आये, जिन्होंने हम पर उपकार किये हैं, क्या अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के कहने पर हम इनके प्रति अपनी श्रद्धा समाप्त कर दें या अपना संबंध तोड़ दें? यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं हो सकता। अबूतालिब! देखिए, आप समझदार हैं, आप स्वाभिमानी भी हैं, आपको भी ये बातें पसन्द न होंगी। हम तीन शर्तें ले कर आप के पास आए हैं। अपने भतीजे मुहम्मद से कहिए कि वह हमारे बुतों को बुरा-भला कहना छोड़ दे, या अगर यह नहीं हो सकता तो आप मुहम्मद के समर्थन से हाथ खींच लीजिए। उसे हमारे हवाले कर दीजिए या फिर आप हमसे लड़ने के लिए तैयार हो जाइये। अबू तालिब, सुनिए! यह हमारा अन्तिम निर्णय है। हम अपने तमाम कबीलागत विरोधों और पारिवारिक शत्रुताओं के होते हुए भी इस पर सहमत हैं। अच्छी

तरह सोच-विचार कर लीजिए। आपको इन शर्तों में से कौन-सी शर्त स्वीकार है? वृद्धावस्था तक पहुंचते-पहुंचते एक व्यक्ति अनुभवी और सूझ-बूझ वाला हो जाता है। हमें विश्वास है कि आप भी अपनी सूझ-बूझ का प्रमाण देंगे। आपका आदर और सम्मान करने के कारण हमें आपसे सहानुभूति भी है। इस समय हमने बहुत ही सरल और हल्की शर्तें रखी हैं। हमारे युवक तो इन शर्तों से भी सहमत नहीं हैं। उनका तो कहना है कि बनू हाशिम से तत्काल लड़ाई छेड़ी जानी चाहिए। परन्तु हमने उन्हें समझा-बुझाकर इस पर तैयार कर लिया है कि अगर किसी समझौते से काम निकल जाये तो अच्छा है। हम अबू तालिब के पास जाते हैं और उनसे आज खुल कर बातें कर लेंगे।

अबू तालिब कुरैश की इन चुनौती-पूर्ण बातों को सुनकर सोच में पड़ गये। उन लोगों के जाने के बहुत देर बाद तक वे सोचते रहे कि अजीब चक्कर है। प्यारे भतीजे को इन दुष्टों और विरोधियों के हाथ में देते हुए मन शोकाकुल हो जाता है और मुहम्मद का साथ देता हूं तो हज़ारों व्यक्तियों से लड़ाई मोल लेनी पड़ती है। क्या करूं और क्या न करूं? ये लोग सचमुच बिगड़ बैठे तो हम गिनती के बनू हाशिम इनकी चुनौती कैसे स्वीकार कर सकेंगे? एक क्षण में ही हज़ारों तलवारें हमारे सिरों पर टूट पड़ेंगी, बरबाद हो जायेगा हमारा घराना। सौ दो सौ व्यक्ति हों तो उनका मुकाबला किया भी जा सकता है, पर हज़ारों व्यक्तियों के वार को सहार ले जाना अति कठिन है। ये तो वे लोग हैं जो छोटी-छोटी बातों पर नंगी तलवारों को सौंत कर मैदान में आ जाते हैं और जब तक धरती रक्त से सन नहीं जाती, लड़ाई बंद नहीं होती। ये तो उनके पैतृक-धर्म और विश्वास का मामला है। इसके लिए तो वे जान पर भी खेल जायेंगे।

एक संघर्ष था जो अबूतालिब के मन में शुरू हो गया था। कभी चित्र का प्रकाशमान पहलू सामने आता और कभी भयानक और अन्धकारमय पहलू!

अबूतालिब ने अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को बुलाकर कहा कि कुरैशी मेरे पास आये थे और ऐसी-ऐसी बात मुझ से कह गये हैं। तुम अपने आप पर दया करो। इतने लोगों से लड़ना मेरी शक्ति से बाहर है। अबू तालिब के कहते ही खुदा के सच्चे नबी (सल्ल०) के चेहरे पर सन्तोष, निर्भीकता और विश्वास की लहर दौड़ गई।

बोले—आप शायद यह सोच रहे होंगे कि मैं आपका समर्थन पाकर यह काम करता हूं। नहीं, यह बात नहीं है। मेरा समर्थन और मेरी सहायता तो मेरा

खुदा कर रहा है। मेरे अल्लाह ने इस काम के लिए मुझे आदेश दिया है। जब तक यह अभियान पूरा न होगा, मैं अपने मार्ग पर बढ़ता जाऊंगा। आपका सहारा अवश्य है, और अगर यह न भी हो तो खुदा की सहायता और उसका समर्थन ही मेरे लिए पर्याप्त है। अगर ये लोग मेरे एक हाथ पर सूरज और दूसरे पर चांद भी रख दें तो भी मैं अपना कर्त्तव्य निभाने से रुकूंगा नहीं।

इस उत्तर को सुनकर अबू तालिब की आंखों में आंसू तैरने लगे। वे बोले।

'ऐ मुहम्मद! तुम अपना काम करते रहो। काबा के स्वामी की कसम खाकर कहता हूं कि जब तक मेरी जान में जान है और सांस चल रही है, तब तक ये लोग तुम पर काबू नहीं पा सकते। □

# पत्थरों की वर्षा

मक्का से कुछ कोस की दूरी पर तायफ़ की बस्ती है, जो अपने हरे-भरे बाग़ीचों, लहलहाते खेतों और मरुद्यानों के लिए अतिप्रसिद्ध है। तायफ़ हिजाज़ देश का कश्मीर है। गर्मी के दिनों में हिजाज़ के धनी-मानी व्यक्ति वहीं वास करते हैं ताकि झुलसा देने वाली हवाओं के थपेड़ों से सुरक्षित रहें। तायफ के आसपास की भूमि अति उपजाऊ है। फल और तरकारियाँ तो विशेष रूप से पैदा होती हैं।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) सत्य प्रचार के लिए पैदल चलकर तायफ़ पहुंचे। तायफ़ के सबसे बड़े सरदार अब्द या लैल के समक्ष इस्लाम का संदेश रखा और इसके बाद सामान्य रूप से उपदेश देते रहे। इन उपदेशों में ख़ुदा की बड़ाई, मूर्ति-पूजा की निन्दा, बुराइयों से बचने की ताकीद और अच्छाई का जीवन बिताने का आहवान था। अति मधुर स्वर, मीठे शब्द, मन को प्रभावित करने वाली वाणी! पर तायफ़ के लोग मक्का वालों से कम दुष्ट और क्रूर न थे। इन भाग्यहीनों ने अपने गुलामों और छोकरों को आपके विरुद्ध उभार कर पीछे लगा दिया। भरे बाज़ार में गालियां दी गईं, बुरा-भला कहा गया और फिर पत्थरों की वर्षा की गई, यहां तक कि हुज़ूर (सल्ल०) के पांव ख़ून में सन गये।

यह दृश्य बड़ा ही दर्दीला था! सूरज की आंख से लहू टपका पड़ रहा था। दर व दीवार कांप-कांप जाते थे, धरती की छाती से हृदय विदारक आहें निकल रही थीं। पेड़-पौधों और पत्थरों की मूक भाषा में फ़रियाद थी। एक ओर विश्व का महानतम व्यक्ति, मानवता का महान उपकारी और ख़ुदा का सच्चा रसूल (सल्ल०) भलाई की बातें बयान कर रहा था, लोगों को अंधेरे से उजाले की ओर बुला रहा था और दूसरी ओर उसके उत्तर में पत्थर बरसाए जा रहे थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) घावों के कारण ज़मीन पर गिर-गिर पड़ते, आपके सेवक बांह पकड़-पकड़कर खड़ा करते और चलने लगते, तो वे दुष्ट और अधिक तेज़ी और

बेदर्दी के साथ पथराव करते, यहां तक कि हुज़ूर (सल्ल०) फिर ज़मीन पर बैठ जाते। आपकी यह दशा देखकर तायफ़ के लौंडे तालियां बजा-बजाकर हंसते। हज़रत ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को बचाने के लिए अपने सीने को ढाल बना दिया था और पत्थरों से उस प्राण न्यौछावर कर देने वाले सेवक का सिर फट गया।

मौत और विनाश के फ़रिश्ते इन्तिज़ार में थे कि अब अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के मुख से तायफ़ वालों के लिए श्राप निकलता है और अल्लाह का हुक्म पाकर तायफ़ के भू-भाग को हम धुंए की तरह उड़ाए देते हैं। मुहम्मद (सल्ल०) के लहू की एक-एक बूंद का बदला हम लेकर रहेंगे। एक-एक अपशब्द का उत्तर दिया जायेगा। आद व समूद की क़ौमों से अधिक बुरा अंजाम भुगताकर छोड़ेंगे इन तायफ़ वालों को! विश्व-नायक के अनादर से बढ़कर और कौन सा अपराध हो सकता है, पर साक्षात दया पैग़म्बरे इस्लाम के मुख से श्राप का एक शब्द भी न निकला। अपने अल्लाह से इस अत्याचार की आपने तनिक भर भी शिकायत न की। धैर्य और सहनशीलता और अल्लाह पर भरोसे का एक ऐसा आदर्श स्थापित किया, जिसके उदाहरण से अगला-पिछला इतिहास ख़ाली है।

तायफ़ वालों को अपनी सफलता पर गर्व था कि हम ने अपने उपास्यों के अनादर का आज ख़ूब जी खोल कर बदला ले लिया। वे बहुत निडर हो गये थे और अपने किये पर तनिक भी लज्जित न थे। आपस में कहते थे कि यह कैसा रसूल है कि ज़रा-ज़रा से छोकरे उस का उपहास करते हैं और पत्थर बरसाते हैं, पर उस का ख़ुदा न तो उसे बचाता है और न उसकी सहायता के लिए आसमान से किसी फ़रिश्ते को भेजता है।

यही उनका भ्रम था। असत्य सदा ही इसी प्रकार के धोखों में मग्न रहता आया है।

हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) तायफ़ से वापस हुए, पांव घायल थे, तायफ़ की ठंडी हवाओं से चोटों में टीस होती थी और रास्ते की धूल ने घावों को और अधिक कष्टकर बना दिया था। फूलों के बदले देह पर चोटों और घावों को लेकर आप मक्का पहुंचे। मक्का के शत्रु आप की गतिविधियों की ख़बर रखते थे कि आज क्या कहा, किस से भेंट हुई, किस पर क्या प्रभाव हुआ? तायफ़ की घटना की सूचना पा कर वह अति प्रसन्न हुए और तायफ़ वालों के इस

अत्याचार की सराहना की। इनके बड़े-बड़े नव-जवान कुरैश को लाज दिलाते कि तुम से अधिक निर्भीक वीर तो तायफ़ के छोकरे निकले, जिन्होंने अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद का भरे बाज़ार में अनादर किया और उनकी बात किसी को सुनने न दी। □

# दुखों का वर्ष

इन तमाम विरोधों तथा शत्रुता-भावों के बावजूद मुसलमानों की संख्या में बराबर बृद्धि होती जा रही थी। जो इस सत्य-धर्म को स्वीकार कर लेता, वह अपनी जगह पर स्वतः साक्षात प्रचार तथा सन्मार्ग की प्रतिमूर्ति बन जाता। मक्का के गहन अंधकार में इस्लाम का प्रकाश फैलता जा रहा था। इस्लाम की इस उन्नति को देख कर कुरैश के विरोधी बहुत तिलमिलाए कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद का संदेश तो किसी प्रकार भी नहीं रुकता। यह पौधा तो विरोधों की आंधियों में और जड़ पकड़ता और फैलता जाता है। और यही नहीं, इस धर्म में न जाने क्या रस है कि जिसने इसे स्वीकार कर लिया, बस वह उसी का हो लिया। मुसलमान राह चलते पिटते हैं, चोटें खाते हैं, घर वाले उन्हें खाना-कपड़ा तक नहीं देते, पर ये लोग ऐसे धुन के पक्के हैं कि इन तमाम परेशानियों के बाद भी मुहम्मद ही का गुन गाते हैं।

कुरैशी सरदार जमा हुए, किस काम के लिए? क्या किसी के यहां भोज था? किसी बादशाह या शासक के दरबार में दूत भेजना था? व्यापार-यात्रा के लिए मश्विरा हो रहा था? नहीं, इन में से कोई बात भी न थी। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के विनाश और आप के संदेश को विफल करने के उपाय सोचने और उसे अमली जामा पहनाने के लिए यह सम्मेलन बुलाया गया था। बहुत कुछ सोच-विचार और वार्त्तालाप के बाद अन्त में यह तै हुआ कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को आप के पूरे परिवार के साथ किसी जगह बंद कर के सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाये। खाने-पीने की चीज़ों में जब रुकावट होगी, तो बनू हाशिम भूख-प्यास की ताब न ला कर हमारी हर शर्त मान लेंगे। कौम का दबाव बहुत बुरी चीज़ है, अच्छे-अच्छों के होश ठिकाने आ जाते हैं।

मंसूर बिन इक्रिमा ने तमाम कबीलों की ओर से एक संधि-पत्र तैयार किया—

'जब तक अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद को बनू हाशिम कत्ल के लिये हमारे सुपुर्द न कर दें, उस समय तक कोई बनू हाशिम से न ब्याह-शादी करेगा, न इनके साथ क्रय-विक्रय होगी, न इन से कोई बोले-चालेगा और न इस परिवार वालों के पास खाने-पीने की कोई चीज़ जाने देगा।

यह संधि-पत्र ऊंट की खाल पर लिख कर काबा के द्वार पर लटका दिया गया, ताकि पूरे मक्के को इस की सूचना हो जाये। जो व्यक्ति इस पत्र को पढ़ता, वह दूसरे से उल्लेख करता और दूसरा तीसरे से! इस तरह पूरे मक्का को इसकी सूचना हो गयी कि बनू हाशिम से मिलना-जुलना, मामला करना और उन्हें खाने-पीने की चीज़ें देना बहुत बड़ा राष्ट्रीय अपराध है। कबीलों के तमाम सरदार इस समझौते में शरीक हैं, इसलिए हर कबीले वाले पर इन शर्तों की पाबंदी अनिवार्य है।

अबू तालिब अपने परिवार सहित शाबे अबी तालिब (घाटी का नाम) में शरण लेने पर मजबूर हो गए। यह एक तरह की कैद थी। इस घराने के किसी आदमी से कोई कुरैशी बात-चीत न करता। गलियों के मोड़ों पर पहरे बिठा दिए गये थे कि कोई व्यक्ति तरस खा कर खाने-पीने की कोई चीज़ बनू हाशिम तक न पहुंचा आए। शाबे अबी तालिब से आने-जाने वालों क़ी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आप के साथियों पर कई-कई समय के उपवास होने लगे। साथी भूख से बे-चैन हो कर पेड़ों की पत्तियां खा-खा कर बसर करते। एक सहाबी (साथी) को संयोग से गली में एक सूखा चमड़ा मिल गया। उन्होंने पानी में भिगो कर उसे कूटा और जब खूब नर्म हो गया, तो उसे गले से नीचे उतार लिया। हाशमी घराने के फूल-से-बच्चे भूख की ताब न ला कर रोते तो उनकी आवाज़ें सुन-सुन कर कुरैशी खुश होते।

एक दूसरे को मुबारकबादियां देता कि कुरैश के कबीलों ने इस समझौते की पाबन्दी कर के राष्ट्रीय महत्ता को बढ़ा दिया है। अगर हम सब में ऐसा ही एका रहा, तो बनू हाशिम मजबूर होकर हमारे आगे झुक जाएंगे। सामाजिक बहिष्कार की मार बहुत बुरी होती है, आख़िर कब तक इन सख़्तियों का मुक़ाबला करते रहेंगे। वह समय बहुत निकट है कि अबू तालिब अपनी सफ़ेद दाढ़ी को मुट्ठी में पकड़ कर कहते होंगे कि भाइयो! मेरे भाइयों की ग़लती माफ़ कर दो। यह लो अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद को तुम्हारे सुपुर्द करता हूं, उनको

चाहे क़ैद में रखो या क़त्ल कर डालो।

पूरे तीन वर्ष इसी स्थिति में बीत गए। परेशानियों की कोई सीमा न रही, मुसीबतों की हद हो गयी। मक्का की भरी बस्ती में बनू हाशिम बेगानों बल्कि अछूतों और क़ैदियों का जीवन जी रहे थे– विवशता और हीनता का जीवन, ऐसा जीवन, जिस के मुक़ाबले में एक व्यक्ति आत्म-हत्या करने पर विवश हो जाता है। क़ुरैश ने बनू हाशिम, मुहम्मद (सल्ल०) और मुहम्मद (सल्ल०) के साथियों को एक-एक दाने के लिए तरसा दिया, फिर भी उनके क़दम न डगमगाए। भूख-प्यास की हालत में भी वे अपने अल्लाह का गुण-गान करते रहे। उनके स्थान पर कोई और होता तो किसी मस्लहत की आड़ लेकर समझौता कर लेता, पर यहां मरना तो स्वीकार था, पर अपने उद्देश्य से बाल बराबर हटना भी पसन्द न था, यहां तक कि दुख और विपत्ति के ये तीन वर्ष भी बीत गये और इस्लाम-विरोधियों के सामाजिक बहिष्कार का यह वार भी ओछा निकला।

अबू तालिब का बुढ़ापा था, ग़मों ने उनको और निढाल कर दिया। भतीजे के समर्थन के कारण सारी क़ौम विरोधी हो गयी थी। बूढ़ी कमज़ोर हड्डियाँ थीं, कब तक ग़म को सहन करतीं। एक बार बीमार पड़ गये। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) मेहरबान चचा का पूछना करने गये। अबू तालिब ने आप से कहा,

'भतीजे! जिस ख़ुदा ने तुझे रसूल बना कर भेजा है, उस से मेरे अच्छे हो जाने के लिए दुआ क्यों नहीं करते?'

हुज़ूर (सल्ल०) ने चचा की इस इच्छा का संकेत मिलते ही अल्लाह के दरबार में दुआ की। मुहम्मद (सल्ल०) की दुआ के स्वागत में जवाब ख़ुद दौड़ा हुआ आया और अबू तालिब अच्छे हो गये, उन में शक्ति लौट आयी, जैसे उनके निःशक्ति शरीर में किसी ने नए सिरे से जान डाल दी हो, प्रसन्न होकर बोले–

'भतीजे! ख़ुदा तेरी बात मानता है।'

इस पर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया–

'चचा! अगर आप भी ख़ुदा की बात मान लें और उसके कहे को पूरा कर दिखाएं, तो वह भी आप का कहा माने।'

कुछ दिन अच्छे रह कर अबूतालिब फिर बीमार पड़ गये, जीवन सूर्य सच

में आयु-छोर पर आ गया था, बुढ़ापे की ओट से मौत झाँकने लगी थी, साँस का डोरा इतना कमज़ोर हो गया था कि बस तनिक-से झटके की देर थी, फिर किस्सा पाक था। संसार में हर दुख का इलाज और हर दर्द की दवा मौजूद है, पर मौत का कोई इलाज नहीं। ईसा (अलै०) का चमत्कार भी मौत के रोग की दवा नहीं बन सकता। यहीं आ कर हर कोई विवश और निःसहाय हो जाता है। इस रास्ते में प्रकृति राजा-रंक, ज्ञानी-अज्ञानी के साथ बिल्कुल एक-जैसा बर्ताव करती है। मौत का फरिश्ता लौह-किलों में भी पहुंच जाता है, मौत के फ़रिश्ते के वार का तोड़ किसी को नहीं मालूम, इस के पंजे से किसी का गला भी नहीं बच सकता।

अबूतालिब की बीमारी लम्बी खिचती गयी। मक्के की परम्परानुसार दवा-दारू भी हुई, पर प्रकृति उनके जीवन-ज्ञापन पर अन्तिम मुहर लगा चुकी थी, अन्ततः बूढ़े अबूतालिब अन्तिम हिचकी लेकर मौत की हमेशा की नींद सो गए। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को मेहरबान तथा स्नेहिल चचा की मौत का दुख होना ही चाहिए था, पर कुरैशी कुफ़्फ़ार के घरों में प्रसन्नता के दीप जल रहे थे और रंग-रलियां मनायी जा रही थीं कि आज मुहम्मद (सल्ल०) का सब से बड़ा सहारा जाता रहा। अबू तालिब का समर्थन, जो आज तक अब्दुल्लाह के बेटे के काम आता रहा, अब मौत ने छीन लिया, मिटा दिया बल्कि फ़ना कर दिया। पहले तो मुहम्मद चचा की मौत से स्वतः टूट गये होंगे और उनमें पहला-सा उत्साह न रहा होगा, पर अब भी उन्होंने पहले की तरह अपनी गतिविधियां जारी रखीं, तो हम उन का ज़ोर तोड़ कर रख देंगे। यह अबू तालिब का मुंह था जो हम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह की थोड़ी बहुत रियायत कर जाते थे। अब उनके साथ किसी प्रकार की रियायत, दया, कृपा सही न होगी। चचा का प्रेम भतीजे के लिए हर अवसर पर ढाल बन जाता था पर अब वह ढाल अपने आप ही टूट गयी।

यह उन की भूल और अदूरदर्शिता थी। प्रकृति उन की बातों पर हंस रही थी कि मूर्खो! मुहम्मद (सल्ल०) का भरोसा अबूतालिब पर नहीं, खुदा पर था। अबू तालिब मर गये, पर खुदा ज़िंदा है। हां! हां! तुम्हारी आँखों ने अबूतालिब की मौत पर मुहम्मद (सल्ल०) को शोकाकुल देखा है, पर यह शोक इसलिए नहीं था कि मुहम्मद (सल्ल०) बे-सहारा हो गये। यह तो रिश्तेदारी, खून, सम्बन्ध और प्राकृतिक लगाव का शोक था, तुम ने मुहम्मद (सल्ल०) के शोक को अपने सांसारिक और स्वार्थी शोकों के पैमानों से नापने की ग़लत कोशिश

की। याद रखो! जान लो!! अच्छी तरह समझ लो!!! कि मुहम्मद (सल्ल०) की दुनिया में किसी सहारे और माध्यम की आवश्यकता नहीं। जिस ख़ुदा ने उसे नबी बना कर भेजा है, वही उस का संरक्षक निगहबान और सब से बड़ा सहारा है– और तुम्हारी इस दुनिया के सहारे तो कच्चे धागे से भी अधिक कमज़ोर हैं, तनिक ऊंच-नीच हुई और ये धागे या तो बिखर गये या टूट गये, पर ख़ुदा का सहारा नहीं टूट सकता। दुख और विपत्तियां तो इस सम्बन्ध, सम्पर्क और सहारे को और सुदृढ़ बनाती हैं।

दुखों से मन में एक विशेष विनीत-भाव जन्म लेता है, इसीलिए अल्लाह का यह नियम रहा है कि उस ने उन पावन प्राणियों को, जिन से संसार के सुधार एवं पथ-प्रदर्शन का काम लेना होता है, दुखों, विपत्तियों, परेशानियों और कठोर परीक्षाओं में डाल रखा है। सुख-ऐश्वर्य का वातावरण सुधार एवं मार्ग-दर्शन के पवित्र पौधे के लिए सदैव प्रतिकूल सिद्ध हुआ है। दूसरे का दुख वही व्यक्ति अच्छी तरह जान सकता है, जो स्वयं दुखों और विपत्तियों का शिकार रहा हो। भूख की तेज़ी और कष्ट उपवास वालों से पूछिए, ये पेट भरे इसे क्या जानें, जिस किसी की बेवाई भी न फटी हो, वह इस कष्ट को न जानने वाला परायी पीड़ा क्या समझे!

अबूतालिब की मृत्यु का शोक अभी ताज़ा ही था कि हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के दुख-सुख में शरीक जीवन-संगिनी हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) कुछ दिन बीमार रह कर अल्लाह को प्यारी हो गयीं। आगे-पीछे एक छोड़ दो मेहरबान और दुख-सुख के साथी नातेदारों का उठ जाना कोई साधारण घटना न थी। ग़मों के दो पहाड़ थे, जो थोड़े-थोड़े अवकाश से इब्ने अब्दुल्लाह पर टूट पड़े, पर मुहम्मद (सल्ल०) इन ग़मों को सब्र व शुक्र के सहारे सहन कर ले गये। अल्लाह ने सब्र की शुभ-सूचना और अपनी सहायता के वायदे से आप के दिल को थामा, पर किसी दुर्घटना से प्रभावित होना मानव-स्वभाव है। आप पर भी दोहरी-दोहरी घटनाओं का प्रभाव हुआ, इस वर्ष को आप 'आमुल हुज़्न' अर्थात 'ग़म का साल' कहा करते थे।

अबू तालिब की मृत्यु पर ही काफ़िरों ने ख़ुशियां मनायीं थीं और अब हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के देहान्त ने उनकी ख़ुशियों में और बढ़ौतरी कर दी। दुश्मनी व्यक्ति को बहुत तंगदिल और निर्मम बना देती है, यहां तक कि अपने विद्वेषी की परेशानी और विपत्ति पर दुख की जगह प्रसन्नता होती है। विरोधी समझ रहे थे

कि मुहम्मद (सल्ल०) के दुख-सुख के साथी, मित्र, नातेदार और तमाम सहारे एक-एक कर के उठते जा रहे हैं, बस कोई दिन में यह धंधा समाप्त होने वाला है। जो नबी (अल्लाह की पनाह!) अपने मेहरबान चचा और जीवन-संगिनी को मौत से न बचा सका, वह अपने धर्म और उसके मानने वालों को क्या बचा सकेगा? आसमानों की ख़बर देने वाला धरती की मुसीबतों को नहीं टाल सकता! मूर्खता भरी अटकलें!! अज्ञानता की शंकाएं!!! □

# नजाशी के दरबार में

कुरैशी विरोधियों के दमन-चक्र की गति अब और तेज़ हो गयी। उनके मन की खोट कष्ट देने और अत्याचार करने के रूप में प्रकट होने लगी। वे अब सच-मुच अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और आप के साथियों के ख़ून के प्यासे हो गये। इन सब ने एका कर लिया था, अपने झूठे ख़ुदाओं की क़स्में खा-खा कर इस बात में एक हो गये थे कि जैसे बन पड़ेगा, मक्का से इस्लाम के शैदाइयों का नाम व निशान मिटा कर दम लेंगे, कांटे की नोक से लेकर नेज़े की अनि तक हर चीज़ मुसलमानों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल की जाएगी। जहां तक हमारे दम में दम है, यह नया धर्म अरब में नहीं चल सकता, लात व हुबल के गौरव पर हम बट्टा न लगने देंगे।

इस्लाम-विरोध कष्ट पहुंचाने के हर ज़रूरी हथियार से लैस होकर विरोध के मैदान में आ गया। मशिवरा नहीं, बल्कि प्रण किए गये कि मक्का की धरती मुहम्मद (सल्ल०) और आप के साथियों पर तंग कर दी जाएगी। खुल कर, छिपकर जैसे भी संभव होगा, मुसलमानों को सताया जाएगा। कोई बुत परस्त अपने मुसलमान नातेदार के साथ इस मामले में तनिक भी रियायत न करेगा। राष्ट्रीय उच्चता और सांस्कृतिक महानता हर वस्तु से अधिक मूल्यवान और प्रिय है। अबूतालिब और ख़दीजा की ताबड़-तोड़ मौतों ने मुहम्मद और उनके साथियों को हतोत्साह कर दिया है। उनके इस हतोत्साह होने से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। दुखी मन विरोधों को देख कर घबरा जायेंगे। और हमारे स्वाभिमान को क्या हो गया है कि गिनती के कुछ आदमियों को हम से नष्ट नहीं किया जाता; गलियों और बाज़ारों में अपने उपास्यों की हम बुराई सुनते हैं और कहने वाले के देह में एक सूई भी हम से नहीं चुभोयी जाती, हालांकि लात और मनात को बुरा कहने वाली जीभ गुद्दी से खींच कर फेंक दिये जाने योग्य है।

मर्द तो मर्द, औरतें तक स्वयं हुज़ूर नबी करीम (अलैहिस्सलातु वत्तस्सलीम) और आप के अनुयायियों को सताने पर उतारू हो गयीं,

अज्ञानतापूर्ण संकीर्णता-पूर्ण शक्ति के साथ लौट आयी थी। क़ुरैश शताब्दियों से एक दूसरे के शत्रु थे, क़बीलागत शत्रुताएं युगों से चली आती थीं, प्रतिशोध-भाव और कीने दिलों में एक समय से पल-पल बढ़ रहे थे, राष्ट्रीय एकता की झाड़ू शायद क़ुसई की मौत के बाद ही बिखर चुकी थी, पर इस्लाम-विरोध में वे सब के सब एक हो गये थे। इस उद्देश्य में वे सब सहमत थे। जुए के तौर पर पांसे फेंकने में वे एक-दूसरे से लड़-बैठते, बकरियां चराने और घोड़े दौड़ाने पर ख़ून-ख़राबा हो जाता, काव्य-सभाओं में गर्व युक्त बातें रक्तपात का रूप धारण कर लेतीं— पर अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के विरोध में वे सब 'एक' हो गये थे, उनमें से हर व्यक्ति अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) को और आप के साथियों को सताने में अबू जह्ल और अबू लहब से अधिक तीव्र और अत्याचारी बनने का यत्न करता।

युवा छोकरे अपने घर वालों से स-गर्व कहते कि आज फ़लां रेगिस्तान में हमने फ़लां मुसलमान को ख़ूब जी भर कर मारा, उसके बदन को लहू-लुहान कर दिया। कोई बयान करता कि बनू हुज़ल की गली में एक मुसलमान को मैंने पहले तो गन्दी गालियां दीं और फिर उसके माथे पर ताक कर जो पत्थर मारा है, तो हमारे उपास्यों का यह शत्रु घाव के प्रभाव से तिलमिला कर धरती पर गिर पड़ा और मेरी ठोकरों ने उसे और हलकान कर दिया। कोई औरत कहती कि मैं बनू हाशिम के घराने में गयी थी। एक मुसलमान औरत गोश्त पका रही थी, मैं उसकी हांडी में राख झोंक आयी, कोई व्यक्ति गर्व से कहता कि मैंने नमाज़ पढ़ते में स्वयं अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के सिर पर ऊंट की ओझड़ी डाल दी।

क़ुरैशी शत्रुओं के हृदय पहले ही से वज्र और कठोर थे। इस्लाम-विरोध ने इस कठोरता को और पत्थर बना दिया। उन में शालीनता-भाव, मानवता का अंश और चरित्र व आचरण का लेश मात्र भी शेष न रहा, न उनके पास सुनने वाले कान थे, न देखने वाली आंखें और न सूझ-बूझ वाली बुद्धि, पर— सत्य के पुजारियों का एक बे-लगाम गिरोह था, जो सत्य के मुक़ाबले की हर सम्भव शक्ति के साथ संघर्षरत था।

संकटों की ऐसी स्थिति में अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ख़ुदा का हुक्म पाकर अपने कुछ साथियों से फ़रमाया कि तुम लोग हब्शा चले जाओ। वहां का बादशाह तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करेगा और उस क्षेत्र में तुम्हें शांति मिल सकेगी। सहाबा किराम (प्यारे साथियों) का एक छोटा कारवां

हब्शा की ओर चल पड़ा। अल्लाह की राह में यह पहली हिजरत (देश-परित्याग) थी, जिस के कारण अरब से बाहर इस्लाम की आवाज़ पहुंच गयी।

वतन की मुहब्बत अपने भीतर बड़ा आकर्षण रखती है। एक-एक कण से हर व्यक्ति का एक लगाव होता है। वतन के कांटे पर देश के फूलों से बढ़ कर आकर्षक होते हैं, पर सत्य की सर्वोपरिता, ईश्वरीय-आदेश के पालन और सत्य के प्रचार-प्रसार में 'हिजरत' का नाज़ुक मोड़ भी आता है, जहां वतन के प्रेम पर कर्त्तव्य को प्रमुखता दी जाती है। वतन के ताल्लुक़ात और प्रेमपूर्ण सम्बन्ध दामन पकड़-पकड़ कर अपनी ओर खींचते हैं कि हमें छोड़ कर कहां जाते हो! परदेश में तुम्हारा हित कौन चाहेगा, अनजाना वातावरण तुम्हें रास न आएगा, यहीं पड़े रहो, अपनों की गालियां दूसरों की दुआओं से अच्छी होती हैं, पर ख़ुदा के मुजाहिद इस आवाज़ पर कान नहीं धरते, वह एक ही झटके में ताल्लुक़ात के उन तमाम धागों को तोड़ डालते हैं और ख़ुदा का नाम लेकर वतन से चल पड़ते हैं। उनकी अन्तरात्मा पुकारती है—

हर मुल्क मुल्के मास्त कि मुल्के ख़ुदा-ए-मास्त।
(हर देश हमारा देश है, इसलिए कि हमारे ख़ुदा का देश है।)

यह सौभाग्य तो हर किसी को नहीं प्राप्त होता। बहुत से लोग केवल अपनी जान और माल के बचाव के लिए वतन छोड़ते हैं। यह हिजरत नहीं पलायन है। हिजरत का उद्देश्य इस्लाम के प्रभुत्त्व और उसकी सुरक्षा के लिए वतन का छोड़ देना और पराएपन का अपना लेना है। सहाबा किराम ने इसी ध्येय और उद्देश्य के लिए देशनिकाला स्वीकार किया।

क़ुरैशी शत्रुओं को जब यह ज्ञात हुआ कि कुछ मुसलमान सकुशल हब्शा पहुंच गये, तो उन का एक प्रतिनिधि मंडल भी हब्शा को चला। वैमनस्य और विद्वेष की हद है कि वतन छोड़ देने के बाद भी क़ुरैश के कलेजे में ठंडक न पड़ी। वे चाहते थे कि मक्का की तरह हब्श की धरती भी मुसलमानों पर तंग कर दी जाए, इन 'सत्य' के पुजारियों को दुनियां के पर्दे पर कहीं भी शरण न मिले। सुख-शान्ति के तमाम द्वार इन पर बन्द कर दिए जाएं।

क़ुरैशी शत्रु बड़े ही चालाक, धूर्त तथा जोड़-तोड़ में दक्ष थे। बादशाहों की तानाशाही का दौर था। वे अच्छी तरह जानते थे कि हब्श के शाह की निगाह अगर मुसलमानों की ओर से फिर गयी, तो कोई शक्ति उन को हब्श में

शरण न दे सकेगी और यहां से उनको निकल जाना पड़ेगा, पर बादशाह को प्रत्यक्षतः प्रभावित करना अति कठिन था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन लोगों ने ज़मीन हमवार करनी शुरू कर दी, सब से पहले बादशाह के दरबारियों और अधिकारियों से मिले, उनको हर प्रकार से परचाया और सहाबा किराम के विरुद्ध भड़काया कि ये लोग एक नया धर्म लेकर तुम्हारे देश में आए हैं, इन्होंने हमारे नव-जवानों को बहका कर ग़लत राह पर डाल दिया है। देखना! कहीं यह जादू तुम्हारे लोगों पर भी न चल जाए। इस्लाम ईसाई धर्म का कट्टर विरोधी है। ये लोग तो बस तौहीद के नशे में मस्त हैं। इनका तो यही तकिया कलाम और दिन-रात का वज़ीफ़ा है कि 'अल्लाह एक है', हमारे उपास्यों की भी ये तौहीन करते हैं और तुम्हारे पावन पैग़म्बर ईसा मसीह के खुदा का बेटा होने को भी झुठलाते हैं। अगर मुसलमानों को हब्श में पांव जमाने का मौक़ा मिल गया, तो वह दिन दूर नहीं है कि स्वयं ईसाई नव-जवान कुंवारी मरियम की मूर्तियां, पवित्र हैकलें, और सलीबें अपने हाथों से एक दिन तोड़ते होंगे और कलीसाओं में ख़ाक उड़ती नज़र आएगी, अगर अपने धर्म की सुरक्षा और जीवन चाहते हो तो, इन लोगों को जैसे भी बने, हमारे सुपुर्द कर दो, हम उनसे भुगत लेंगे।

शाहे हब्श के दरबारियों ने कहा कि आप लोग जमा-ख़ातिर रखें। शाही दरबार में हम आप का पूरा-पूरा समर्थन करेंगे। हमें अपना समर्थक, मित्र और हितैषी समझिए। जहां तक हमारा वश चलेगा, आप लोगों की हां में हाँ मिलाने में कोताही न करेंगे। क़ुरैशी शत्रुओं के प्रतिनिधि-मंडल को जब सरदारों और दरबारियों की ओर से समर्थन का विश्वास हो गया तो वे लोग शाहे हब्श के दरबार में जाकर फ़रियादी हुए कि जहांपनाह! ये (सहाबा किराम) हमारे क़ैदी हैं जो भाग कर आप के देश में चले आए हैं, उन्हें हमारे हवाले कीजिए।

शाहे हब्श नजाशी पूरी शान व शौकत के साथ तख़्त पर बैठा था, दरबार काहे को था, धरती का स्वर्ग था। ज़रबफ़्त के पर्दे, क़ीमती क़ालीन, चमचमाती साज-सज्जा, झमझम करती हुई भारी भरकम सलीबें, सोने-चांदी के गुलदान, बादशाह तो बादशाह, दरबान, गार्ड, दास और बेरे तक सुनहरी बर्दियां पहने हुए थे। क़ुरैश के प्रतिनिधि मंडल ने मुसलमानों के विरुद्ध जो इस्तिग़ासा पेश किया था, उस के समर्थन में दरबारियों के सिर हिले, शाही रौब के कारण मुख से कुछ न कहा, पर आँखों की चमक बोलने लगी कि क़ुरैशी प्रतिनिधिमंडल जो कुछ कह रहा है, सच कह रहा है। ये मुसलमान वहीं हैं, जो

कुछ ये कुरैश कह रहे हैं। दूसरे देश के भगोड़े क़ैदी हब्श में नहीं रह सकते, वरना हब्श की सरकार पर इल्ज़ाम आएगा, रुसवाई होगी, लोग व्यंग्य करेंगे कि हब्श में देश-द्रोहियों, लुटेरों और भागे हुए क़ैदियों को शरण दी जाती है।

शाहे हब्श ने कुरैशी प्रतिनिधिमंडल से कुछ प्रश्न किए, फिर मुसलमानों से सम्बोधित हुआ, पूछा, क्या कहते हो, इन आरोपों के उत्तर में अपनी सफ़ाई पेश करो। सहाबा किराम (रज़ि०) की ओर से हज़रत जाफ़र तय्यार (रज़ि०) ने अति चित्ताकर्षक ढंग से भाषण दिया। अरब की अज्ञानता का संक्षिप्त विवेचन किया और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की शिक्षाओं पर प्रकाश डाला। जाफ़र इस से पहले किसी बादशाह या शासक के दरबार में न गये थे। यह उनका पहला अवसर था, पर दरबार के रौब और दबदबे से तनिक भी आतंकित न हुए, न ही उन पर इस शान व शौकत का कोई प्रभाव पड़ा। खुदा का सच्चा बन्दा और मुहम्मद (सल्ल०) का यह निष्ठावान दास राज भवन में अति निर्भीकता, पर बड़े शिष्टाचार के साथ अपने उद्देश्य पर भाषण देता रहा।

हज़रत जाफ़र (रज़ि०) के भाषण में निष्ठा थी, सादापन था और सबसे बढ़कर यह कि साहस था और थी उच्चदृष्टि। ऐच-पेच से बातें करना उनको आता ही न था। खुली-खुली दलीलें, स्पष्ट प्रमाण, दो टूक बातें, बिल्कुल इस तरह जैसे दो और दो चार होते हैं। दरबार में एक सन्नाटा छा गया। कुरैशी शत्रु इस भ्रम में थे कि मुसलमान हमारे मुक़ाबले में क्या बोल सकेंगे, हमारी चालें बेकार न जाएंगी। दरबारी लोग हमारा समर्थन कर रहे हैं और सरदारों को हम ने पहले ही गांठ लिया है, मैदान हमारे ही हाथ रहेगा, पर हज़रत जाफ़र (रज़ि०) के भाषण ने उनकी योजनाओं को धूल में मिला दिया। वे महसूस कर रहे थे कि नजाशी उन के वक्तव्य का प्रभाव स्वीकार कर रहा है। जाफ़र (रज़ि०) की बातों में वज़न और जान है। उनके जंचे तुले वाक्य शाहे हब्श के मन में उतरते जा रहे हैं। किस रुचि और ध्यान के साथ बादशाह उन का भाषण सुन रहा है।

इसी बीच हज़रत ईसा (अलै०) का जिक्र भी छिड़ गया। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) ने बादशाह के कहने पर क़ुरआन की आयतों का पाठ किया—

कलामें हक था, जाफ़र की ज़ुबां थी,
मुहम्मद की हिदायत दर्मियां थी।

कुरआन मजीद की इन आयतों में अल्लाह के रब (पालनहार) होने और ईसा बिन मरियम (अलै०) के बन्दा होने का उल्लेख था, जिस से ईसाई धर्म के प्रचलित तथा मन-गढ़ंत 'त्रिवाद' का खंडन होता था। कुरैशी प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों की आंखों में प्रसन्नता की चमक पैदा हो गयी कि नजाशी बादशाह अपने धर्म के इस झुठलाने पर और उसके इस खंडन पर निश्चय ही उत्तेजित हो उठेगा। बस अब कोई घड़ी जाती है कि मुसलमान को या तो क़ैद में डाल दिया जाएगा या शाही गुलाम और रक्षक उन को अपमानित कर दरबार से निकाल देंगे। मुसलमान स्वयं अपने जाल में फंस गये और यह 'सत्यवादिता' उनकी जान के लिए मुसीबत बन गई।

शाहे हब्श के दरबारी भी होंठों में मुस्कराने लगे कि मुसलमान अब शाह के रोष से बच नहीं सकते। जिन आधारों पर ईसाई धर्म स्थापित है, कुरआन की आयतों ने उन्हीं पर चोट की है, इस अपमान को आख़िर नजाशी कैसे सहन कर सकता है। बादशाह के पास सत्ता है, शक्ति है, फांसी के तख़्ते और क़ैदख़ाने की कोठरियां हैं। इन मुट्ठी भर मुसलमानों के समर्थक भी तो नहीं है, उनकी सिफ़ारिश में एक स्वर भी तो नहीं फूटेगा, स्वयं उन की क़ौम के लोग उन की जान के दुश्मन हैं, ऐसे बे-सहारा परदेशियों का मिटा देना क्या कठिन है। अभी हमारे स्वामी, बादशाह सहनशीलता का प्रदर्शन कर रहे हैं, पर जब रोष व्यक्त करेंगे तो प्रलय ही आ जाएगी, जल्लादों की तलवारें बादशाह के संकेत मात्र की प्रतीक्षा में हर समय म्यानों से बाहर रहती हैं।

अपना-अपना भाग्य और अपनी-अपनी क़िस्मत है! सावन की घटाएं चटयल मैदानों और उपजाऊ भू-भागों पर एक ही ढंग से बरसती हैं, पर इस को क्या कीजिए—

दर बाग़ लाला रोयद दर शूर बोमे ख़स।

(बाग़ में लाला उगता है और बंजर धरती पर रुखी घास उगती है।)

प्रकृति की प्रदत्त वस्तुओं से लाभ उठाने के लिए प्राकृतिक योग्यता की बहुत कम आवश्यकता होती है। यही वजह थी कि अबू जह्ल, अबू लहब मक्का में स्वयं रसूल के मुख से कुरआन सुन कर भी प्रभावित न हो सके, पर हब्श के बादशाह को दो-चार आयतों ने ही हिला दिया, वह सत्य स्वीकारने पर तैयार हो गया, उसकी नैसर्गिक क्षमताएं, जो अब तक अंध-विश्वासों की राख में दबी पड़ी थीं, यकायकी उभर आयीं और पथ-भ्रष्टता और गुमराही के पर्दे

क्षण भर में चाक हो गये। नजाशी का मन सिहरा, जैसे किसी परोक्ष शक्ति ने चुटकी में लेकर उस के दिल को दबाया, यहां तक कि सख़्ती नर्मी से बदल गयी। क़ुरआन के प्रभाव ने कुंजी बन कर उसके हृदय के ताले को पलक झपकते खोल दिया। ताले का खुलना था कि सत्य खुल कर सामने आ गया, क़ुरआन की आयत सुनकर नजाशी की आंखों में आंसू आ गये। दरबारी लोग और स्वयं क़ुरैश का प्रतिनिधिमंडल चकित था कि जिन आंखों से रोष तथा क्रोध की चिंगारियां निकलनी चाहिए थीं, उन में आंसू झिलमिला रहे हैं।

हज़रत जाफ़र (रज़ि०) जब क़ुरआन सुना चुके तो नजाशी ने भावुक स्वर में कहा—

'यह वाणी और इंजील एक ही दीप के प्रतिबिम्ब हैं।'

सरदारों, दरबारियों और क़ुरैशी प्रतिनिधिमंडल के सदस्य इस वाक्य को सुनकर अवाक् रह गये। उन पर ओस-सी पड़ गयी। क्या सोच कर आए थे, क्या हो गया? मक्का के क़ुरैश तो इस इन्तिज़ार में थे कि उन का प्रतिनिधिमण्डल मुसलमानों को गिरफ़्तार कर के अपने साथ लाएगा और हम खूब जी भर कर उन पर अन्याय करेंगे, सताएंगे, उन पर जुल्म करेंगे। दूसरे मुसलमानों को अपने भाई-बन्दों की यह हालत देख कर शिक्षा मिलेगी कि ये क़ुरैशी तो धुन के पक्के हैं, हम में से कोई जान बचा कर परदेश में चला जाए, तो भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। बादशाह तक उनसे प्रभावित होते हैं, उन का रौब खाते हैं, ऐसे शत्रुओं से लड़ाई मोल लेकर और उनके विरोधी बन कर हम सफल हो ही नहीं सकते।

पर प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने हब्श से वापस होकर जब वस्तु स्थिति की उन्हें सूचना दी तो उनकी तमन्नाओं के हवाई क़िले पानी के बुलबुलों की तरह टूट गये। शिष्ट मंडल के सदस्यों ने कहा कि भाइयो! हमने अपनी कोशिश में कोताही नहीं की। बादशाहे हब्श के दरबारियों तक को हमने अपना समर्थक बना लिया, पर इस को क्या करें कि जाफ़र के वक्तव्य और फिर क़ुरआन की आयतों ने नजाशी को इतना प्रभावित किया कि वह भरे दरबार में रोने लगा। भाइयो! ये लोग तो जादूगर लगते हैं। दुनिया-जहान में जहां भी ये पहुंचेंगे, लोग इनका प्रभाव लिए बिना नहीं रह सकते। इनके बल को यदि पूरी शक्ति के साथ न कुचला गया तो अरब ही नहीं, सारी दुनिया उन के जाल में फंस जाएगी। □

# एक शुभ आत्मा

मक्का नगर पूरे अरब देश की आस्था का केन्द्र था। तमाम लोग काबे का आदर करते हैं। साल भर में एक बार दूर-दूर के लोग यहां आते और अपनी धार्मिक रीतियों को पूरा कर के चले जाते। क़ुरैशी-शत्रुओं ने टोलियां बना रखी थीं, जिन के सदस्यों का यही काम था कि मक्का से कुछ दूर जा कर विभिन्न मार्गों पर बैठ जाते और आने वालों को बहकाते कि हमारी क़ौम में एक (मुंह में धूल) जादूगर पैदा हो गया। जो अपने को ख़ुदा का नबी और रसूल बताता है। यह व्यक्ति एक नया धर्म लेकर आया है। जो हमारे पैतृक धर्म का हर दृष्टि से विरोधी, बल्कि उसके प्रतिकूल है, तो तुम उस मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह से बचे रहना, न उसके पास जाना और न उसके साथियों से मिलना। इन लोगों के बोलों में ब्ला का प्रभाव है। उनकी बात बड़ी आसानी के साथ दिल में घर कर लेती है और आदमी फिर बस उसी धर्म का होकर रह जाता है। अजी! इस मक्का में ऐसे सिरफिरे लोग मौजूद हैं। जिन्होंने इस्लाम के लिए अपनी धन-सम्पत्ति नातेदारों-रिश्तेदारों और घर-बार तक को छोड़ दिया है। यह लोग पिटते हैं, मार खाते हैं, उपवास करते हैं और कष्ट सहन करते हैं, पर इस धर्म से फिरने का नाम नहीं लेते। तुम खाना काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करने के लिए आए हो, तवाफ़ करो और चले जाओ, नयी-नयी बातों पर कान न धरो।

अज्ञानता और पथ-भ्रष्टता के ये पुतले खुद भी पथ-भ्रष्ट थे : और दूसरों को भी इस सन्मार्ग के स्वीकारने से रोकते थे। सत्य की सत्यता और इस्लाम के विरोध ने उनको अन्धा बहरा और गूंगा बना दिया था। अपनी तरह दूसरों को भी इस गन्दगी और पस्ती में रखना चाहते थे, उनकी विरोधी बातों का लोगों पर अत्याधिक प्रभाव हुआ। क़ुरैशी सरदार और मक्के के 'बड़े' लोगों की बातों को ग्रामीण वासी भला कैसे झुठला सकते थे, पर विरोध और वैर-भाव की इस वार्ता के साथ बाहर वालों के कान मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्ल०) और इस्लाम

के नाम से अवश्य ही भिज्ञ हो जाते। विरोध स्वयं प्रचार का मौन कर्त्तव्य निभा रहा था। उन्हीं के वार स्वयं उन्हीं पर उलट-उलट कर पड़ रहे थे, अपने उपायों के उलटे प्रभावों से वे स्वयं अनभिज्ञ थे, बिजली के शरारों से पानी के धारे फूटने के आप ही आप सामान हो रहे थे।

क़ुरैशियों की इन गुमराह करने वाली योजनाओं का उल्लेख अपूर्ण रह जाएगा, अगर एक प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना का इस विषय में वर्णन न किया गया। इस्लाम के इतिहास की यह घटना हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, इस में शिक्षा भी है, नसीहत भी, याद देहानी भी है, और मुक्ति-मार्ग की निशान-देही भी।

तुफ़ैल बिन उमर दौसी अपने क़बीले का सरदार था। यमन देश के पड़ोसी क्षेत्र पर इस परिवार का अधिकार था और सब लोग तुफ़ैल के घराने का आदर करते थे। वंशगत शालीनता, सांसारिक आदर-प्रतिष्ठा और धन-संपत्ति, तात्पर्य यह कि—

हर चीज़ जिस से चश्मे जहां में हो एतबार!

तुफ़ैल को प्राप्त थी। तुफ़ैल केवल कबीले का सरदार और सत्तासीन व्यक्ति ही नहीं था, बल्कि निजी रूप से भी उस में बहुत-से गुण थे। सूझ-बूझ का मालिक तो था ही, काव्य-साहित्य और भाषा-विज्ञान का भी विशेषज्ञ था, इसलिये उसे सभी की दृष्टि में प्रतिष्ठा और आदर प्राप्त था।

तुफ़ैल जब मक्का आया, तो कुरैशी विरोधियों ने बस्ती से बहुत दूर जा कर उस का स्वागत किया और अति आदर-संमान के साथ उस का सत्कार किया। कुरैश जानते थे कि तुफ़ैल कोई बदवी नहीं है, जो हमारी बातों पर कुछ विचार किये बिना ही उन्हें मान लेगा, वह अति बुद्धिमान तथा सूझ-बूझ वाला है। अच्छे-बुरे में अन्तर करने की क्षमता रखता है। ऐसा व्यक्ति यदि पैग़म्बरे इस्लाम की सेवा में पहुंच गया तो प्रभाव लिये बिना न रहेगा, फिर उसका प्रभाव पूरी क़ौम पर भी पड़ेगा।

इसलिये कुरैश ने तुफ़ैल को शीशे में उतारने के लिए उस का भरपूर सत्कार किया कि इस प्रकार उसके मन में हमारे लिये अपने आप गुंजाइश पैदा हो जायेगी, आदर-सत्कार का बड़ा असर होता है। तुफ़ैल भी कुरैश के आतिथ्य-सत्कार से प्रभावित हुआ। फिर कुरैश ने तुफ़ैल की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तुम यह हो, तुम वह हो, तुम में अमुक-अमुक गुण हैं। क़ौम तुम पर गर्व

करती है। और तुम्हारा विवेक किसी की चिकनी-चुपड़ी बातों का प्रभाव स्वीकार नहीं कर सकता। तुम्हारे निश्चयों और विश्वासों में दृढ़ता पाई जाती है।

क़ुरैश ने जब अनुमान कर लिया कि तुफ़ैल पर इन बातों का जादू चल चुका है और वह उन को अपना मित्र, हितैषी और साथी समझता है, तो सब ने मिल-जुल कर कहा, एक व्यक्ति मुहम्मद नाम का, जो हमारी क़ौम का एक व्यक्ति है, उस से तनिक बचे रहना। उसे जादू आता है, जिस के प्रभाव से वह बाप-बेटे, पति-पत्नी और भाई-भाई में फूट डाल देता है, उसने हमारी क़ौम में बिखराव पैदा कर दिया है। हम नहीं चाहते कि आपकी क़ौम इस बला का शिकार हो जाए, इसलिए हम पूरे ज़ोर के साथ नसीहत करते हैं कि आप न तो स्वयं उस से बात-चीत करें, न उसकी बातें सुनें, और न उस के पास जाएं।

क़ुरैश ने इतने हितैषितापूर्ण ढंग और दर्द भरे स्वर में तुफ़ैल को नसीहत की कि बेचारे को विश्वास हो गया कि ये लोग मेरी भलाई के लिए नसीहत कर रहे हैं। उन की सहानुभूति में निष्ठा और निःस्वार्थ-भाव पाया जाता है। मुझे मुसाफ़िर और बे-ख़बर समझकर तमाम ख़तरों से सूचित किया जा रहा है। ऐसे हितैषियों तथा मित्रों की बात न मानना अति कृतघ्नता तथा मूर्खता लगती है।

तुफ़ैल बिन उमर दौसी के मन में क़ुरैशी शत्रुओं की ये बातें कुछ इस तरह बैठ गयीं कि जब वह ख़ाना काबा जाता, तो कानों को रूई से बन्द कर लेता कि कहीं मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की आवाज़ की भनक न पड़ जाए, तवाफ़ करते वक़्त इधर-उधर न देखता, आंखें बन्द रखने का यत्न करता कि मुहम्मद का अगर सामना हो गया और उनसे निगाहें चार हो गयीं तो क्या ठीक कि (अल्लाह की पनाह) उन का जादू मुझे प्रभावित कर दे। क़ुरैश अनुभव के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं और मुहम्मद के बारे में राय क़ायम की है। क़ुरैश के बड़े लोग और मक्का के सरदार किसी पर बे-वजह तोहमत क्यों जोड़ने लगे?

तुफ़ैल के कई दिन इसी दशा में बीत गये। काबे का तवाफ़ करता, और चला जाता, पर प्रकृति को कुछ और ही मंज़ूर था। तुफ़ैल का भाग्य इसी बिन्दु से बदलने वाला था। एक दिन वह काबे में तवाफ़ के लिए आया तो अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ख़ाना काबा में अल्लाह का कलाम तिलावत कर रहे थे। आज वह कानों को बन्द करने के लिए सावधान हो कर भी न आया था। क़ुरआन की आयतें उसके कानों में पड़ीं, तो उस के मन

में विचित्र भाव जन्मा। तुफ़ैल ने दिल में कहा कि मैं स्वयं काव्य और साहित्य की परख रखता हूं, पर यह कलाम जो मुहम्मद पढ़ रहे हैं, सब से अलग और भिन्न है। मैंने आज तक इतने मीठे और प्रभाव में डूबे हुए बोल नहीं सुने हैं। मेरा बड़ा दुर्भाग्य था कि अब तक ऐसी वाणी को न सुन सका। मैंने अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) से अब तक न मिल कर ग़लती की है। आख़िर उनसे बात-चीत करने में हानि क्या है। उनकी बातें अच्छी होंगी तो सुनूंगा और मानूंगा, कोई ग़लत बात कहेंगे, तो उस पर कान न धरूंगा, आओ तजुर्बा कर के देखूं।

हुज़ूर (सल्ल०) जब नमाज़ पढ़ चुके और पवित्र हुजरे की तरफ़ तशरीफ़ ले जाने लगे, तो तुफ़ैल भी पीछे-पीछे हो लिया। इसके बाद नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हो कर कुरैशियों की भटकाने वाली नसीहतों का कच्चा-चिट्ठा और अपनी सावधानी की बात विस्तार से रखी। तुफ़ैल ने कोई बात छिपाई नहीं। तमाम बातें साफ़-साफ़ कह दीं। यह भी कह दिया कि मैं कई दिन से ख़ाना काबा के तवाफ़ के लिए कानों में रूई रख कर आता हूं, ताकि आप की आवाज़ न सुन सकूं। पर इतनी सावधानी के बाद भी आज आप की आवाज़ मैंने सुन ही ली। मेरी तमन्ना है कि आप अपना पैग़ाम मुझे सुनायें।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने कुरआन की आयतों का पाठ किया। तुफ़ैल एक-एक शब्द पर झूम गया। अल्लाह का कलाम और फिर मुहम्मद (सल्ल०) के मुख से सुनकर तुफ़ैल के मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह बोल पड़ा, 'मैंने आज तक इस शैली की वाणी नहीं सुनी, जो सदाचरण, न्याय तथा संमार्ग से इतनी परिपूर्ण हो। अज्ञानता की घड़ियां ख़त्म हो चुकी थीं। सौभाग्य का युग आरम्भ हो चुका था। सत्य के स्वीकरण में अब किसी विलम्ब और सोच-विचार की गुंजाइश ही कहां थी। तुफ़ैल ने बे-अख़्तियार कलिमा पढ़ा और ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) पर ईमान लाते ही तुफ़ैल दौसी भी अब हज़रत तुफ़ैल हो गये। □

# मदीना में सत्य की ज्योति

आपकी नुबूवत का ग्यारहवां साल है। हज का मौसम है, अरब के कोने-कोने से लोग मक्का चले आ रहे हैं। मक्का की बस्ती में असाधारण चहल-पहल है। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके साथी बाहर से आने वालों को खुदा का पैग़ाम पहुंचाने के लिए हर सम्भव यत्न कर रहे हैं। क़ुरैश के विरोधियों के विरोध, अवरोध और रुकावटों के बाद भी आप अपने कर्त्तव्य को निभाने में लगे हुए हैं।

मक्का शहर से कुछ ही कोस की दूरी पर उक़्बा नामक स्थान है। जहां रात के अंधेरे में यसरिब से आए हुए लोग बातें कर रहे हैं। ये बातें घर-गृहस्थी से सम्बन्धित हैं। यात्रा का वर्णन, मक्के वालों के धार्मिक नेतृत्व और आतिथ्य-सत्कार की कहानियां हैं, औस और ख़ज़रज की वंशीय प्रतिष्ठा का बखान है और यह भी कि अमुक घाटी में मेरा ऊंट गुम हो गया। इस मंज़िल पर पहुंच कर रात बड़ी तकलीफ़ में कटी। अमुक मरुद्यान की खजूरें बड़ी मीठी हैं।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) उन लोगों के पास तशरीफ़ ले गए। यसरिब वालों ने अब तक किसी व्यक्ति का इतना चमकता हुआ मोहक मुख न देखा था। अन्धेरे में ऐसे दिखाई पड़ा जैसे पूनम का चांद बादलों की ओट से निकल आया है। वे लोग समझे कि शायद क़ुरैश का कोई सरदार अपने किसी काम से या हम से कोई ज़रूरी बात कहने के लिए आया है। पर उनकी अन्तरात्मा आप ही आप बोल रही थी कि इस पावन तथा ज्योतिर्मय व्यक्ति का रात के सन्नाटे में यहां आना किसी विशेष घटना का ही सूचक है। निश्चय ही कोई नई बात होने वाली है।

हुज़ूर (सल्ल०) ने यसरिब के इन छः आदमियों के सामने पहले अल्लाह का गुणगान किया और खुदा की महानता और तेजस्विता से लोगों के दिलों को खूब गर्मा दिया। फिर मूर्तियों की निन्दा इस ढंग से की कि सुनने वालों को

मूर्ति-पूजा से घृणा हो जाए। एकेश्वर के पाठ के बाद बहुदेववाद का खंडन हर हाल में अनिवार्य और मानव-मनोविज्ञान के पूर्ण अनुरूप था। इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने सदाचरण और संयम का उपदेश दिया और बुरे कामों के करने से रोका। यसूरिब वाले मौन धारण किए हुए अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की बातें सुनते रहे। उनके मन एक-एक शब्द को स्वीकार करते और उससे प्रभावित होते रहे। सत्य की खोज में वे शायद पहले से ही बेचैन थे और मन-मस्तिष्क में सत्य बात मानने की पूरी-पूरी क्षमता मौजूद थी। बस यों समझिए कि ज़मीन तैयार थी, उसमें बीज डालने भर की देर थी।

रात का सन्नाटा, अंधेरा, मक्के की पहाड़ियों की तलहटी, अनजाने लोगों से भेंट, ऐसी स्थिति में सन्मार्ग की शिक्षा देने के बाद अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने क़ुरआन की आयतें उन लोगों को सुनाईं। सारा वातावरण झूम उठा। चारों ओर मस्ती जैसी छा गयी और ये तो फिर इन्सान थे। इनके दिलों पर जो भी प्रभाव पड़ा हो वह थोड़ा था। लगा अल्लाह के कलाम ने इनके दिलों में विश्वास और ईमान के दीप जला दिए हैं। भटके हुए लोगों को अप्रत्याशित रूप से बिना किसी विशेष यत्न के सन्मार्ग मिल गया था।

यसूरिब के ये छः लोग अपनी क़ौम की तरह ही मूर्ति-पूजा किया करते थे और इस बुराई में मक्के वालों से किसी तरह भी पीछे न थे। उनके चरणों में नतमस्तक होना उनकी दृष्टि में मुक्ति का कारण था। पर उन्होंने यसूरिब के पड़ोसी यहूदियों के मुख से बार-बार सुना था कि अति निकट भविष्य में ही एक नबी प्रकट होने वाले हैं। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के ज्योतिर्मय मुखड़े को देखकर और आपकी बातें सुनकर उन लोगों को विश्वास हो गया कि जिस नबी के आने के लिए हज़ारों वर्ष से भविष्य-वाणियां होती चली आ रही हैं, वह यही है। इस विचार ने विश्वास का रूप धारण कर लिया और वे सब के सब ईमान ले आए। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के कुछ क्षणों के प्रशिक्षण ने उन में इस्लाम की रूह, एकेश्वरवाद का रस, ईमान की मिठास और सदाचरण की भावना को जगा दिया। अब जो मक्के से ये अपने घरों को लौटे तो इनमें का हर व्यक्ति अल्लाह के धर्म का प्रचारक, ख़ुदा के सन्देश का वाहक, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के कथनों का आवाहक था।

यसूरिब के बहुत से लोग हज करने के लिए मक्का आए थे और बाहर से हर दिन यसूरिब में यात्री आते-जाते रहते थे। पर इन छः मुसलमानों के चेहरों

को देखकर लोग कहने लगे कि ये तो मक्के से बहुत कुछ बदल कर आये हैं। इनकी एक-एक अदा, बोल-चाल और उठने-बैठने तक में एक विशेष परिवर्तन पाया जाता है। जीवन का इतनी जल्द बदल जाना अत्याधिक आश्चर्य में डाल देने वाला है।

इन भाग्यवानों ने यस्रिब पहुंच कर हर मिलने-जुलने वाले, अपने-पराये, पढ़े-लिखे और अपढ़, ग्रामीण तथा शहरी, सभी से कहा कि भाइयो और दोस्तो! वह नबी जिसकी सम्पूर्ण जगत को प्रतीक्षा थी और जिसके आने की ख़बर हम सदा से सुनते आए हैं, वह प्रकट हो चुका है। हम उस पावन नबी का दर्शन करके आए हैं। उस का कलाम अपने कानों से सुना है। उस नबी ने ज़िन्दा रहने वाले खुदा तक हमें पहुंचा दिया है। अब हमारी दृष्टि में सांसारिक जीवन और मृत्यु का कोई मूल्य नहीं।

यस्रिब में अन्धेरा था, पर इन छः सितारों के उदय ने सन्मार्ग ज्योति प्रकाशित की। जो पूंजी उन्हें स्वयं को मिली थी उसे लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने जद्दोजेहद शुरू कर दी। मक्का से वापसी के बाद वे एक क्षण भी चैन से न बैठे। इस्लाम की धुन अपना काम किए जा रही थी। और ईमान का मोह बाज़ारों और गलियों में उनको लिए-लिए फिर रहा था, जहां वे लोगों को यह शुभ-सूचना देते कि मक्का में सन्मार्ग और सौभाग्य का अन्तिम और सर्वाधिक रोशन सूर्य उदित हो चुका है, अब हर जगह से अंधेरे को चला जाना है। लोगो! बुतपरस्ती सबसे बड़ी लानत है। हम अब तक बड़े अन्धेरे में थे, न चांद-सूर्य किसी की ज़रूरत पूरी कर सकते हैं और न लात व हुवल मुसीबत के मारों की फ़रियाद सुन सकते हैं, ये सब अज्ञानता के ढकोसले और बाप-दादा की रीति-रिवाज और अंधविश्वास हैं, पूजने के योग्य तो बस खुदा और एक ही खुदा है। इंसान का माथा तो बस उसी के आगे झुकना चाहिए। मानव प्रतिष्ठा का मानदंड तो सदाचरण और संयम है। अल्लाह के रसूल का यही पैग़ाम और आप की शिक्षाओं का यही सार है।

इस्लाम के इन उत्साही प्रचारकों के प्रचार का प्रभाव यह हुआ कि यस्रिब के एक-एक घर में हुज़ूर (सल्ल०) की चर्चा होने लगी। इन छः मुसलमानों के बदले हुए जीवन को देख कर यस्रिब निवासी कहते कि भाइयो! ये लोग इस्लाम लाने के बाद कुछ से कुछ हो गये हैं, बुराइयों के पास तक नहीं फटकते, हर क्षण भलाई और अच्छाई, पवित्रता और शालीनता का इन्हें ध्यान रहता है। जिस

धर्म और जिस पैग़म्बर की शिक्षाओं ने चरित्र व आचरण को बदल दिया, उसमें निश्चय ही सच्चाई पायी जानी चाहिए। तमन्ना और शौक़ की दबी हुई चिनगारियां बहुतों के दिलों को गरमाने लगीं, एक खुदा और सच्चे आचरण की बातें सुन-सुन कर शुभ आत्माएं रस-विभोर होने लगीं।

एक वर्ष बाद अर्थात् नुबूवत के १२ वर्ष बीतने के बाद यसूरिब के १२ व्यक्ति मक्का आए। ये लोग घरों से यह निश्चय करके चले थे कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होकर आप की शिक्षा और आप के धर्म की बुनियादी बातें अपने कानों से सुनेंगे, आप की गतिविधियों, चाल-ढाल, बात-चीत और आप के साथियों के हालात से अन्दाज़ा करेंगे कि क्या यह व्यक्ति सच में अनुकरणीय है। और उसके आज्ञापालन का फंदा हमें अपनी गरदनों में डाल लेना चाहिए? सत्य की खोज, सच्चाई की प्यास, ईमान व हिदायत की तलब उन्हें मक्का खींच लायी। धर्म और विश्वास का मामला था, वे ख़ूब ठोंक-बजा कर और देख भाल कर फ़ैसला करना चाहते थे।

अल्लाह के रसूल की सेवा में यसूरिब के ये बारह प्रतिनिधि उपस्थित हुए। हुज़ूर (सल्ल०) ने खुदा का पैग़ाम उन तक पहुंचाया, नेकी और सदाचरण की उन्हें शिक्षा दी, क़ुरआन की आयतें उनके लिए भी क्रांति का उद्घोष और सन्मार्ग का माध्यम बन गयीं। प्यारे नबी (सल्ल०) के साथियों (रज़ि०) के पाक-साफ़ और निष्कलंक जीवन को देखकर और विश्वास हो गया कि यह धर्म एक ही ताव में खोटे को खरा और पीतल को कुन्दन बना देता है। सब ने एक साथ मिल कर अल्लाह के एक होने, उस के स्वामी, शासक और पालनकर्त्ता होने की और मुहम्मद (सल्ल०) के सच्चे नबी होने की गवाही दी। इस्लाम लाते ही उनकी भी काया पलट हो गयी। वे इस परिवर्तन का अनुभव स्वयं कर रहे थे। दिलों पर कुफ़्र और गुमराही के पड़े हुए पर्दे यकायकी उठ गये। हर व्यक्ति एक-दूसरे को मुबारकबाद देता, हर्ष-विह्वलता ने उन के चेहरे को लाल-गुलाल कर दिया था, वे अपने भाग्यवान होने पर फूले नहीं समा रहे थे। कुछ दिन मक्का में रुके रहने के बाद ये लोग जब यसूरिब (मदीना) जाने लगे तो अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने हज़रत मुसअब बिन उमैर (रज़ि०) को शिक्षा-दीक्षा के उद्देश्य से उन के साथ कर दिया। उमैर के भाग्यवान बेटे मुसअब बड़े लाड़-प्यार से पले थे। घर में धन-दौलत का बाहुल्य था। मां-बाप ने उनको बड़े लाड़-प्यार से पाला था, सुख-वैभव की

समस्त सामग्रियां उन्हें प्राप्त थीं। मुस्अब का जीवन वैभवपूर्ण था, राहत व आराम, ठाठ-बाट और शान व शौकत! मुस्अब रेशमी पहनावा पहन कर जब घोड़े पर निकलते तो सवारी के आगे-पीछे नौकर-चाकर चला करते और 'हटो-बचो' की आवाज़ें सुनकर लोग समझ जाते कि मुस्अब सवारी पर जा रहे हैं।

पर इस्लाम ने मुस्अब (रज़ि०) का जीवन बदल कर रख दिया। इस्लाम में इस ठाट-बाट और विलासी जीवन की कहां गुंजाइश थी? यहां तो सादगी, पवित्रता और सदाचरण का वातावरण था, जिस में पहुंच कर दिलों की हालत बदल जाती थी। इस्लाम का नशा और तौहीद की मस्ती किसी दूसरी ओर मन व मस्तिष्क को आकृष्ट ही नहीं होने देती थी। वहां दर व दीवार और घर-द्वार की साज-सज्जा से बढ़ कर अन्तर की पावनता अभीष्ट थी। मुस्अब बिन उमैर, जिनका शरीर रेशमी कपड़ों में सुसज्जित रहता था, और जिनके मूल्यवान तक्मे जगमगाते रहते थे, अब मुसलमान होने के बाद पैबन्दों का कम्बल पहनते और तक्मों की जगह बबूल के कांटों से कम्बल को अटका लेते। मुस्अब (रज़ि०) को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की संगति ने निखार कर कुन्दन बना दिया, सत्य प्रचार का उन्हें विशेष ढब प्राप्त था। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की चयन-दृष्टि इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के लिए उन्हीं पर पड़ी। वह बिल्कुल नयी जगह अल्लाह का पैग़ाम ले कर जा रहे थे, जहां नव मुस्लिमों की तरबियत के साथ, ग़ैर-मुस्लिमों पर भी सत्य स्पष्ट करना था, दोहरी-दोहरी ज़िम्मेदारियां मुस्अब (रज़ि०) से सम्बन्धित थीं, इतने महान कार्य को करने के लिए वह हर समय अपने अल्लाह से समर्थन और सहायता की दुआ करते रहते।

छः वे लोग जिन को पहले इस्लाम का सौभाग्य प्राप्त हुआ और बारह यह नये-नये मुसलमान, इस प्रकार अब अठारह व्यक्ति यस्रिब में मुसलमान थे और हज़रत मुस्अब (रज़ि०) ने इस संख्या में एक की और वृद्धि कर दी। यस्रिब में चर्चाएं होने लगीं कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने एक साथी को हमारे नगर में प्रचार के लिए भेजा है, चलो, उनसे चल कर मिलें, उनके द्वारा इस्लाम के बारे में ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त हो सकेगी। लोग मुस्अब (रज़ि०) से आकर मिलते और इस्लाम के बारे में प्रश्न रखते। हज़रत मुस्अब (रज़ि०) स्वयं भी गलियों, बाज़ारों और घरों में जा कर इस्लाम का

प्रचार करते। मक्का की तरह मदीना बंजर और अनुपजाऊ न था, यहां की धरती में सन्मार्ग स्वीकारने की क्षमता मौजूद थी। हज़रत मुसअब (रज़ि०) की शिक्षा-दीक्षा ने बहुत-से दिलों को ईमान के नूर से जगमगा दिया और उस की संख्या में वृद्धि होने लगी। जो व्यक्ति मुसलमान होता, वह स्वयं अपनी जगह इस्लाम का उदघोषक और प्रचारक बन जाता। एक दीप से दूसरा दीप जलता और एक दिल का दूसरे दिल पर प्रभाव पड़ता। जो लोग ईमान की मिठास और इस्लाम के स्वाद से परिचित होते, वे पछताते कि हाए! हम अब तक बड़ी बे-ख़बरी और अंधेरे में रहे, यह जीवन खेल-तमाशे और बेकार की बातों में गुज़रा, काम के जीवन का आरम्भ तो अब हुआ है। काश! अब से बहुत पहले इस दौलत को हासिल करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता।

नाला अज़ बहरे रिहाई न कुनद मुर्गे असीर,
ख़ुरद अफ़सोस ज़माने कि गिरफ़्तार न बूद।

(क़ैदी चिड़िया मुक्त होने के लिए चीत्कार नहीं करती, वह तो उस ज़माने पर भी दुखी होती है, जब वह गिरफ़्तार नहीं थी।)

मदीने में हज़रत मुसअब (रज़ि०) पहुंचे, तो असद बिन ज़ुरारा ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के इस दूत का आतिथ्य-सत्कार किया। असद स्वयं भी सत्य-प्रचार में आगे-आगे रहते थे। असद के घर में मुसलमानों का जमाव होता और सत्य को फैलाने के लिए यथोचित प्रस्तावों पर सोच-विचार किया जाता। इन तमाम लोगों को यही धुन थी कि मदीना के किसी एक घर में भी कुफ़्र और शिर्क का नाम व निशान बाक़ी न रहे, गुमराही और पथ-भ्रष्टता के बादल छंटकर, हिदायत और सन्मार्ग का उजाला फैले। इन पवित्र आत्माओं ने इस काम के लिए अपना सब कुछ लगा दिया था। उठते-बैठते, खाते-पीते और एकान्त में हों या सभा में, बस यही ध्यान रहता कि इस्लाम फैले और अज्ञानता-युग समाप्त हो जाए। ऐसी धुन और ऐसी निष्ठापूर्ण कोशिशें भला कैसे बेकार जा सकती थीं! इस्लाम तेज़ी के साथ यसरिब में फैलने लगा।

बनी अब्दुल अशहल और बनी ज़फ़र यसरिब के प्रतिष्ठावान क़बीले थे, जो अभी तक ईमान की दौलत से महरूम थे। एक दिन असद बिन ज़ुरारा (रज़ि०) अपने साथ मुसअब (रज़ि०) और कुछ दूसरे मुसलमानों को लेकर मर्क़ के कुएं पर पहुंचे और वहां इस बात पर विचार करने लगे कि इन क़बीलों में सत्य-प्रचार के लिए क्या उपाय किए जाएं। हर व्यक्ति ने अपने-अपने मत

व्यक्त किए कि यह तरीक़ा उचित है, इस ढंग से प्रचार-कार्य आरंभ होना चाहिए, सन्मार्ग-सन्देश की पहल इस प्रकार हो, इन प्रस्तावों में सत्यता, निष्ठा, अल्लाह पर पूरा भरोसा और विश्वास और धैर्य की झलक थी। यह कोई राजनीतिक सम्मेलन न था, यहां खुदा के नेक बन्दे अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के फ़िदाई दास जमा थे, ज़िन के नज़दीक ईमान और इस्लाम संसार के हर लाभ से मूल्यवान और उच्चतर था।

साद बिन मुआज़ और उसैद बिन हुज़ैर (रज़ि०) इन दोनों क़बीलों के सरदार थे। इन्होंने अभी तक इस्लाम के दामन में पनाह न ली थी। इन दोनों तक यह ख़बर किसी ने पहुंचा दी कि मुसलमान तुम्हारे क़बीलों में इस्लाम फैलाने के लिए मश्विरा कर रहे हैं। और मश्विरे के बाद जब किसी निष्कर्ष पर वे पहुंच जायेंगे तो बिना किसी विलम्ब और संकोच के उस पर अमल शुरू कर देंगे। ये मुसलमान अपने निश्चयों में बड़े दृढ़ हैं, कोई अवरोध, कोई विरोध उनके उत्साह को थाम नहीं सकता। उनकी बातों में न जाने क्या प्रभाव है कि जिस को सन्देश सुनाते हैं, वह उन के रंग में रंग जाता है। अपने क़बीलों को किसी तरह इनसे दूर रखो, वरना ये लोग उनमें पहुंच गये, तो फिर उनकी शिक्षाओं के प्रभाव का तोड़ कठिन हो जायगा। उपद्रव (खुदा की पनाह!) के सर उठाने से पहले दबा देना बुद्धिमानों की रीति रही है। ऐसे अवसरों पर तनिक-सी भी ढील देने से काम बिगड़ जाता है।

ऐसी सूचना मिलते ही साद बिन मुआज़ क्रोधित हो उठे। उन्होंने उसैद से कहा कि उसैद! तुम किस ग़फ़लत और बे-ख़बरी में पड़े हुए हो, यह असद और मुसअब दोनों मिल-जुलकर स्वयं हमारे घरानों के ना-समझ लोगों को बहकाने लगे हैं और यह उपद्रव हमारे लोगों के द्वारों तक पहुंच गया है। तुम जाओ और उन से जा कर सख़्ती से कहो कि हमारे मुहल्ले में अब दोबारा क़दम रखा तो अच्छा न होगा। उसैद! मैं स्वयं ये बातें जा कर उन लोगों से करता, पर असद मेरी ख़ाला का लड़का है, इसलिए तुम्हें भेज रहा हूं।

उसैद बिन हुज़ैर भी क्रोधाग्नि में जल उठा कि ये मुसलमान अपने जाल को स्वयं हमारे घरों में फैला रहे हैं। साद बिन मुआज़ के भाषण ने उसे और गरमा दिया। उसैद ने अपने अस्त्र साथ लिए और हर विरोध का मुक़ाबला करने के लिए तैयार होकर चला। पारिवारिक पक्षपात और अज्ञानतापूर्ण विद्वेष पूरे जोश में था। उसैद इस संकल्प के साथ चला था कि मुसलमानों ने कोई

सख़्त-सुस्त बात कही, तो नेज़े और तलवार से उसका जवाब दूंगा, पहल मेरी ओर से होगी, फिर सारा क़बीला मेरे समर्थन में उठ खड़ा होगा और इस तरह मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध छिड़ जाएगा। मुसलमानों की संख्या भी बहुत थोड़ी है, हमारे क़बीले की देखा देखी दूसरे क़बीले भी मैदान में आ जाएंगे और फिर इस नए धर्म का यसूरिब में क़दम जमना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव हो जाएगा।

उसैद को स-शस्त्र आता देख कर असद बिन ज़ुरारा ने मुसअब बिन उमैर से कहा कि देखिए! इस क़बीले का सरदार आ रहा है। अल्लाह करे, वह आप की बात मान ले और हिदायत का पैग़ाम स्वीकार कर ले। मुसअब (रज़ि०) ने जवाब दिया कि अगर यह व्यक्ति बैठ गया, तो मैं उस से निश्चय ही बात-चीत करूंगा। अभी ये बातें हो रही थीं कि उसैद लम्बी-लम्बी डगें भरता हुआ वहां जा पहंचा। उसने खड़े-खड़े मुसलमानों को खूब गालियां सुनायीं कि तुम हमारे क़बीले के मूर्खों और ना-समझ लोगों को बहकाते हो। देखो, मैं तुम्हें सचेत करता हूं कि इन हरकतों से बाज़ आ जाओ, वरना तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा।

मुसअब (रज़ि०) धैर्य के साथ उसैद के अपशब्दों को सुनते रहे, उन को इस बात का इन्तिज़ार था कि यह अपनी बातें समाप्त कर लें तो मैं कुछ कहूं। ऐसे क्रोधाग्नि में जल रहे व्यक्ति की बातों के बीच में बोल पड़ना भी ठीक नहीं। टोकने से तो उसका क्रोध और भड़क उठेगा। क्रोध की स्थिति में नेकी की बात और उलटा असर डालती है।

उसैद गाली-गलौज देकर जब मन की भड़ास निकाल चुका तो हज़रत मुसअब (रज़ि०) ने अति गम्भीर मुद्रा में नम्रतापूर्वक कहा कि काश! आप बैठ कर हमारी बात सुन लें। अगर आप को हमारी बातें पसन्द आएं तो स्वीकार करें और ना-पसन्द हों तो उन पर कदापि ध्यान न दें। उसैद पर हज़रत मुसअब (रज़ि०) के इस मृदु स्वर का बड़ा प्रभाव हुआ कि जिस व्यक्ति को गालियां दे रहा था, उसने एक गाली का भी मुझे उत्तर नहीं दिया। उसके माथे पर शिकन तक नहीं आयी। उसके स्वर में कितनी मृदुता तथा नम्रता है, लाओ उस की बातें सुन लूं। बात सुनने में क्या हरज है। हर व्यक्ति दिन-रात में बीसियों आदमियों की ज़ुबानी बात-चीत सुनता रहता है। देखूं तो सही कि यह मुसअब आख़िर क्या कहता है।

उसैद अपने हथियारों सहित धरती पर बैठ गया। उसके कान मुस्अब (रज़ि०) की बातों की प्रतीक्षा में थे। यह उत्सुकता और इन्तिज़ार स्वयं सौभाग्य-सफलता की ओर दीख न पड़ने वाली उंगली से इशारा कर रहा था। हज़रत मुस्अब (रज़ि०) ने अति मन-मोहक शैली में उसैद को बताया कि इस्लाम क्या है। उसैद बड़े ध्यान के साथ एक-एक शब्द सुनता रहा। इस्लाम की एक-एक बात सुन कर भी उसे घबराहट नहीं हुई, हालाँकि नयी बातों से शुरू में तबीयत में चाव नहीं पैदा होता, पर उसैद के लिए तो सौभाग्य बन चुका था।

इस्लाम की सच्चाई जब मुस्अब (रज़ि०) बयान कर चुके, तो इस प्रभाव को और सुदृढ़ बनाने के लिये क़ुरआन की आयतें पढ़ कर सुनायीं। उसैद ने ख़ामोशी के साथ क़ुरआन सुना और बदले हुए स्वर में बोले–

'यह तो बताइये कि जब कोई आप के धर्म में आना चाहता है, तो आप क्या करते हैं?'

हज़रत मुस्अब (रज़ि०) ने उत्तर दिया–

'हम ऐसे आदमी को नहला कर पाक कपड़े पहनाते हैं और फिर कलिमा-ए-शहादत पढ़ा देते हैं।'

उसैद हथियारों को धरती पर फेंक कर तेज़ी के साथ उठा, कपड़े धोने और नहाने लगा। मुस्अब, असद (रज़ि०) और दूसरे मुसलमान उसैद की इस तैयारी को देखकर ख़ुश हो रहे थे कि जिस मुख से अभी-अभी गालियां निकल रही थीं, अब अल्लाह की बढ़ाई और मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत की गवाही दी जाएगी।

उसैद नहा-धोकर और साफ़ कपड़े बदल कर मुस्अब (रज़ि०) के सामने आया और अतिरुचि के साथ कलिमा-ए-शहादत पढ़ा। उसैद, जो इस्लाम-प्रचार को रोकने के लिए यहां आया था, अब स्वयं मुसलमान बन कर रवाना हुआ। साद बिन मुआज़ को बड़ी बे-चैनी के साथ उसैद का इन्तिज़ार था, कि न जाने, मुसलमानों की ओर से क्या उत्तर मिलता है और फिर क्या स्थिति बनती है। उसैद की वापसी में देर हो जाने से चिन्ता भी होने लगी, भांति-भांति के विचार मन में पैदा होने लगे, सोचता, बातचीत बढ़ते-बढ़ते कहीं हाथापाई और लड़ाई-झगड़े की नौबत न आ गयी हो। उसैद तंहा गया है, वे इतने बहुत-से लोग हैं, बिल्कुल सम्भव है, कोई अप्रिय घटना घटित हुई हो।

साद बिन मुआज़ ने दूर ही से उसैद को देख कर कहा, यह वह चेहरा नहीं है, जो यहां से जाते समय था। उसैद सिर से पैर तक बदल गये थे, मन की शुद्धता तथा अन्तरात्मा की पावनता चेहरे से झलक रही थी। उन की त्यौरियां बता रही थीं कि उसैद वह नहीं रहे, जो अब से कुछ घड़ी पहले थे। ईमान का नूर आंखों से चमक रहा था और आस्था और विश्वास के कमल चेहरे पर खिल रहे थे। हज़रत उसैद (रज़ि०) के हाथ-पांव, आखें, ठोढ़ी, माथा, तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण देह वही था, पर मन बदल गया था और मन के बदलते ही जीवन और से और हो गया, जीवन में सम्पूर्ण कार्यशीलता मन की है, उस के सांचे में जीवन ढलता और रूप पकड़ता है।

हज़रत मुसअब (रज़ि) ने फिर साद बिन मुआज़ पर इस्लाम पेश किया। साद ने कुछ प्रश्न किए, थोड़ी देर वार्त्तालाप और प्रश्न-उत्तर होते रहे। मुसअब ने हर प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर दिया, इस्लाम की वास्तविकता खूब खोल कर बयान की। वह चाहते थे कि प्रश्नकर्त्ता के मन में इस्लाम की वास्तविकता पूरी तरह उतर जाए, किसी प्रकार का भ्रम और सन्देह बाक़ी न रहे। केवल सार-संक्षेप से काम न चलेगा, साद विस्तार में जानना चाहते थे। हज़रत मुसअब (रज़ि०) के उत्तरों ने साद बिन मुआज़ को सन्तुष्ट कर दिया, वास्तविकता मालूम हो गयी, सत्य स्पष्ट हो गया, सच्चाई सामने आ गयी, उन्हें विश्वास हो गया कि कल्याण तथा सफलता का सीधा रास्ता इस्लाम और केवल इस्लाम है। अब तक स्वयं मैं और मेरा क़बीला गुमराही की भूल-भुलैयों में टक्करें मारता रहा। अज्ञानता और नासमझी का जीवन अब बदल देना चाहिए। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के आज्ञापालन के बिना खुदा तक पहुंचना असम्भव है कि यही सत्ता सत्य-केंद्र है।

साद बिन मुआज़ ख़ुशी-ख़ुशी उठे और कलिमा पढ़ कर मुसलमान हो गये। इस्लाम लाने के बाद वह अपने क़बीले में फिर पहुंचे और अति उत्साह तथा गतिशीलता के साथ प्रचार किया। क़बीले के लोग साद का आदर करते थे, उनकी सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता भी सर्वमान्य थी। साद (रज़ि०) के प्रभाव से बनी अब्दुल अशहल के तमाम लोग एक दिन में मुसलमान हो गये।

हज़रत साद बिन मुआज़ (रज़ि०) के इस्लाम लाने से यसूरिब में मुसलमानों को प्रबल शक्ति मिल गयी और प्रचार-प्रसार का कार्य तीव्र गति से शुरू हो गया। मदीना के लोग न जाने कब से हिदायत के इंतिज़ार में तैयार बैठे

थे, सत्य की आवाज़ कान में पहुंची और खुदा की बन्दगी और मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की रिसालत का इक़रार कर के इस्लाम के जांनिसार फ़िदाई बन गये। उन के स्वभाव, प्रकृति और तबियत की तेज़ी को इस्लामी शिक्षाओं से विशेष लगाव था। तनिक-सी रगड़ में दिलों की ज़ंग छंट जाती। मक्का वालों की हठ-वादिता उन्होंने न पायी थी। वह सत्य प्रिय थे, सच्चाई खुल कर सामने आती तो उस को मानने में संकोच न करते। भाग्यवान आत्माओं की यही रीति रही है कि सत्य स्वीकारने में वे बहानेबाज़ियों से काम नहीं लेतीं।

इसके बाद फिर दोबारा यस्रिब के लोग हज के लिये मक्का आये और अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की सेवा में उपस्थित हुये। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनके सामने इस्लाम का संदेश रखा, कुरआन सुनाया, नेकी पर उभारा, बुराइयों की निन्दा की। अब ये लोग जो मक्का से यस्रिब वापस लौटे, तो सारे नगर में इस्लाम का स्वर गुंजरित कर दिया। मर्द तो मर्द, औरतें तक अल्लाह का संदेश एक दूसरे को पहुंचातीं। बाज़ारों, बैठकों, चरागाहों और कस्बों में इस्लाम ही की चर्चाएं होतीं, यहां तक कि यस्रिब में पूरे ज़ोर व शोर के साथ इस्लाम फैलता चला गया। कबीले के कबीले और परिवार के परिवार इस्लाम की शरण में आते चले गये और सत्य-प्रचार के लिए एक-एक यस्रिबी मुसलमान मुस्अब बिन उमैर बन गया। □

# सत्यप्रियता के अपराध में

क़ुरैशी शत्रु देख रहे थे और महसूस कर रहे थे कि इस्लाम उन के विरोधों के बावजूद फैलता जा रहा है। लोग बाहर से आते हैं और अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) की बातें सुन कर प्रभावित हो जाते हैं। क़ुरआन के ज्ञानपूर्ण, सादेपन और उसकी अलंकृत भाषा ने उनकी प्रभावपूर्ण काव्य भाषा को मूक बना दिया है। उन्होंने एक बार फिर इकट्ठा हो कर जलसा किया कि हज के मौसम में क़बीले आते हैं। उन्हें जैसे बने, अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के पास जाने, उनकी बातें सुनने और मुसलमानों से मिलने-जुलने से रोकना चाहिये। अब तक हमारी बातें बाहर के लोगों को अधिक प्रभावित नहीं कर सकीं, यस्‌रिब के कितने ही लोग बड़े और प्रतिष्ठित जन मुहम्मद (सल्ल०) से मिले और फिर उनके ही होकर रहे गये। हमें चाहिये कि अब्दुल्लाह के बेटे पर कोई ऐसा अरोप थोप दें, जिसे सुन कर लोग उन से उदासीन हो जायें, बल्कि घृणा करने लगें—

'हमें प्रचारित कर देना चाहिये कि अब्दुल्लाह का बेटा मुहम्मद काहिन है,' सलाहकार परिषद के कुछ सदस्यों ने कहा।

'मैंने बहुत से काहिनों की बातें सुनी हैं, लेकिन मुहम्मद जो कुछ कहता है, वह काहिनों की बातों से बिल्कुल भिन्न है। जब हमारे इस आरोप पर लोग मुहम्मद की वाणी को परखेंगे और उसमें काहिनों की वाणी जैसी विशेषता न पायेंगे तो हम झूठे और निराधार आरोप लगाने वाले घोषित कर दिये जायेंगे,' बूढ़े वलीद बिन मुग़ीरह ने उत्तर दिया।

'तो फिर हम यह कहेंगे कि यह व्यक्ति मजनूं है' (अर्थात इस पर भूतों-प्रेतों का साया है) —मज्मे से आवाज़ आयी।

'यह आरोप भी निराधार सिद्ध होगा। मुहम्मद में जुनून का लेश-मात्र भी नहीं पाया जाता', वलीद बोला।

'अच्छा तो साहब! हम लोगों से कहेंगे, मुहम्मद कवि हैं,' कुरैश ने कहा।

'काव्य और उसकी विधाओं को हम अरबों से बेहतर कोई नहीं जानता। मुहम्मद की वाणी काव्य से किसी प्रकार भी मेल नहीं खाती', वलीद क़बा का तक्मा खोलते हुये बोला।

'आप हमारी एक-एक बात की काट कर रहे हैं। लीजिए, आख़िरी बात सुनिए। हम कहेंगे कि मुहम्मद जादूगर है। उसकी वाणी में जादू, उसकी आवाज़ में सहर और स्वयं उसका रूप जादू भरी मोहकता लिये हुये है कि व्यक्ति उसका कलिमा पढ़ने पर विवश हो जाता है,' कुछ लोगों ने कहा।

'यह आरोप भी झूठा और निराधार सिद्ध होगा। हमें कोई ऐसा दोष मुहम्मद पर आरोपित करना चाहिये जो ठीक निशाने पर बैठे और लोगों की दृष्टि में हमारी प्रतिष्ठा भी बनी रहे। अरे भाइयो! जादूगर तो सामान्यतः गंदे और ना-पाक रहा करते हैं और मुहम्मद तो पाक-साफ़ रहते हैं और फिर उनके मोहक रूप में जो पावनता तथा ज्योति पायी जाती है,उसे तुम देखने वालों की आंखों से आख़िर कैसे छिपा सकोगे,' अनुभवी और दुनिया देखे हुये वलीद के उत्तर पर कुरैश के सरदार और मक्का के 'बड़े' बग़लें झांकने लगे। उन से कोई उचित उत्तर न बन पड़ा।

असत्य की विशेषता है कि सत्य को सफल देख कर वह ज़ुल्म तथा ज़्यादती पर उतर आता है। सुदृढ़ तर्कों को सुन कर और स्पष्ट निशानियों को देख कर अज्ञानता में और तीव्रता बढ़ जाती है। कुरैशी शत्रु भी पूरी शक्ति के साथ अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व आलिही व सल्लम) और आपके साथियों के मुक़ाबले में आ गये। ज़ुल्म व सितम के हर संभव अस्त्र को इन भाग्यहीनों ने सत्य के पुजारियों के विरुद्ध प्रयोग किया। जितनी बुराई सच्चाई के मिटाने के लिये कर सकते थे, उस में उन्होंने कोई कमी नहीं की। उम्मुलक़ुरा (मक्का) का एक-एक मुहल्ला पैग़म्बरे इस्लाम और आप के साथियों के विरुद्ध संघर्ष का मोर्चा बना हुआ था।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) इन बुद्धि के अंधों और दिल के खोटों को अंधेरे से निकाल कर रोशनी में लाना चाहते थे और ये आग्रह करते थे कि नहीं, उजाले में नहीं आयेंगे, अपने बाप-दादों के चिन्हों को हम न मिटने देंगे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) फ़रमाते थे कि एक ख़ुदा की बन्दगी करो, बुतों की पूजा छोड़ दो। कुरैश कहते कि वाह! हम इस व्यक्ति की बातों में आ कर

क्या अपने उपास्यों को छोड़ दें, जो सदियों से हमारी क़ौम के खुदा रहे हैं और जिन से हमें हर प्रकार का लाभ प्राप्त होता रहा है, यह कैसे हो सकता है? क्या लात को हम अपमानित करें, हुबल से नाता तोड़ लें, उज़्ज़ा की चौखट पर एक माथा भी न झुका करे और नस्र अकेला रह जाये? जब तक हमारी जान में जान है, मुहम्मद की आशाओं को हम पूरा न होने देंगे।

साक्षात दया हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) उनके हाथों से विष के प्याले को छीन कर अमृत के जाम दे रहे थे, पर वे भाग्यहीन लड़ते थे, मरने-मारने के लिए तैयार थे कि हमें तुम्हारा अमृत नहीं चाहिये। हमारे बाप-दादा जिस विष को पीते चले आये हैं, हम भी उसी को पियेंगे। यह हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। ये मूर्ख और अन्यायी कुरैश फूलों का उत्तर पत्थरों से दे रहे थे—अदूरदर्शिता और कृतघ्नता के ऐसे करुण, दृश्य बहुत कम देखने को मिलते हैं।

रसूल (सल्ल०) के साथियों (रज़ि०) पर कुरैश ने जिस निर्ममता, कठोरता के साथ ज़ुल्म के पहाड़ तोड़े, उसे सोचकर आज भी मानवता कांप-कांप जाती है। घर वालों ने बहुत-से मुसलमानों का बहिष्कार कर दिया। खाना-पीना, मिलना-जुलना, उठना-बैठना बन्द, कुछ-कुछ साथियों के देह से इस्लाम स्वीकार करने के बदले में कपड़े तक उतरवा लिये, लोहे की कवचें पहना कर उनको धूप में बिठाते, लोहा गर्म होकर तपने लगता, आग की तरह गर्म लोहा, तेज़ धूप और भट्टी की भूभल जैसी गर्म रेत, साथियों के देह इन ज्वाला मुखियों की ताब न ला कर झुलसने लगते, बदन की चर्बी तक पिघल जाती, पर सत्य का नशा इतना तेज़ था कि इन परीक्षाओं से पार होते ही और तेज़ हो जाता।

बिलाले हब्शी अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के फ़िदाई दास थे। श्याम वर्ण, पर मन चांदनी से अधिक उजला, सत्य-प्रचार में आगे-आगे। मुसलमान होने के बाद बिलाल (रज़ि०) नुबूवत के आस्ताने को ही अपना सब कुछ समझते थे। मुसलमानों में ग़रीब-अमीर और आज़ाद-ग़ुलाम का अन्तर न था। जो इस्लाम की पनाह में आ गया, वह मुसलमान का भाई हो गया। नस्ल और रंग के आधार पर भेदभाव और 'बड़े' और 'सरदार' होने का दर्प सहाबा किराम में न था। उनकी दृष्टि में प्रतिष्ठा का मानदंड सच्चरित्र और शालीनता थी। ये सब एक ही जैसे थे।

करैश ने जब यह देखा कि हब्शी ग़ुलाम बिलाल अबूबक्र, उमर, अली, और उस्मान के बराबर बैठता है और उसके साथ कोई भेद-भाव नहीं किया

जाता, तो उनको और अधिक क्रोध आता कि यह इस्लाम तो हमारे पैतृक विश्वासों के साथ पारिवारिक महानता तथा वंशगत प्रतिष्ठा पर कुठाराघात कर रहा है, हब्श का गुलाम और अबू तालिब, अबू कहाफा और खत्ताब जैसे कुरैशी सरदारों के बेटों की बराबरी करे, यह कैसे पसन्द किया जा सकता है? इस प्रकार तो हब्श, इराक़,शाम, ईरान और हज़रेमौत का हर गुलाम मुसलमान होकर हम कुरैशियों के समान हो जायेगा। यह तो कुरैशी प्रतिष्ठा का खुला अनादर है। हम ने अपनी पारिवारिक मर्यादा की हज़ारों वर्षों से रक्षा की है, युद्ध के क्षेत्र में हमारी शूर-वीरता, युद्ध-कौशल और साहस-धैर्य के गवाह हैं, हमने सीनों पर तलवारों, नेज़ों, बर्छियों और तीरों के घाव खाए हैं, पर क़ुरैश की प्रतिष्ठा को धक्का नहीं लगने दिया। हमारी पीढ़ियां संसार की तमाम क़ौमों से अधिक प्रामाणिक तथा प्रतिष्ठित हैं, पर अब तो अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद का लाया हुआ धर्म हमारे इस कबीलागत मान-सम्मान को निश्चय ही धूल में मिला देगा। हमारी आंखों में खून उतर आता है, जब बिलाले हब्शी को हम अबूबक्र व अली के कंधों से कंधा मिला कर नमाज़ पढ़ता और ज़ानू से ज़ानू मिलाये हुये पास बैठा देखते हैं।

मन के इस क्षोभ ने अत्याचार का रूप धारण किया। कुरैशी शत्रु हज़रत बिलाल (रज़ि०) की गरदन में रस्सी डाल कर शरारती छोकरों को सौंप देते और कुरैश के ये बदमाश लौंडे हज़रत बिलाल (रज़ि०) को मक्का की गलियों में घसीटते, शत्रु तालियां बजा-बजा कर हंसते कि बिलाल इसी का अधिकारी है। हब्श का गुलाम मक्का में सिर उठा कर नहीं चल सकता। इस खींचा-तानी में बिलाल की गरदन लहू-लुहान हो जाती। यह उन दुष्टों का रोज़ का काम था, बल्कि मनोविहार का कार्य! वे मूर्ख यह समझते थे कि इस तरह हम बिलाल को अपमानित कर रहे हैं। इस सच्चाई से वे बे-ख़बर थे कि ऐसी ओछी बातों से सच्चाई ऊपर चढ़ती है। सब से बड़ा अपमान, चरित्र और आचरण का अपमान है। मनुष्य का जीवन अपने आचरण के कारण आदरणीय बने, तो फिर इस आदर को दुनिया वाले नीचा नहीं दिखा सकते। सच्चाई ज़ालिमों के हाथ से जूतों का हार पहन कर भी पस्त नहीं होती। यह लोगों की भूल और भ्रम है, जो वे ऐसा समझते हैं।

उमय्या बिन ख़ल्फ़ के हज़रत बिलाल (रज़ि०) दास थे। वह ज़ालिम आप को तपती हुई रेत पर लिटाता, फिर आप की छाती और पीठ पर गर्म पत्थर रखता। बिलाल (रज़ि०) के शरीर की खाल झुलस-झुलस जाती, पर इस्लाम

का यह फ़िदाई इस दशा में भी 'अहद-अहद' (अल्लाह एक है-अल्लाह एक है) का नारा लगाता और इन विपत्तियों का शिकार हो कर भी ख़ुदा की तौहीद का इक़रार करता। हज़रत अम्मार बिन यासिर (रज़ि०) और उनके मां-बाप को शत्रु तरह-तरह की यातनायें देते, ये तक्लीफ़ें अति निर्ममतापूर्ण तथा क्रूरता भरी होती थीं। एक बार अम्मार के घर वालों को शत्रु सता रहे थे। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का वहां से गुज़र हुआ। आले यासिर ने विनीति-भाव से आप को देखा। इन पीडितों की निगाहें मूक भाषा में कह रही थीं—

ब-जुर्मे इश्क़ तू हम मी कुशंद गोगाईसत,
तू नीज़ बर सरे बाम आ कि ख़ुश तमाशाईस्त

(शोर तो यह है कि हम तेरे प्रेम के अपराध में पकड़ लिये गये हैं। ऐ साथी! तू भी अटारी पर चढ़ कर देख कि क्या खूब तमाशा हो रहा है।)

हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फरमाया—

'आले यासिर सब्र करो। जन्नत का वायदा निश्चय ही तुम्हारे लिये है।' अपने मालिक और स्वामी के मुख से इस शुभ-सूचना को सुन कर अम्मार बिन यासिर (रज़ि०) के घर वालों के चेहरों पर हर्ष की लालिमा दौड़ गयी। ज़ुबान नहीं दिल कह रहे थे कि मुहम्मद (सल्ल०) आप की दासता का तौक़ अब हमारी गरदनों से नहीं निकल सकता, चाहे हमारी देह का एक-एक जोड़ क्यों न अलग कर दिया जाये। हम अब आप ही के होकर जीना और मरना चाहते हैं। संसार की कोई विपत्ति हमें इस्लाम से नहीं फेर सकती और हम ने—

कुछ समझ कर ही तहे तेग़ गला रखा है।

मक्का की विशाल धरती मुसलमानों पर तंग कर दी गयी थी। एक-एक सहाबी शत्रुओं के ज़ुल्म व सितम का निशाना बन रहा था। कष्ट और पीणा पहुंचाने के ढंग भी नये-नये थे। किसी मुसलमान को पेड़ से बांध कर उलटा लटका दिया जाता और चटाई में आग देकर धुवां उसकी नाक में पहुंचाया जाता। किसी के दोनों हाथ पलंग के पायों के नीचे दबा कर कई-कई आदमी उस पर बैठ जाते और ग़रीब के हाथों की खाल कुचल जाती। अनादर, अपमान, कष्ट और पीणा के जो सामान वे कर सकते थे, वे सब के सब इन ज़ालिमों ने कर डाले।

स्वयं रसूल (सल्ल०) के साथ वह-वह गुस्ताख़ियां कीं कि मानवता भी तड़प उठी। हुज़ूर (सल्ल०) जिस मार्ग से गुज़रते उसमें कांटे बिछाये जाते, और

शुभ पांव कांटों की नोकों से घायल हो जाते। हुज़ूर (सल्ल०) रास्ते से जा रहे हैं और पूरा शरीर मिट्टी में सन गया। एक बार हुज़ूर (सल्ल०) काबा में नमाज़ पढ़ रहे थे कि उक़्बा बिन मुईत बहुत देर से ताक लगाये बैठा था। उस ने तेज़ी के साथ बढ़ कर, आप की गरदन में चादर डाल दी और इस ज़ोर से चादर को बल दे कर ऐंठा कि दया मूर्ति(सल्ल०) की आंखों के ढेले बाहर आ गये। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने तीव्र संघर्ष किया और घावों की परवाह न करते हुये, उस दुष्ट के हाथ से चादर जैसे-तैसे छुड़ायी। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) बोले कि तुम उस व्यक्ति की हत्या किये दे रहे हो, जो तुम लोगों के पास अल्लाह की निशानियां लेकर आया है और जो यह कहता है, अल्लाह मेरा पालनहार है।

एक बार अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (अलैहिस्सलातु वत्तस्लीम) घर इस हालत में तश्रीफ लाये कि मुबारक सिर धूल से अटा हुआ था। एक विरोधी की गुस्ताख़ी ने यह अशुभ हरकत की थी। हज़रत सय्यिदा फ़ातमा (रज़ि०) ने देखा तो पानी का बर्तन लेकर दौड़ीं। मुबारक सिर पर पानी डाला, धूल धोने लगीं, आंखों में आंसू आ गये, रोकने की कोशिश के बाद भी आंसू रुक न सके। हुज़ूर (सल्ल०) ने अबोध बालिका को रोता देख कर फ़रमाया—

'जाने पिदर! रो नहीं, ख़ुदा तेरे बाप को बचा लेगा।'

मक्के में बकरियों और ऊंटों के लिए पनाह थी, पर अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके साथियों पर अम्न व सलामती की तमाम राहें बंद कर दी गयी थीं। इस बस्ती का एक-एक कण आपका शत्रु था, घर-द्वार आप के ख़ून के प्यासे थे। हर उदित होने वाली प्रातः शत्रुओं के कष्ट देने में एक नए अध्याय की वृद्धि कर देती। कुरैशी शत्रु प्यारे नबी (सल्ल०) और आपके साथियों को मिटाने पर पूरी तरह तुल गये थे। क़बीलागत झगड़ों और लड़ाइयों ने इस्लाम-विरोध का रूप अपना लिया था। हर शत्रु मुसलमानों के सताने में दूसरों से आगे बढ़ जाने की कोशिश करता। ख़ुदा के नेक बंदों को सता कर वे लोग अपनी सभाओं में गर्व करते और एक दूसरे के अन्यायपूर्ण कारनामों को सराहते, सच्चाई आग्नेय परीक्षा से गुज़र रही थी, सत्य आज़माइश की भट्टी में तपाया जा रहा था। इस्लाम का जहाज़ कुफ़्र के विरोध के भयावह तूफ़ानों के निशाने पर था।

—भयानक संघर्ष, संकटमय टकराव, हतोत्साहित शत्रुता—

सुधारकों और सत्य वादियों को बहरहाल विरोधों का सामना करना

पड़ता है, पर कुरैशी शत्रु बड़े निर्मम विरोधी थे। दया-कृपा और क्षमा-माफ़ी तो वे जानते ही न थे, सच्ची बात का उत्तर उनके पास तलवार, नेज़े और बरछी और पत्थर के सिवा कुछ न था। उनकी शत्रुता का ज्वालामुखी पर्वत पूरी शक्ति के साथ आग उगल रहा था। वैमनस्य यौवन पर था। किसी-किसी शत्रु ने तो अपना काम-धन्धा तक छोड़ दिया, इस्लाम को मिटाने के लिए उसने यह त्याग किया था। वह इस अज्ञानता को बहुत बड़ी राष्ट्रीय सेवा समझता था, नस्ली संकीर्णता, विनाश और तबाही के हर संभव साधनों को लेकर मैदान में आ गयी थी, असत्य का सत्य से टकराव हो रहा था, कुफ़्र सन्तुष्ट था कि मुट्ठी भर इंसान इन निर्दयी विरोधों का आख़िर कब तक विरोध करते रहेंगे। एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा कि मुसलमान मजबूर होकर हथियार डाल देंगे, उन्हें झुकना पड़ेगा और अगर उन्होंने पराजय स्वीकार न की तो वे मिट जायेंगे। मौत उनके सिरों पर मंडला रही है और विनाश उनका मार्ग देख रहा है। गिनती के कुछ व्यक्ति हज़ारों बहादुरों का मुक़ाबला नहीं कर सकते, घास के तिनके कितने ही उत्साही और धैर्यवान क्यों न हों, तूफ़ान की टक्कर सह नहीं सकते।

□

# मक्का से सौर की गुफा तक

इन तमाम विरोधों के बाद भी इस्लाम की धारा न थमी, तो कुरैशी शत्रुओं के सरदारों ने दारुन्नदवः में इकट्ठा हो कर सलाहकार परिषद की सभा बुलायी। दारुन्नदवः कुरैश का संसद था। किलाब का नामी बेटा कुसई उसका संस्थापक था। जब कोई आवश्यक सलाह लेनी होती तो कुरैश के सरदार यहां इकट्ठा होकर वार्ताएं करते। कुरैश की दारुन्नदवः में सभा इस बात का प्रमाण थी कि कोई बड़ा मामला सामने है और किसी महत्त्वपूर्ण समस्या पर वार्त्ता हो रही है।

शायद कुसई के समय से लेकर अब तक कबीलों के 'बड़ों' का इतना बड़ा सम्मेलन दारुन्नदवः में न हुआ था। लोग अपने दायित्वभाव के साथ यहां आये थे। इन मूर्खों के विचार से उनके सबसे बड़े शत्रु के विरुद्ध यह सलाह ली जा रही थी। कुरैश की राष्ट्रीय महानता-महत्ता और पैतृक धर्म के जीवन और मौत का आज निर्णय होने वाला था। इस्लाम के मिटाने के लिए यह सभा आयोजित की गयी थी। कुरैशी सरदार अनुभवी, निर्भीक, तलवार के धनी, लड़ाइयों के हीरो और दुनिया देखे हुये लोग थे। वे अपनी बात पर आ जायें तो मदिरापान की महफिलों को क्षण भर में बध-स्थली बना डालें। सिरों पर अमामे और एकाल, बर्मी इबाएं, क़बाएं, कुरते, यमनी चादरें, किसी-किसी के पास रेशमी हुल्ला भी था।

बहुत देर के वाद-विवाद के बाद यह बात तै पायी कि जिस तरह हो सके, अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद का काम तमाम कर देना चाहिये। वह समाप्त हो गये तो फिर उन का धर्म भी आप ही आप समाप्त हो जायेगा और उनके साथी बे-सरदार की सेना जैसे रह जायेंगे। उनकी हिम्मतें अपने सरदार के संसार से उठ जाने के बाद स्वतः टूट जायेंगी, उनका साहस बंधाने वाला ही कोई न रहेगा। यह मुहम्मद की संगति और उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव है, जो ये मुसलमान मौत से खेलने के लिए हर समय तैयार रहते हैं। मुहम्मद ही न रहे,

तो ये बेचारे स्वयं अपनी पराजय स्वीकार कर लेंगे।

अब यह बात तै होनी बाक़ी रही कि इस प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप आख़िर कैसे दिया जाये।

'अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के गले में और पैरों में बेड़ियां डालकर एक मकान में क़ैद कर के और मकान के दरवाज़ों और रोशनदानों को मिट्टी से बंद कर दो, यहाँ तक कि ज़ुहैर व नाब्ग़ा की तरह वह अपनी मौत मर जायें,' कुछ लोगों की एक साथ आवाज़ आयी।

'यह उपाय कुछ उचित नहीं जान पड़ता। यह ख़बर छिप नहीं सकती, किसी न किसी प्रकार फैल कर रहेगी, मुसलमानों को अपने पैग़म्बर के प्रति ज़ितनी श्रद्धा है, उसे सभी जानते हैं। जब उनको इस घटना की सूचना मिलेगी, तो अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद को छुड़ा लेंगे और शक्ति पा कर हम को भी मिटा देंगे', एक बूढ़े नज्दी ने जो इस सभा में शरीक था, कहा।

'तो फिर भाइयो! यही उचित है कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद को एक तीव्र स्वभाव और कड़ुवे दिल के सरकश ऊंट पर बिठा कर शहर से बाहर निकाल दें। वह कहीं भी जायें, चाहे मरें, चाहे जियें', एक व्यक्ति सोच कर बोला।

'भाइयो! यह उपाय भी चलता नहीं दीख पड़ता, बल्कि शायद उल्टा पड़ेगा। क्या तुम लोगों ने मुहम्मद की मनमोहक बातों को भुला दिया। वह जिस से भी बातें करता है, उस को अपना बना लेता है, इसलिए यह व्यक्ति जहां भी जाएगा, वहां के लोग उसके हो जायेंगे', नज्द के सरदार के उत्तर पर सभी चुप हो गये। सोच-विचार होने लगा, किसी निर्णय पर पहुंचे बिना क़ुरैशी सरदार सभा से उठने के लिए तैयार न थे। बहुत देर तक विचार करते रहे। हर व्यक्ति अपनी सोच के अनुसार अक़्ल के घोड़े दौड़ाने लगा, नज्दी सरदार की आपत्तियों ने सब को सावधान कर दिया था कि ख़ूब सोच-समझ कर बात मुंह से निकालनी चाहिये।

अन्ततः अबू जह्ल का सिर हिला, होंठ खुले और ज़ुबान कैंची की तरह चलने लगी। सब लोग ध्यान पूर्वक उसकी बातें सुनने लगे—

'सरदारो! अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद जब तक क़त्ल न हो जायेंगे, यह फ़ित्ना (अल्लाह की पनाह) हमारा पीछा न छोड़ेगा, पर उनके क़त्ल पर एक हंगामा खड़े होने का भय है। बनी हाशिम प्रतिशोध के लिये तैयार हो जायेंगे।

मेरे मन में यह विचार आया है कि मक्का के हर प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित क़बीले से एक-एक योद्धा वीर चुन लिया जाये। ये सब लोग रात के अंधेरे में मुहम्मद के घर को घेर लें और जब वह सुबह के वक़्त नमाज़ पढ़ने के लिए घर से बाहर निकलें, तो सब बहादुर जवान एक साथ उन पर तलवारें लेकर टूट पड़ें। इस तरह मुहम्मद का ख़ून तमाम क़बीलों में बट जायेगा और फिर इतने बहुत-से प्रतिशोध का बनी हाशिम को साहस न होगा।'

तमाम सलाहकारों के माथे हर्ष से चमक उठे। सब ने अबू जह्ल के प्रस्ताव को सराहा कि यह उपाय अति उचित और व्यावहारिक है। अबू जह्ल की बुद्धिमत्ता तथा विवेक की सराहना की कि उसने कितना सफल प्रस्ताव और उपयोगी योजना रखी है। नज्दी सरदार, जो अब तक बहुत-से प्रस्तावों पर आलोचना कर चुका था, चुप हो गया। इस मौन में मानो उसकी 'हां' शामिल थी अर्थात यह कि अबू जह्ल ने चलने वाली बात कही है, इसमें कोई ख़तरा नहीं है— सर्वथा उचित प्रस्ताव, सर्वोत्तम सुझाव!

अल्लाह ने शत्रुओं की योजना की सूचना वह्य के द्वारा अपने सच्चे रसूल, सर्वश्रेष्ठ नबी और मानवता के सर्वोच्च उपकारी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को दे दी। शत्रु समझते थे कि हम ने अति गुप्त योजना बनायी है, किसी मुसलमान को इसकी सूचना ही नहीं हो सकती। दारुन्नदवः के आस-पास पहरे बिठा दिये गये थे कि कोई अपना-पराया इधर आने न पाये। कुछ विश्वसनीय व्यक्ति ही इस योजना को जानते थे। कुछ शत्रुओं ने अपने ख़ास घर के लोगों को भी यह भेद नहीं बताया, इसलिए कि मुंह से निकलते ही बात परायी हो जाती है। गोपनीयता की परिभाषा हीं यह है कि भेद किसी व्यक्ति पर भी न खुलने दिया जाये ऐसी हालत में अपने जिगर के टुकड़े पर भी भरोसा करना ख़तरे से ख़ाली नहीं होता।

क़ुरैशी शत्रु अति प्रसन्न थे, अबू जह्ल के मश्विरे पर उन्हें गर्व था, उनकी कल्पना-जगत में भी यह बात न आयी थी और इस वास्तविकता का ख़तरा भी इन भाग्यहीनों के दिलों पर न गुज़रा था कि नुबूवत का ख़ुदा की ज़ात से क्या संबंध है और जिस ख़ुदा ने मुहम्मद (सल्ल०) को नबी बना कर भेजा है, वह उसकी सुरक्षा से बे-ख़बर नहीं है। इल्हाम और वह्य की हक़ीक़त ही से वे लोग अनभिज्ञ थे। लात व हुबल के पूजने वालों को इस बात का पता ही न था कि अल्लाह, जो दिलों के ख़तरों को जानता है और जिसका सामर्थ्य और शक्ति

संपूर्ण जगत को अपने घेरे में लिये हुये है, अपने चुने हुये बंदों पर छिपी हुई बातें और घटित होने वाली घटनायें समय से पहले ज़ाहिर कर सकता है। इन ज़ालिमों को तो बस यह दीख पड़ता था कि मुहम्मद अब्दुल्लाह का बेटा और अब्दुल मुत्तलिब का पोता है। हमारी ही तरह खाता-पीता और सोता-जागता है। अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए हम कुरैशियों की तरह बाज़ारों में उसे जाना पड़ता है। इंसान की स्वाभाविक परिस्थितियों में वह हम ही जैसा है। उन्हें ख़बर न थी कि मुहम्मद (सल्ल०) पुत्र अब्दुल्लाह पुत्र अब्दुल मुत्तलिब पुत्र हाशिम निश्चित रूप से इंसान हैं, अल्लाह के बन्दे हैं, पर कैसे बन्दे? साक्षात दया, जगमगाता दीप, अति स्नेहिल तथा दयावान, वह्य वाला, उनकी यह शान है कि जिस व्यक्ति को वह जन्नत की शुभ-सूचना अपने मुख से दे दें, उस पर जन्नत अनिवार्य हो जाये। अल्लाह ने वास्तविकता के मर्म को जानने के लिए उन का सीना खोल दिया है, अल्लाह से उन का सीधा संबंध है। हां! हां!! वह सोते हैं, पर उनका दिल जागता रहता है। मक्का के दर व दीवार और रेगिस्तानी बबूलों और खजूरों को जो आंख देखती है, उसके सामने प्रकृति-रहस्यों के पन्ने खुल जाते हैं।

कारे पाकां रा कियास अज़ खुद मगीर
गरचे आयद दर नविश्तन शेर शीर।[1]

(अल्लाह वालों के कथन-आचरण का अनुमान अपने पर न करो। शेर और शीर (उर्दू में) प्रत्यक्षतः एक ही जैसे लिखे जाते हैं, पर वास्तविकता तो यह है कि दोनों के अर्थों में बड़ा अन्तर है।)

उनके वर्णन को स्वयं अल्लाह ने उच्च किया है। संसार की समस्त शक्तियां भी उन्हें नीचा नहीं कर सकतीं। अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) से लड़ाई वास्तव में खुदा से लड़ाई है और खुदा पर किसी शक्ति को भी विजय नहीं मिल सकती। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के लिए सहायता और सफलता भाग्य बन चुकी है। तुम शत्रुओं के तमाम उपाय धूल में मिल जायेंगे। मत दंभ करो अपनी अधिक संख्या पर। मुहम्मद (सल्ल०) की ज़ात 'रोशन चिराग़' है, जिसे क्रांति का कोई झोंका भी नहीं बुझा सकता।

---

१. शीर दूध को कहते हैं और शेर एक पशु का नाम है, जिसकी लिखावट फ़ारसी या उर्दू में एक ही होती है।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने प्रिय चचेरे भाई और जां निसार साथी हज़रत अली बिन अबी तालिब (रज़ि०) से फ़रमाया—

'तुम मेरे बिस्तर पर मेरी चादर ओढ़ कर सो रहो, किसी प्रकार की चिन्ता और आशंका न करो, तुम्हारा बाल भी कोई बीका न कर सकेगा।'

बड़ी कठिन परीक्षा थी। मुहम्मद (सल्ल०) के बिस्तर पर आज सोना मानो तलवारों की छाया में सोना था। यह मृत्यु और विनाश से आमने-सामने की लड़ाई थी। मक्के के प्रसिद्ध क़बीलों के नामी योद्धाओं की तलवारों का मुक़ाबला था, ख़तरनाक से ख़तरनाक स्थिति पैदा हो सकती थी, हर क्षण प्राण के खोने का भय था। शत्रु आवश्यक शस्त्रों और अटल इरादों के साथ आये थे, पर अली (रज़ि०) ईमान और यक़ीन का भारी पहाड़ थे, उन्होंने तनिक भर भी अनुनचि न की। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के हुक्म के बाद सोच-विचार करना, अक़्ल लड़ाना और परिणाम पर विचार करना ईमान का अनादर था। ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) के हुक्म के सामने सिर झुकाना ही इस्लाम और ईमान है, जिस ने आज्ञापालन में संकोच किया, समझ लो कि उसके ईमान में खोट है और वह मस्लहतों की अभी तक पूजा कर रहा है।

हज़रत अली (रज़ि०) शान्ति तथा धैर्यपूर्वक पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के बिस्तर पर सोते रहे। हुज़ूर (सल्ल०) जब मकान से निकले हैं तो क़ुरैशी शत्रु नंगी तलवारें लिये घात में बैठे थे, उनकी पलक भी आज न झपकी थी। वे इस इन्तिज़ार में थे कि मुहम्मद ने द्वार से बाहर बस क़दम रखा और हमारी तलवारें उन पर बरस पड़ीं। मुहम्मद आज बच नहीं सकते। यह उनके जीवन की अन्तिम रात है। हम अब तक बहुत कुछ तरह और ढील देते रहे, पर अब्दुल्लाह के बेटे अपनी बात से न हटे, आख़िर हम कब तक अपने उपास्यों का अनादर गवारा करते, सहनशीलता की भी एक सीमा होती है! बनी हाशिम के घराने में आज सुबह शोक हो रहा होगा। मुत्तलिब के बेटे अब्दुल्लाह की युवा-मृत्यु पर भी इतना शोक न मनाया गया होगा, हाशिमी घराने की औरतें चीत्कार करती होंगी कि मुहम्मद तुम बहुत नेक आदमी थे, सत्यवादी, वायदे के पक्के, सुन्दर, सच्चरित्र, लज्जा तुम्हारा स्वभाव थी और स्वाभिमान तुम्हारी प्रकृति। अरब में शायद तुम जैसा नेक आदमी पैदा नहीं हुआ। कुसई के कारनामे भी तुम्हारे आगे फीके पड़ गये, लेकिन तुम ने अपनी क़ौम से लड़ाई मोल लेकर कुछ अच्छा नहीं किया। अगर तुम अपनी क़ौम का विरोध न करते तो यह दिन देखना नसीब न

होता।

कुरैशी शत्रु इन विचारों के उतार-चढ़ाव के साथ इन्तिज़ार की घड़ियां बिता रहे थे कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) रात में घर से निकले। अल्लाह ने शत्रुओं की जागती आंखों पर ग़फ़लत के पर्दे डाल दिये थे। शत्रुओं को आप का जाना महसूस ही नहीं हुआ। ख़ुदा जिसको बचाना चाहे, संसार की तमाम शक्तियां भी मिल-जुल कर उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। अल्लाह की तद्बीर का तोड़ ही नहीं हो सकता। हम जिसको अपने अनुभवों के आधार पर 'स्वाभाविक गुण' और आदत तथा प्रकृति कहते हैं, अल्लाह उस का पाबन्द नहीं है। वह चाहे तो हर आदत की 'समाप्ति' संभव है। उसकी शक्ति पानी से जलाने का और आग से बुझाने का काम भी ले सकती है। मानवता और उसका निश्चय ही क्या? पानी के बुलबुले और समुद्र के झाग, ओस की बूंदें, छुई-मुई का जादू! निश्चयों का बड़े से बड़ा क़िला भी किसी वह्य या आंतरिक हरकत से आन की आन में ढह जाता है। आदमी सोचता कुछ है और हो कुछ जाता है, अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) घेरा डालने वालों की उपस्थिति में मकान से निकल कर बाहर तश्रीफ़ ले गये और किसी शत्रु को आप की परछाईं तक दिखायी न दी।

हुज़ूर (सल्ल०) अपने मकान से चलकर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के घर पहुंचे और अपने इरादे और हालात की उन्हें सूचना दी। अबूबक्र (रज़ि०) ने बिना किसी अनुनचि, बिना किसी संकोच और बिना किसी हिचकिचाहट के, साथ चलने की 'हां' कह दी। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के साथ इस सफ़र में चलना वास्तव में मुसीबतों और ख़तरों में कूदना और मौत की आवाज़ पर दौड़ पड़ना था। यह कोई मनोविहार या व्यापारिक यात्रा न थी। इस यात्रा में हर क़दम पर भयानक से भयानक ख़तरों की संभावनाएं थीं। यह जान की बाज़ी, जीवन और मौत का सौदा था। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के ईमान की शक्ति ने मन के सन्देहों और शंकाओं को उभरने ही न दिया। सिद्दीक़ (हज़रत अबूबक्र रज़ि०) का ईमान ख़ुदा और रसूल के हुक्म के आगे 'अनुनचि' करना जानता ही न था, मात्र आज्ञापालन ही उस की नीति थी। यह ईमान व यक़ीन का मामला था, व्यापार न था। जहां हर चीज़ लाभ-हानि के पैमाने से नापी जाती है, यक़ीन परिणाम और अंजाम से बे-परवाह हो कर नत-मस्तक हो जाता है। हो सकता है कि सिर को झुकने के बाद फिर उठने की मोहलत न मिले और किसी शत्रु की

तलवार का एक बार सिर को तन से जुदा कर दे, जो यकीन मस्लहत और अंजाम के चक्कर में हो, समझ लो कि उस में अभी कमज़ोरी और फुसफुसापन मौजूद है। अबूबक्र सिद्दीक़(रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) का हुक्म सुनकर यह सोचा ही नहीं कि इस ख़तरनाक साथ और ख़तरों भरे सफ़र का परिणाम क्या निकलेगा? सिद्दीके अक्बर ने ईमान लाने और इस्लाम स्वीकार करने के बाद अपनी जान, माल,बुद्धि, चिंतन, होश व हवास और दिल व दिमाग़ सब के सब अल्लाह और रसूल को सौंप दिए थे। धर्म के मामले में निजी राय, व्यक्तिगत मस्लहत और सोच-विचार के लिए अब कोई गुंजाइश ही न रही थी।

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने जल्दी-जल्दी यात्रा के लिये ज़रूरी सामान, जो उस नाज़ुक घड़ी में हाथ आ सकता था, ठीक-ठाक किया। सत्तुओं की थैली का मुंह बांधने के लिए जल्दी और परेशानी में कोई चीज़ न मिली, तो अबूबक्र (रज़ि०) की भाग्यशालिनी बेटी असमा (रज़ि०) ने अपना कमरबन्द काट कर उसके टुकड़े से यह काम लिया और उस पुण्य कार्य के कारण इस्लामी इतिहास में 'ज़ातुन्नताक़ैन' की उपाधि के साथ सदैव बाक़ी रहने वाली ख्याति की मालिक हो गयीं। सत्तू, खजूर, पानी की छागल और ज़रूरत की दो-चार चीज़ें ले कर रात की तंहाई में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) रवाना हुये। मक्का की गलियों में मौन छाया हुआ था। लोग अपने घरों में चैन की नींद सो रहे थे। आबादी से बाहर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने मक्का को मुहब्बत की निगाहों से कई बार मुड़-मुड़ कर देखा। मक्का छुट रहा था, प्रिय देश, जहां आप जन्मे थे, जहां पले बढ़े थे, जहां के दर व दीवार ने मुहम्मद (सल्ल०) के बचपन और जवानी की बहारें देखी थीं, एक-एक कण अपनी भाषा में कह रहा था—

ऐ तमाशा गाहे आलम रु-ए-तू
तू कुजा बहरे तमाशा मी रवी।

(ऐ वह हस्ती कि जिस का स्वरूप संसार के लिए साक्षात प्रदर्शनी है, तुम अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन करने कहां जा रहे हो?)

देश-प्रेम अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के क़दमों से लिपट गया कि 'उम्मुल कुरा' (अर्थात मक्का) को छोड़ कर कहां जाते हो, अपनी बरकतों से मक्का को महरूम न करो। गलियां, कूचे और बाज़ार कह रहे थे कि मुहम्मद

(सल्ल०)! तुम्हारे पद-चिन्ह हमारे सीनों में सुरक्षित हैं, जा रहे हो तो तुम हमें भी साथ लेते जाओ। इतने शुभ क़दम अब हमें कहां मिलेंगे? ऐ सुख-शान्ति के संदेश-वाहक! देश को छोड़ कर परदेस न जा, परदेस में जाने कोई साथ दे या न दे, यहां फिर भी अपने ही लोग हैं। खून का रिश्ता बहुत मज़बूत होता है, परायों को इतना लगाव नहीं हो सकता, जितना अपनों को है। काबे के दर व दीवार पर शोक छाया हुआ था, मानो कोई दुख-सुख का साथी और महान उपकारी बिछड़ रहा है। 'मीज़ाबे रहमत' से लेकर 'हतीम' तक सभी शोकाकुल थे।

भयानक और अंधेरी रात, जटिल मार्ग, कहीं-कहीं ख़तरनाक मोड़, ऊंच-नीच भी! पत्थरों की धारें और कंकरियों की नोकें मुबारक पैरों में चुभने लगीं। खून निकल आया। किसी मोड़ और ऊंचे स्थान पर ठोकर लगती तो घायल पांवों की पीणा और बढ़ जाती। यह हालत देख कर सिद्दीक़े अक्बर (रज़ि०) से न रहा गया। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) को कांधे पर चढ़ा लिया। पत्थरों की तेज़ नोकें सिद्दीक़े अक्बर (रज़ि०) के पैरों को लहू-लुहान कर रही थीं, पर अबूबक्र (रज़ि०) इस विचार से कि विश्व-नायक को कष्ट न हो, चोट खा कर भी हिलते-डुलते न थे। वह पत्थरों की नोकों पर इस ढंग से चल रहे थे, मानो कोई फूलों की सेज पर चल रहा हो। पांच मील की यात्रा पूरी करने के बाद सौर की गुफा आ गयी। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से कहा कि हुज़ूर! थोड़ी देर बाहर ठहरें, मैं गुफ़ा में जा कर अभी वापस आता हूं।

सौर की गुफा, कांटेदार झाड़ियों में, मिटटी, कंकरों और पत्थरों से अटी पड़ी थी। अति भयावह तथा डरावना दृश्य था, अनगढ़ पत्थरों की काली-काली चट्टानें, कंकरियों के क्रमविहीन ढेर, कहीं ऊंचे, कहीं नीचे, दीवारो में सूराख़, बिल और दराड़ें, सिद्दीक़े अक्बर ने जल्दी-जल्दी खोह को झाड़ कर साफ किया, ताकि फ़र्श बैठने योग्य हो जाये, फिर देह के कपड़े फ़ाड़-फ़ाड़कर खोह के सूराख़ों को बन्द किया, कोई कष्टकारी कीड़ा अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को सताने न पाये। खोह में हर क़दम पर सांप, बिच्छु और इसी प्रकार के दूसरे जानवरों का ख़तरा था, पर सिद्दीक़ अपने आक़ा और मौला अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के प्रेम में ओत-प्रोत थे और ऐसी अवस्था में उन्हें अपने प्राणों की चिन्ता और तन-बदन का होश न था। जब हर ओर से इतमीनान हो गया, तो अबूबक्र (रज़ि०) गुफ़ा से बाहर आये और हुज़ूर (सल्ल०) से भीतर चलने के

लिये अर्ज़ किया। हुज़ूर (सल्ल०) गुफा के भीतर तशरीफ़ ले गये। सिद्दीक़ (रज़ि०) साथ-साथ थे और इधर-उधर देखते जाते थे कि कोई कष्ट और ख़तरा न सामने आ खड़ा हो। सिद्दीक़(रज़ि०) का मन कह रहा था कि ख़ुदा न करे, कोई अजगर भी निकल आया, तो उसका फन मुट्ठी में लेकर मसल दूंगा, चाहे ऐसा करने में स्वयं मुझे अपने प्राण भी न खोने पड़ें, पर हुज़ूर (सल्ल०) को थोड़ी-सी तक्लीफ़ भी न पहुंचे।

अबूबक्र (रज़ि०) की जगह कोई और दुनिया परस्त और स्वार्थी व्यक्ति होता तो मस्लहतों की आड़ लेकर अपने साथी के लिये ख़तरा मोल ही न लेता। वह कहता, भाई! मैं और तुम दोनों एक ही स्थिति में हैं, तुम मेरा ग़म दूर करो, मैं तुम्हारा ख़्याल करता हूं, मिल-जुल कर काम चलेगा, पूरा बोझ एक ही व्यक्ति पर न डाला जायेगा—और अगर वह तने तंहा सब कुछ बन्दोबस्त कर भी लेता, तो हज़ारों एहसान धरता कि मैंने तुम्हारे लिये यह किया, वह किया, अपने आराम को तज कर तुम्हारे लिये आसानियां और सुविधायें जुटायीं, तुम्हारी सुरक्षा के लिये जान को ख़तरे में डाल दिया। इन सूराख़ों में सांप और बिच्छू भी हो सकते थे, पर मैं ने तुम्हारे प्रेम में किसी कष्ट पर भी ध्यान न दिया, पर यह हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) सही अर्थों में गुफा के साथी! निःस्वार्थ मित्र, सब कुछ निछावर कर देने वाले साथी, श्रद्धालु, यात्रा-साथी और सर-धड़ की बाज़ी लगा देने वाले दास! उन्होंने किसी प्रशंसा-प्राप्ति के लिए यह सेवा नहीं की, वह तो इतना कुछ करने के बाद भी लज्जित थे कि मुझ ग़रीब से हाय! कुछ न हो सका। मुहम्मद (सल्ल०) की राह में तो अपनी आंखें और दिल बिछा देने के बाद भी श्रद्धा का हक़ नहीं अदा हो सकता, जिसके कारण ईमान की पूंजी और इस्लाम की दौलत मिली उसके उपकार से तो जान देने के बाद ज़िम्मेदारी का पूरा हक़ अदा हो जाना कठिन है।

जैसे-जैसे रात बीतती जा रही थी, पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के मकान पर घेरा डालने वाले शत्रुओं की खुशी में वृद्धि ही हो रही थी कि मंज़िल अब अधिक दूर नहीं रही, यहां तक कि सुबह की सफ़ेदी स्पष्ट हो गयी, पर अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) घर से निकलते नज़र न आये। शत्रुओं को चिन्ता हुई कि आख़िर क्या बात है, धूप निकल आयी और मुहम्मद (सल्ल०) नमाज़ पढ़ने के लिये जगे नहीं। वह तो बहुत अंधेरे से काबा जाने के आदी हैं, उन का प्रातः जागरण तो सारे मक्का में प्रसिद्ध है, लोग सोये होते हैं

और मुहम्मद (सल्ल०) का मस्तक काबे के सेहन में अपने खुदा के आगे झुका होता है—शायद आंख न खुली हो उन की! किसी-किसी शत्रु के मन में यह विचार आया और कोई यह सोचने लगा कि हमारे घेराव की सूचना पा कर मुहम्मद घर में छिप रहे। चलो, अन्दर चल कर देखें, क्या किस्सा है! हम जिस काम के लिये यहां आये हैं और जिस उद्देश्य के लिये तमाम रात आंखों में बितायी है, उसे पूरा करके रहेंगे। हम असफल नहीं लौट सकते।

घर में पहुंचे तो अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बिस्तर पर हज़रत अली बिन अबी तालिब (रज़ि०) को पा कर उन्हें बड़ा क्रोध आया और ज़ालिमों ने अली (रज़ि०) को पकड़ कर खूब मारा।

'अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद हम सब की आंखों में धूल झोंक कर साफ़ निकल गये, एक कुरैशी ने कहा और तमाम शत्रुओं ने सिर हिलाया कि तुम हमारे दिल की बात कह रहे हो। शत्रु झुंझला-झुंझलाकर अपनी तलवारों को देखते कि ये जौहरदार तेगें यों ही रह गयीं। क्या सोचकर आये थे और क्या हो गया? अरमान मन के मन ही में रह गये। एकाध लड़ाई के बाद ऐसा हो जाता तो हम सब्र कर लेते कि हमें अपनी तलवारों के कौशल दिखाने का अवसर तो मिल गया, पर यहां तो किसी तलवार ने छुआ तक नहीं और वह स-कुशल चले गये।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की खोज शुरू हुई। आप की खोज में घोड़े दौड़ाये गये, ऊंट सवार भी रवाना हुये, कुछ लोग पैदल ही चल पड़े। विचार था कि मुहम्मद मक्का से दूर न पहुंचे होंगे, अगर तेज़ी के साथ खोज की जाये तो पता लगना कठिन नहीं है। मक्का के क़रीब की तमाम झाड़ियां, आस-पास के मरूद्यान और रास्ते छान मारे, पर पता न चला, यहां तक कि शत्रु सौर की गुफा के ठीक द्वार पर जा पहुंचे। सबसे पहले उन की चहल-पहल सुनायी दी, फिर उनकी बातें करने की आवाज़ आने लगी। हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) को अति चिंता हुई कि कहीं ये ज़ालिम गुफा में न चले आयें। बाहर आने-जाने का यही एक मार्ग है, हम कहीं जा भी नहीं सकेंगे। शत्रु बिल्कुल सिर पर थे। स्वभावतः चिन्ता होनी ही चाहिये थी। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) को अपने से अधिक नबी (सल्ल०) की चिन्ता थी कि शत्रुओं के मुंह में धूल, कहीं हुज़ूर (सल्ल०) को नुक़सान न पहुंचे। अल्लाह ने उसी दिन वह्य भेजी और वह्य के ये शब्द--'ला तह्ज़न इन्नल्ला-ह म-अ-ना'-- स्वयं नबी

(सल्ल०) के मुख से सुनकर अबूबक्र (रज़ि०) के दिल को ढाढस बंधी, चिन्ता धैर्य में बदली, बेचैनी के स्थान पर शान्ति प्राप्त हो गयी, ग़म जाता रहा, चिंता दूर हो गयी, अल्लाह के इस कथन ने कि 'ग़म न करो अल्लाह हम दोनों के साथ हैं'-सिद्दीक़ (रज़ि०) के जलते हुये दिल पर शांति का ठंडा मरहम रख दिया। अल्लाह के साथ होने की शुभ-सूचना ने आशा में प्राण डाल दिया और सिद्दीके अक्बर को विश्वास हो गया कि शत्रु हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। ख़ुदा की सहायता और समर्थन हमारे भाग्य में लिखा जा चुका है, चुनांचे क़ुरैशी शत्रु उलटे पांव वापस चले गये, उनके मन में इस बात का ख़तरा भी न गुज़रा कि इस गुफा में जिसका मुहाना छोटी घासों से ढका हुआ है, कोई गया भी है।

तीन दिन तक हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) सौर की गुफा में छिपे रहे। जब रात का अंधकार अच्छी तरह फैल जाता तो अबूबक्र (रज़ि०) की बेटी अस्मा अपने घर से रोटियां लेकर रवाना होतीं और अति सावधानी और गोपनीयता के साथ सौर की गुफा में खाना पहुंचाने का कर्त्तव्य निभाया। शत्रुओं को सूचना मिल जाती तो उन की जान की ख़ैर न थी, जान जोखिम में थी, पर यह हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के गुफा के साथी की बेटी थीं। सौभाग्य मानो उन्हें उत्तराधिकार में मिला था। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के लिए उन्होंने किसी ख़तरे की परवाह ही न की। ईमान ने उनके दिल को मज़बूत और निडर बना दिया था।

सौर की गुफा से रवाना होने की समस्या बड़ी नाज़ुक थी। अगर किसी झुंझलाहट और धैर्यहीनता की स्थिति में कोई ऐसी-वैसी बात हो जाती तो न जाने कैसे हालात का सामना करना पड़ता। समय की नज़ाकत बहुत कुछ सावधानी की और सोच-विचार की ज़रूरत महसूस करती थी, इसलिये क़ुरैश की गतिविधियों और उनके निश्चयों की सूचना पाना भी ज़रूरी था—यह संसार कार्य-कारणा का संसार है। यहां के हर रहने वाले को प्रत्यक्ष कारणों और साधनों को बहरहाल ध्यान में रखना होता है। यही अल्लाह की इच्छा और प्रकृति का नियम है। अल्लाह की दया-कृपा पर भरोसा करते हुये साधनों की खोज और उस का इस्तेमाल ईमान वालों का काम है। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के बेटे अब्दुल्लाह शहर वालों की निगाहों से छिप-छिपाकर सौर की गुफा में आते और मक्का वालों के हालात सुना कर चले जाते। आमिर बिन फ़ुहैरा, (रज़ि०) जो हज़रत आइशा (रज़ि०) के भाई का दास था, बकरियों का रेवड़

चराया करता था, आमिर वहां अपनी बकरियां ले आता और हुजूर (सल्ल०) और अबूबक्र (रज़ि०) आवश्यकतानुसार दूध ले लेते थे, फिर वह बकरियों के पदचिन्ह रास्ते से मिटा देता कि कहीं इन चिन्हनों के आधार पर खोजते-खोजते क़ुरैश सौर की गुफा तक न आ जायें। अति गोपनीयता और अधिक सावधानी की आवश्यकता थी।

पूरे दो दिन और तीन रातें इसी दशा में बीतीं। क़ुरैशी शत्रु ग़ाफ़िल न थे, उनके व्यक्ति पता लगा रहे थे। आख़िर चौथी रात को हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के घर से दो स्वस्थ तथा तेज़ रफ़्तार ऊंटनियां आ गयीं। एक ऊंटनी पर हुजूर नबी करीम (सल्ल०) और सय्यिदिना अबूबक्र (रज़ि०) सवार हुये और दूसरी आमिर बिन फुहैरा और अब्दुल्लाह बिन अरीक़त के हिस्से में आयी, अब्दुल्लाह को रास्ता बताने के लिए नौकर रख लिया गया था।

हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के घराने ने, नबी (सल्ल०) की हिजरत के सिलसिले में जो सेवाएं की हैं, उन पर इतिहास को गर्व है। बाप-बेटा-बेटी और गुलाम सभी ने अपने-अपने सामर्थ्यानुसार रसूल (सल्ल०) के समक्ष अपनी श्रद्धा व्यक्त की। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के घराने के इस उपकार को मुसलमान भुला नहीं सकते। □

# मदीना में

सौर की गुफा से यह संक्षिप्त पर पावनतम कारवां यस्‌रिब की ओर चल पड़ा। अबूबक्र (रज़ि०) की ऊंटनियों ने खूब तेज़ी दिखायी, मानो वे इसी दिन के लिये पाली गयी थीं, दिन व रात यात्रा करते, ठहरना बहुत कम होता, शत्रु का हर समय भय लगा था, जो शत्रु मुसलमानों का पीछा करके हब्श पहुंचे थे, उन का अपने देश में पीछा करना कोई आश्चर्य की बात न थी। कुरैशी शत्रु तमाम रास्तों के ऐंच-पेंच को जानते थे। पड़ाव, मंज़िलें, मरुद्यान, घाटियां, टीले, छावनियां, आबादियाँ, हरियालियां, चटयल मैदान तात्पर्य यह कि हिजाज़ का पूरा भूगोल उन की दृष्टि में था। वे बड़े अच्छे ऊंटबान और घुड़ सवार थे। इन रास्तों में उनके चलते-चलते गाये गये गीत अब तक गुंजरित हो रहे थे। ख़तरे की बात ही थी कि न जाने कब और किस मंज़िल में शत्रुओं से मुठभेड़ हो जाये, हर क्षण चौकसी भरने की ज़रूरत थी।

कुरैशी शत्रुओं के दुख की कोई सीमा न थी। वे पछताते, हाथ मलते और खेद व्यक्त करते कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद यहां से बचकर निकल गये। उन्होंने विज्ञापन दिया कि जो कोई मुहम्मद या अबूबक्र को गिरफ़्तार करके लायेगा, उसे पुरस्कार स्वरूप सौ ऊंट दिये जायेंगे—यह बड़े से बड़ा पुरस्कार था, जो मक्का वासी दे सकते थे। एक ऊंट ही उनके लिये बहुत कुछ था और यहां तो सौ ऊंटों के इनाम का वायदा था। कुरैश की ओर से यह शाही भेंट थी और रेगिस्तान वासियों, ऊंट बानों और ख़ानाबदोशों के लिये सबसे बड़ा पुरस्कार।

जासम के वीर बेटे सुराक़ा के मुंह में पानी भर आया—एक दो नहीं पूरे सौ ऊंट मिलेंगे इनाम में और काम केवल इतना कि मुहम्मद और अबूबक्र में से किसी एक को गिरफ़्तार करके मक्का ले आना—तो यह कोई ख़तरनाक मुहिम नहीं है, लाओ कोशिश करके देखूं, भाग्य को आज़माऊं, मुहम्मद के साथ कोई सेना नहीं, बहुत से बहुत दो-चार व्यक्ति होंगे। मुझे ये लोग मिल गये तो

इन पर क़ाबू पा लूगा। मैंने बहुत-सी ख़तरनाक लड़ाइयां देखी हैं—सुराक़ा इन आशाओं के साथ हवा से बातें करने वाले घोड़े पर बैठ कर मक्का से रवाना हुआ।

नव-जवानी और फिर भारी पुरस्कार पाने का लोभ, यह नशा दोहरा था, जिसकी तरंग में वह सरपट घोड़ा दौड़ाए चला गया, यहां जा, वहां जा, इस ओर गया, उस ओर पहुंचा, कहीं राहगीर, ऊंटबान और चरवाहे मिल जाते, तो उन से पूछता कि तुम ने यस्रिब की ओर दो-चार व्यक्तियों को जाते हुये तो नहीं देखा? लोग उत्तर देते कि यस्रिब की दिशा में तो मक्का के कारवां आते-जाते ही रहते हैं। क्या मालूम कि ज़िन आदमियों को तुम पूछ रहे हो, वे भी इन कारवानों में थे या नहीं। सुराक़ा हुलिया और निशान बताता कि भाइयो! मैं जिस व्यक्ति को पूछ रहा हूं, वह लाखों में भी नहीं छिप सकता। सौजन्य और ज्योति उसके तेवरों से बरसती है। वह व्यक्ति हमारा शत्रु सही, पर सच्ची बात यह है कि उस का चेहरा सूर्य से भी अधिक ज्योतिर्मय है—हंसमुख, मनमोहक, सुन्दर, चित्ताकर्षक रंग-ढंग, बहुत-से लोग बाहर से मक्का आये और बस, उसका चेहरा देख कर ही लोग मुसलमान हो गये—मुहम्मद है उसका नाम! सारे अरब में इस नाम का एक व्यक्ति भी न निकलेगा।

सुराक़ा पक्के इरादे के साथ घर से निकला था। उसने विफलता के बाद भी खोज जारी रखने से हाथ न उठाया, यहां तक कि एक दिन दूर से ही हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ऊंटनी पर बैठे नज़र आ गये। मारे ख़ुशी के उसका दिल बल्लियों उछलने लगा। उसकी आंखों में प्रसन्नता-भाव छलक पड़े, लोभ खूब खिलखिला कर हंसने लगा कि अभीष्ट पुरस्कार पाने में अब बस ज़रा-सी देर रह गयी है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के क़ाफ़िले में कुल तीन व्यक्ति थे, व्यक्तियों के अधिक होने का भय भी जाता रहा। सुराक़ा ने घोड़े को एड़ लगायी। बिजली की तरह दौड़ने वाला घोड़ा छलावे की तरह उछल कर हज़रत मुहम्मद (रसूलुल्लाह सल्ल०) की ऊंटनी के क़रीब पहुंच गया। हुज़ूर (सल्ल०) ने सुराक़ा पर एक दृष्टि डाली और दृष्टि का पड़ना था कि घोड़े ने ठोकर खायी और वह पट से धरती पर आ गिरा।

सुराक़ा बड़ी तेज़ी और फुर्ती के साथ धरती से उठा और तरकश से तीर निकाले—फ़ाल के तीर, शकुन-अपशकुन के तीर-यह देखने के लिए कि मुझे आगे बढ़ना चाहिये या नहीं। संयोग की बात कि फ़ाल का उत्तर 'नहीं' में मिला।

बुद्धि बोली कि आगे बढ़ना उचित नहीं है, अधिक मुस्तैदी और साहस दिखाया तो मुंह की खाओगे, पराजय और विफलता से बचना चाहते हो तो सीधे घर लौट चलो। अभी तुम्हारा कुछ बना-बिगड़ा नहीं है। कुरैश से कह देना कि मैंने एक-एक रास्ता छान मारा, पर मुहम्मद का पता न चला—लेकिन लोभ ने उभारा कि शिकार चंगुल में है, बस तनिक साहस से काम ले, तेरा बेड़ा पार है। फ़ाल के तीरों और शकुन के पांसों का क्या भरोसा? कभी-कभी ग़लत भी निकल आते हैं। फ़ाल और शकुन की आड़ लेकर आगे न बढ़ना एक प्रकार की भीरुता और कम-हिम्मती है—सुराक़ा भूल गया, तुझे याद नहीं रहा! सौ ऊंटों के पुरस्कार की घोषणा की गयी है। तेरा जीवन बन जायेगा, कुछ क्षणों में उपवास का शिकार सुराक़ा! तू धनी-मानी बन जाएगा। सौ ऊंट तो कुरैश के बड़े-बड़े आदमियों के पास भी नहीं है। और जिन के यहां हैं, वे हर सभा में आदर के पात्र माने जाते हैं।

लोभ के उत्साह वर्द्धन भाव ने सुराक़ा के घोड़े को फिर बढ़ाया पर अब की बार घुटनों तक धरती में धंस गया। वह घोड़े से उतर पड़ा, फिर फ़ाल देखी और दूसरी बार भी वही 'नहीं' का उत्तर मिला। किन्तु लोभ ने उकसाया कि साहस से काम ले, तलवार उठा, तीर चला, बाहु-बल आज़मा। ये लोग भयभीत और थके हुये-से हैं, तू ताज़ा दम है, खूब कस कर मुक़ाबला हुआ तो जी छोड़ जायेंगे। सुराक़ा ने इस बार अति साहस का प्रदर्शन किया, लेकिन अब भी पहले की तरह मामला पेश आया। वह धैर्य खो बैठा और मुक़ाबला और आगे बढ़ कर वार करने का विचार मन से निकाल दिया। क्षमा मांगने लगा। हुज़ूर (सल्ल०) ने सुराक़ा के हाथों को देख कर मुस्कराते हुये फ़रमाया, मैं तेरे हाथों में शंहशाह किसरा के कंगन देख रहा हूं।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का कथन सुराक़ा के लिये अति आश्चर्यजनक था। वह किसरा के कंगन तो क्या उसके गवर्नरों और दरबारियों के समक्ष उपस्थित होने की कल्पना भी न कर सकता था। पर यह अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की भविष्यवाणी थी। यह उसका कथन था कि जिसके मुख से सत्य के अतिरिक्त और कोई बात निकलती ही नहीं। हुज़ूर (सल्ल०) ने इतने दृढ़ विश्वास के साथ सुराक़ा को यह शुभ-सूचना दी, मानो आप सुराक़ा के भाग्य का लिखा हुआ पढ़ कर सुनाते जाते हैं,—हुज़ूर (सल्ल०) का यह कथन पूरा होकर रहा। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) के

खिलाफ़त-काल में जब ईरान पर विजय मिली और वह भू-भाग, जहां जमशेद और कीकाऊस की महानताओं की पताकायें फहराती थीं, मुहम्मद (सल्ल०) के श्रद्धालुओं के क़दमों में आ गया, तो किसरा के कंगन सुराक़ा के हाथो में पहनाये गये। हज़रत सुराक़ा के हाथों में किसरा के अमूल्य कंगन थे। नबी (सल्ल०) की हिजरत की घटना उन की निगाहों के सामने थी और सच्चे नबी (सल्ल०) के शब्द कानों में गुंजरित हो रहे थे।

सुराक़ा की विफल वापसी के बाद फिर रास्ते भर और किसी अवरोध, संघर्ष और अप्रिय घटना का सामना न करना पड़ा। ख़तरों की संभावना हर क्षण थी। हो सकता था कि सुराक़ा की तरह कुछ और लोग पीछा करते आ रहे हों। क़ुरैशी शत्रु चैन से बैठने वाले नहीं थे। इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की ज़ात से उनका वैमनस्य अति तीव्र था। उनका विरोध हर रंग में सामने आ सकता था। ऐसे घोर शत्रु जो कुछ भी कर गुज़रते थोड़ा था, पर अल्लाह की कृपा साथ थी; खुदा के समर्थन ने हर मंज़िल में उनका हाथ पकड़ा, यहां तक कि कुछ दिनों की थका देने वाली यात्रा के बाद अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और यात्रा-साथियों के साथ क़ुबा स-कुशल पहुंच गये। क़ुबा की बस्ती यस्‌रिब से बहुत क़रीब और मक्के से कोसों दूर थी। शत्रुओं के पीछा करने, हमला करने और मुक़ाबले का यहां ख़तरा न था।

यह यात्रा उत्पीणन की यात्रा थी। मक्के की धरती को क़ुरैशी शत्रुओं ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर तंग कर दी थी, इसीलिये इस जगह को छोड़ दिया गया। यह 'हिजरत' थी खुदा की राह में हिजरत! इस देश-परित्याग से अल्लाह की प्रसन्नता और उसके आदेश का पालन अभिप्रेत था। 'देश-प्रेम' ने निश्चित रूप से प्यारे नबी के मन में चुटकियां लीं—दर्द भरी चुटकियां! मक्का छूटने का आपको सहज-भाव से दुख होना ही चाहिये था, लेकिन इस्लाम के प्रभुत्त्व और सत्य के प्रचार-प्रसार के लिए आप ने स-हर्ष इस कड़वे घूंट को भी पीना पसन्द कर लिया।

मक्के में कुछ लोग तो बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट थे कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद ने आप ही देश-निकाला स्वीकार कर लिया। चलो, अच्छा हुआ। इस्लाम और उसके मानने वाले अब बे-सहारा होकर रह जायेंगे। इस्लाम का प्रचार-प्रसार अब काहे को यहां हो सकेगा। शमा ही न रही, तो परवाने बेचारे अकेले क्या करेंगे? यह तो मुहम्मद के दम से सारी दौड़-धूप चल रही थी। उन

के चले जाने का यह अर्थ है कि मक्के से इस्लाम भी चला गया—पर अनुभवी और विवेकी कुरैशी घबरा रहे थे, उनके दिल कहते थे कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद की बातों में अपार आकर्षण है। उनका रूप देख कर अनजानों के दिल खिंचने लगते हैं, वह जहां जायेंगे, अपनी दुनिया पैदा कर लेंगे। उनका यह संदेश रुक नहीं सकता। हिजरत के बाद तो यह आवाज़ और अधिक शक्ति के साथ प्रस्फुटित हो फैलेगी। मुहम्मद की हिजरत वास्तव में उनकी सफलता का पता देती है। इस्लाम का पौधा, जिसे हमने मक्का में पनपने न दिया, अब दूसरी जगह जड़ पकड़ेगा।

कुबा में कुछ दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ठहरे, इसी बीच हज़रत अली बिन अबी तालिब भी मक्के से पैदल चल कर वहां आ गये। अली (रज़ि०) से मक्के के हालात स-विस्तार मालूम हुये। कुबा के ठहरने के समय में खुदा की इबादत के लिए मस्जिद का निर्माण किया गया, खुद प्यारे नबी (सल्ल०) ने मस्जिद-निर्माण में पूरा भाग लिया और आपको कार्य करता देखकर सहाबा (रज़ि०) की रुचियों, कार्यों तथा गतिविधियों में और जान पड़ गयी। इस मस्जिद की आधारशिला, संयम और सच्चरित्र पर रखी गयी थी। इस की नींव में निष्ठा सम्मिलित थी, बिना दिखावट के सज्दों के लिए इस का निर्माण हुआ था।

यस्रिब में सूचना मिल गयी थी कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) कुबा में तशरीफ़ ला चुके हैं और बहुत जल्द यस्रिब में आप तशरीफ़ लाएंगे। यस्रिब वालों को हुज़ूर (सल्ल०) के आगमन का बड़ा इन्तिज़ार था। वे हर दिन सुबह-सवेरे बस्ती से बाहर आ कर टीलों पर बैठ जाते, जब तक खूब धूप न फैल जाती, इन्तिज़ार करते रहते, इन्तिज़ार की घड़ियां बड़ा धैर्य चाहती हैं, यस्रिब वासियों पर एक-एक क्षण भारी हो रहा था। आशाओं को संजोने वाली उनकी आंखों में मन-विहवलता तमन्ना बन कर झलक रही थी। रात को इस आशा के साथ सोते कि सुबह-सवेरे प्यारे नबी (सल्ल०) के अभिनन्दन का सौभाग्य प्राप्त करेंगे। यस्रिब की घाटियों से नुबूवत की पूर्णीमा का चांद उदित होता होगा और हम अपनी दृष्टि में उस ज्योति को भर लेंगे—पर जब खूब दिन चढ़ जाता तो घरों को निराश लौटते, इस निराशा में भी बड़ा रस था, विकलता का रस, बेचैनी का आनन्द! प्रकृति मिलन की आग को इस तरह बराबर भड़का रही थी। इन्तिज़ार की ज़्यादती शौक़ में जान डाल देती है।

अपना-अपना भाग्य, अपनी-अपनी रुचि और चिंतन का अपना-अपना फैलाव है। मक्के के लोग अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) से इतना द्वेष-भाव रखते थे कि हुज़ूर (सल्ल०) को वतन छोड़ देना पड़ा और यस्रिब वासियों के शौक़ और रुचि की यह दशा कि साक्षात इन्तिज़ार बन गये हैं। इन भाग्यवान व्यक्तियों का श्रद्धा-भाव कामना कर रहा है कि किस प्रकार यात्रा की दूरी समाप्त हो और मुहम्मद (सल्ल०) आज ही, बल्कि अभी तश्रीफ़ ले आयें। मक्के ने जिस संदेश को ठुकरा दिया, मदीने में उसे हाथों-हाथ लिया गया—मक्का उदासीन था और मदीना मोहित! एक ओर विद्वेष था दूसरी ओर प्रेम और श्रद्धा। यस्रिब वालों के दिल प्रकृति ने हिदायत के पवित्र जल से धोकर आईना बना दिये थे, जिनका उजलापन सत्य का प्रतिबिंब स्वीकारने के लिये पूरी तरह तैयार था और बहुत से आईने तो तत्काल सत्य-ज्योति से जगमगा भी चुके थे।

यस्रिब में कुछ ऐसे भाग्यवान ईमान वाले भी थे, जो प्यारे नबी (सल्ल०) का दीदार कर चुके थे, पर अधिकांश लोग इसी घड़ी का इन्तिज़ार कर रहे थे। जो लोग मक्के में हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में पहुंच कर आपका दीदार कर चुके थे, वे मन ही मन प्रसन्न थे कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) जब हम श्रद्धालुओं और दासों को देखेंगे, तो हमें पहचान कर मुस्करायेंगे—कितनी सुन्दर, मोहक और शान्ति से परिपूर्ण होती है मुहम्मदे अरबी (सल्ल०) की मुस्कराहट! दिल ग़मों से चाहे कितना ही निढाल क्यों न हो, पर मान्य रसूल (सल्ल०) की मुस्कान को देख दिल गुलाब-सा खिल उठता है। अब यह सौभाग्य हमें घर बैठे प्राप्त हो गया। पहले प्यासे कुंयें के पास जाया करते थे, अब अल्लाह का करना ऐसा हुआ कि ख़ुद कुवाँ प्यासों के पास आ गया—जो लोग दीदार का सौभाग्य अभी तक न प्राप्त कर सके थे, उन के हर्ष का कोई ठिकाना ही न था। शौके नज़ारा चुटकियां लेता कि वह आ रहे हैं, कुबा से चल दिये, रवाना हो चुके। कुबा वालों ने अल-बिदा कही, वह यस्रिब को तंहा नहीं तश्रीफ़ ला रहे थे, उनके जलवों में बरकतें हैं, सौभाग्य हैं, हिदायतों के पताके, भलाइयों के झंडे, नेकियों के ख़ज़ाने हैं। उनके शुभागमन से यस्रिब के इतिहास का नया अध्याय शुरू हो जायेगा और हां! देखना श्रद्धा-प्रदर्शन में कोई कमी न रह जाये! उनकी राह में सचमुच दिल और आंखें बिछा देना।

यस्रिब निवासियों को शुभ-सूचना मिली कि अल्लाह के रसूल हज़रत

मुहम्मद (सल्ल०) तशरीफ़ ला रहे हैं। बस अब कोई क्षण में समीर तुल्य सवारी आया ही चाहती है। मरुद्यानों का सिलसिला यसूरिब के आस-पास न होता तो नुबूवत का तारा कभी का दिखायी दे जाता। इंतिज़ार की घड़ियां समाप्त हुईं और दीदार की तमन्नाओं को मुबारकबाद दो कि वह जाने नज़्ज़ारा आने ही वाला है। जी भर कर उसके सौन्दर्य को देखना। तमाम यसूरिब प्यारे नबी (सल्ल०) की अगुवानी के लिए उमड़ आया। उनमें अधिकतर श्रद्धालु ही थे, तमाशाई तो बहुत थोड़े थे। जवान और बूढ़े लोग हथियारों से सज कर घरों से निकले, तलवारों के कौशल सुन्दर म्यानों के घूंघटों से झांकते थे, आंखों को भले लगने वाले तरकश, मूल्यवान नेज़े और मनमोहक पताकायें नयी छवि पैदा कर रही थीं। किसी ग़रीब के पास फटी हुई कवच थी तो उसे ज़ल्दी से कंधे पर डाल कर चल दिया। माओं ने बच्चों के मुंह धुला कर साफ़-सुथरे कपड़े पहनाये। ये भोले-भाले बच्चे भी प्यारे नबी (सल्ल०) के अभिनन्दन के सौभाग्य से वंचित क्यों रहें। यसूरिब के घर-घर में हर्ष नृत्य कर रहा था। आज यसूरिब वासियों की ईद थी, बल्कि 'ईदों की ईद।'

नभ-चक्षुओं और चांद-तारों की आंखों ने बहुत-से सम्राटों, शासकों और विजेताओं के भव्य स्वागत और अभिनन्दन समारोह देखे थे, पर यह अभिनन्दन अपनी महत्ता और पावनता की दृष्टि से सब में अनोखा और महत्त्वपूर्ण था। यसूरिब में आज कौन आ रहा था? संसार का सबसे बड़ा इंसान, खुदा का सर्वाधिक प्रिय बन्दा, नबियों का सरदार और रसूलों का पैग़म्बर—हज़रत इब्राहीम और मूसा (अलै०) के ग्रंथों, यसअयाह के पवित्र ग्रंथ और ज़कूक़ नबी की भविष्यवाणी में इस पुण्यवान हस्ती का उल्लेख था। हज़रत मसीह (अलै०) के हवारियों में यूहन्ना बड़े व्यक्तित्तव का मालिक गुज़रा है। इसी यूहन्ना से हज़रत मसीह (अलै०) ने फ़रमाया-

'मैं अपने आसमानी बाप (अल्लाह) से फ़ारक़लीत (मुहम्मद) को तलब करता हूं, ताकि वह तुम्हारे साथ हमेशा-हमेशा रहे। वह खुदा की रूह है और तुम्हें हर भली बात की शिक्षा देगा।'

ज़बूर में भी इस ढंग की भविष्यवाणी की गयी थी—

'उस (मुहम्मद) का नाम सदैव बाक़ी रहेगा, जब तक सूर्य की रोशनी रहेगी, उसके नाम का चलन भी दुनिया में रहेगा। संसार वाले उसके कारण, अपने लिये मुबारक समझेंगे और सारी शक्तियां उसके समक्ष उसका अभिवादन करेंगी।...

यसूरिब वाले जिसके स्वागत का सौभाग्य प्राप्त कर रहे थे, उस के पुण्य अस्तित्त्व पर अल्लाह ने अपनी कृपा पूरी कर दी थी, उस से बढ़ कर किसी को नवाज़ा न जाएगा। संसार के तमाम महान तथा आदरणीय व्यक्तियों में वह सर्वाधिक मान्य तथा आदरणीय था। उस का गुण-गान जितना भी किया जाये, कम है। प्रतिष्ठा और आदर के उच्च से उच्च पद भी उसके पद से नीचे ही हैं।

यसूरिब उस पावनतम और महानतम व्यक्तित्व के लिए 'हिजरत का घर' बन रहा था। यह प्रत्यक्षतः एक नयी-सी बात थी, पर किसी-किसी के अनुभूतिपरक दर्पण पर इस घटना का बहुत पहले प्रतिबिंब पड़ चुका था। कुरआन में यमन के बादशाह तुब्बअ का उल्लेख हुआ है। इसी तुब्बअ ने अपने साथ सेना लेकर यसूरिब पर आक्रमण कर दिया। औस और ख़ज़रज और यहूदियों ने पूरी शक्ति और अति वीरता के साथ प्रतिरक्षात्मक क़दम उठाये। यसूरिब के लोग सदा से विनम्र, शिष्ट और चरित्रवान माने जाते थे, रात में तो ये लोग तुब्बअ और उसके साथियों का आतिथ्य-सत्कार करते और दिन निकल आता तो रण-क्षेत्र में निकल कर मुक़ाबला करते। तुब्बअ अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ कि मैं इतने विनम्र और आतिथ्य-सत्कार करने वालों से लड़ कर अपनी अन्तरात्मा की हत्या कर रहा हूं। उस ने सन्धि की बात चलायी। दोनों पक्षों की ओर से कुछ लोग सुलह-सफ़ाई और बीच-बचाव के लिये नियुक्त हो गये। उन्हीं पंचों और मध्यस्थों में एक व्यक्ति अजैहा नामी था। अजैहा ने तुब्बअ से कहा, हम आप ही की क़ौम हैं। आपको हम से लड़ना न चाहिये था और यह भी कहा कि हमारे इस नगर पर आप विजय नहीं प्राप्त कर सकते। तुब्बअ ने पूछा, आख़िर इसका कारण क्या है? मैंने तो उच्च चरित्र देखकर समझौता किया है, वरना मेरी सेनाएं तो तुम्हारे नगर को धुएं की तरह उड़ा देतीं। अजैहा बोला, हमारा यह नगर एक नबी की शरण-स्थली है जो कुरैश में से होगा। इस उत्तर को सुन कर तुब्बअ ने यह पद पढ़ा—

'उस ने मुझे नसीहत की कि मैं उस आबादी से हट जाऊं, जो मुहम्मद (सल्ल०) के लिए सुरक्षित रखी गयी है'—अतीत का इतिहास भविष्य पर प्रकाश डाल रहा था।

वह जो किताब यसअयाह के बयालीसवें अध्याय के ग्यारहवें पाठ में लिखा था—

'जब वह आयेगा तो सुलअ (यसूरिब का पुराना नाम) के निवासी गीत

गायेंगे।'

तो उसके प्रकट होने की घड़ी आ गयी थी। हुज़ूर (सल्ल०) की सवारी को देख कर यसूरिब के लोगों की खुशी के मारे चीखें निकल गयीं, आपस में एक-दूसरे को मुबारकबाद दे रहे थे—'स्वागतम'—'आना मुबारक हो', 'अह्लन व सह्लन' के शोर से पहाड़ियां गूंज रही थीं, सब के चेहरों पर प्रसन्नता की लाली अभर आयी थी, मानो किसी ने सुर्ख़ ग़ाज़े और अंबर व गुलाल का हाथ उनके गालों पर फेर दिया है। हर्ष ने यसूरिब वासियों को मस्त बना दिया था, दिल सचमुच पहलू से निकले जा रहे थे।

मदीना की खजूरों की शाखाएं अपनी मूक भाषा में पुकार उठीं—

'यतीमों का सरपरस्त आ गया'।

उसके जवाब में पहाड़ी की चोटी से आवाज़ आयी—

'गुलामों का स्वामी तश्रीफ़ ले आया'।

और फिर दर व दीवार से स्वागत-गीत और अभिनन्दन-गान उच्चरित हुये। यसूरिब के कणों के मुंह में आज ज़ुबान आ गयी थी, पत्थर बोल रहे थे और कणों से आवाज़ निकल रही थी।

प्यारे नबी (सल्ल०) और हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) एक ही ऊंटनी पर सवार थे। अबूबक्र (रज़ि०) लोगों की श्रद्धा और उत्साह को देख कर खड़े हो गये और चादर का साया मुबारक सिर पर कर दिया, ताकि स्वामी और दास में अन्तर हो सके और लोग अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) और क़हाफ़ा के बेटे अबूबक्र (रजि०) को पहचान लें। अंसार की कम-सिन और मासूम बच्चियां सुर में सुर मिला कर अभिनन्दन गीत गा रही थीं—

अशरक़ल बद-रु अलैना

मिन सनीयातिल विदाई

(पूर्णीमा का चांद हम पर उदित हुआ है, विदाअ की घाटियों से)

उनके मिठास भरे गीतों ने इस भाव में और वृद्धि कर दी। अन्सारी लड़कियों के स्वर में प्रसन्नता, श्रद्धा और मन का उत्साह मिला-जुला था। वे धरती पर गा रही थीं और आसमान के फ़रिश्ते झूम रहे थे। उन्हें इस बात का होश ही न था कि स्वर-लहरियों में सन्तुलन भी रहा या नहीं, पर हृदय-भावना और श्रद्धा के भाव ने आप ही आप इन गीतों में क्रम पैदा कर दिया था। यह मन

की गहराइयों से उपजे गीत थे। उनके स्वर में प्रभाव होना ही चाहिए था।

यसरिब का हर व्यक्ति हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में निवेदन कर रहा था कि सरकार! मेरी कुटिया को सत्कार का अवसर दें, पर यह सौभाग्य अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०) को प्राप्त होना था। आप की ऊंटनी खुदा के हुक्म से अबू अय्यूब (रज़ि०) के मकान के सामने बैठ गयी और कुछ दिनों तक हुज़ूर (सल्ल०) ने वहां निवास किया। अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०) को अपने भाग्य पर गर्व हो रहा था। मारे खुशी के उनके पांव बहके-बहके पड़ रहे थे। अमामा (पगड़ी) के पेच खुल-खुल पड़ते। उनका अंधेरा घर ज्योतिर्मय हो गया था। रसूल रूपी सूर्य ने उसका भाग्य खोल दिया था।

कुलाहेगोशा-ए-दहक़ां ब आफ़ताब रसीद

(ग्रामीण की टोपी का कोना सूरज से जा मिला अर्थात उसका भाग्य चरमोत्कर्ष को पहुंच गया।)

लोगों ने अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०) को मुबारकबाद दी कि घर बैठे तुम्हें यह शाश्वत पूंजी मिल गयी। इतने महान, पावन तथा श्रेष्ठ मेहमान का संसार में आज तक किसी ने आतिथ्य-सत्कार न किया। अबू अय्यूब (रज़ि०) की कृतज्ञता-भाव से भरी निगाहें उत्तर देतीं कि अल्लाह ने मुझ ग़रीब पर कृपा की है, मैं इस अपार कृपा तथा असीम दया का अधिकारी न था। यह खुदा की देन है, वह जिस कण को चाहे, सूर्य बना दे। मैं और प्यारे नबी (सल्ल०) के आतिथ्य-सत्कार का सौभाग्य! —एक सपना देख रहा हूं—

वह आए घर में हमारे खुदा की कुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं। □

# मस्जिदे नबवी

किताब यसअयाह में जिसे सुलअ कहा गया था, वह बाद में जा कर यसूरिब हो गया और अब इसी शहर को हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्ल०) के शुभ आगमन ने मदीनतुन्नबी (City of the prophet) बना दिया। आज से उस का नाम बदल गया। इस्लाम के इतिहास में इसका उल्लेख मदीने के नाम से आयेगा। यह अब 'यसूरिब' और 'बतहा' नहीं रहा, मदीना हो गया-तय्यबा (पवित्रतम) भी और मुनव्वरा (ज्योतिर्मय) भी। इस धरती की धूल, रेत और कांटों तक को श्रद्धालु आंखों में जगह देंगे। हर ईमान वाले को इस पवित्र नगरी से हार्दिक लगाव और संबंध होगा, भावुक कवि 'मदीना' की प्रशस्ति में कविताएं रचेंगे और 'हाल व क़ाल' की महफ़िलों[1] में मदीना का नाम आते ही एक विशेष भावनात्मक स्थिति पैदा हो जायेगी।

मदीने में निवास के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) ने अल्लाह का घर बनाने का इरादा फ़रमाया। नज्जार परिवार की ज़मीन का एक टुकड़ा जिस में कुछ क़ब्रें और खजूरों के पेड़ थे, आप ने मस्जिद के लिये चुन लिया। नज्जार के घराने वाले बुलाये गये।

'—मैं यह ज़मीन क़ीमत देकर लेना चाहता हूं—अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया—'

'—हम क़ीमत तो ज़रूर लेंगे, पर आपसे नहीं ख़ुदा से—' क़बीला नज्जार के लोगों ने अर्ज़ किया।

यह ज़मीन यतीम बच्चों की थी। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको तलब फ़रमाया, क़ीमत देनी चाही, तो उन भाग्यवान बच्चों ने कहा ज़मीन आप को हम भेंट स्वरूप देते हैं, पर आप ने यतीमों की इस भेंट को स्वीकार करना पसन्द न किया। हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०) ने ज़मीन की क़ीमत अदा कर दी।

---

१. भावनाओं से ओत-प्रोत सभाएं,

पहले इस जमीन पर बनी हुई क़ब्रें उखड़वा कर फ़र्श को हमवार बनाया गया। यह काम हो गया तो निर्माण का आरंभ हुआ। अंसार और मुहाजिरों ने मिल-जुल कर मस्जिद बनानी शुरू की। कोई ज़मीन खोदता, कोई पत्थर लाता, कोई गारा बनाता, पूरी लगन और उत्साह के साथ निर्माण-कार्य आरंभ हुआ। हर व्यक्ति अपना कर्तव्य समझ कर इस कार्य को कर रहा था—उन्हीं के साथ अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) भी सामान्य मज़दूरों की तरह सहाबा का हाथ बटा रहे थे। स्वयं पत्थर उठा कर लाते और धूल से मुबारक जिस्म अट जाता। सहाबा अर्ज़ करते कि सरकार! आप कष्ट न करें। आप का काम हम सेवक कर लेंगे, पर हुज़ूर (सल्ल०) मुस्कामुस्का कर पत्थर उठाते जाते।

माह और साल की गति यह दृश्य देखने के लिये रुक-रुक जाती कि जिसके मुबारक सिर पर अल्लाह ने महानता और आदर का सब से अधिक मूल्यवान ताज रखा था, वह मज़दूरों के साथ पत्थर ढो रहा था। सौभाग्य-मस्तक-पसीने-पसीने हो जाता, स्वामी अपने दासों का हाथ बटा रहा था, नुबूवत बाहु-बल की भाषा में बोल रही थी। देखने में यह एक मस्जिद का निर्माण था, पर वास्तव में यह एक शिक्षा थी विजेताओं, शासकों, राष्ट्राध्यक्षों और अधिकारियों के लिये-कि सत्ता और धन के नशे में आपे से बाहर न हो जाना, इंसान की उच्चता सोने-चांदी के ढेरों, क़ाकुम व संजाब के पर्दों, हरीर व दीवा की क़बाओं, गगनचुम्बी भवनों और सुन्दरतम बाग़ीचों में नहीं है, सदाचरण, विनम्रता, सहानुभूति और एक दूसरे की सहायता से मानवता की उच्चता का मर्म जाना जाता है। बन्दा ऊंचे से ऊंचा हो कर भी बन्दा ही रहता है, खुदा नहीं हो जाता, दंभ, अभिमान दासों की नहीं उपास्य की शान है, जो बन्दा अपनी हद से आगे बढ़ने की कोशिश करेगा, अपमानित हो जायेगा और मानव के प्रति सहानुभूति न हो तो जड़ाऊ ताज पहन कर भी एक व्यक्ति अपमानित रहता है, मणि-मुक्ता की चमक से ताज पहनने वाले के आदर में लेश मात्रा भी वृद्धि नहीं होती और व्यक्ति खुदा की पहचान रखने वाला, सच्चरित्र तथा मानवों से सहानुभूति रखने वाला हो, तो सिर पर मिट्टी का टोकरा रख कर भी उस का मस्तक-भाल नीचा नहीं, ऊंचा ही रहता है।

यह मस्जिदे नबवी थी, सादगी का बेहतरीन नमूना, प्रत्यक्ष साज-सज्जा और ऊपरी टीप-टाप से दूर, दिखावे और बनावट की यहां गुंजाइश ही न थी,

अनगढ़ पत्थरों की दीवारें, खजूर के स्तून और उसी के पत्तों की छत, फ़र्श पर कंकरीट बिछी हुई, पर मस्जिद जिन सज्दों से भरी हुई थी, उन की ऊंचाइयों का अनुमान पवित्रात्माओं की निष्ठापूर्ण उपासनायें भी नहीं कर सकतीं। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) जहां क़दम रख दें, तो—

सालहा सज्दा ए-साहिब नज़रां ख़्वाहदबूद।

(वर्षों के लिये अन्तर्ज्ञानियों का नमन हो जायेगा)

फिर इस जगह तो हुज़ूर (सल्ल०) की मुबारक पेशानी के निशान पाये जाते थे, यहां की ऊंचाइयों का क्या पूछना, अर्श (आकाश) झुक-झुक जाता होगा, जब अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) का ज्योतिर्मय मस्तक धरती पर सज्दे में होगा।

मस्जिदे नबवी बन चुकी तो उसके पास आप की बीवियों के रहने के लिये हुजरे भी बने! किसी-किसी की छत तो इतनी नीची थी कि आदमी खड़ा होता तो उसका सिर छत से लग जाता। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०)की घर वालियों के मकान थे, क़ैसर व किसरा के महल, हिरक़्ल के आनन्द भवन, और भारत व ईरान के राजाओं के राजसी क़िले न थे, मानवता की संस्कृति के इतिहास का यह सर्वाधिक रोशन निशान था, इन्हीं चिन्हों को संसार वालों के लिये मार्ग-दीप बनना था, यही सादगी, संक्षिप्त सामग्री, निःस्वार्थता और साँसारिक भोग-विलास के प्रति उदासीनता मानवता के लिये हिदायत का दीपक और सौभाग्य का चिन्ह था। □

# फ़त्यून की हत्या

मदीना के मुसलमान, जिन्होंने मक्का के मुहाजिरों के साथ सगे भाइयों जैसा, बल्कि इससे भी बढ़ कर नेकी, सहानुभूति विनम्रता और सुख-दुख में काम आने का बर्ताव किया, इस्लाम के इतिहास में 'अंसार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये लोग अल्लाह के दीन के सच्चे और निष्ठावान सहायक थे। अंसार का प्राचीन देश यमन था। यमन में जब विनाशकारी बाढ़ आयी और उस ने सारे यमन को नष्ट-विनष्ट कर दिया, तो उस क़ह्तानी क़बीले के लोग यमन छोड़ कर मदीना चले आये और यहीं आबाद हो गये। मदीना अंसार के पुरखों का द्वितीय देश था। सैकड़ों वर्ष बीतने के बाद भावी नस्लें मदीना ही की होकर रह गयीं। इस परिवार में दो व्यक्ति औस और ख़ज़रज बड़े नामी और प्रभावी व्यक्ति गुज़रे हैं। तमाम अंसार इन्हीं दो भाइयों की औलाद हैं। आगे चलकर औस और ख़ज़रज दो स्थायी परिवार बन गये।

प्राचीन यसूरिब (मदीना) में यहूदियों को बहुत कुछ शक्ति और प्रभुत्त्व प्राप्त था। यहूदी धन-सम्पति में सदा से 'क़ारून' होते आये हैं। कंजूसी उन की प्रकृति और लोभ उनका स्वभाव है। रुपये पैदा करने के ढंग उनको खूब आते हैं और इसमें वे हराम व हलाल का भेद-भाव नहीं करते। रुपये के आधिक्य ने यहूदियों को यसूरिब में सत्तासीन बना दिया, सोने-चांदी के सहारे उनका प्रभुत्त्व स्थापित हो गया।

यहूदियों में फ़त्यून नामक एक रईस था, अति ऐश परस्त, व्यभिचारी और दुराचारी, इसी फ़त्यून ने फ़रमान जारी किया कि यसूरिब में जो कुंवारी ब्याही जाए, पहली रात उसके साथ बसर करे। यह आदेश यसूरिब वासियों के स्वाभिमान को चुनौती और उन की प्रतिष्ठा, आदर और उनकी इज़्ज़त और आबरू को खुला चैलेंज था। यहूदी सामान्य व्यक्तियों में स्वाभिमान नाम की कोई चीज़ थी ही नहीं, उन्होंने इस निर्लज्जता को सहन कर लिया। फ़त्यून के शयन कक्ष में कौमार्य का खून होने लगा।

मालिक बिन अज्लान अंसार का सरदार था। उस की बहिन का ब्याह हुआ तो वह विवाह के दिन घर से निकल कर बाहर आयी और मालिक बिन अज्लान के पास से गुज़री। मालिक क्रोध से लाल-पीला हो गया। ब्याह के दिन नयी-नवेली दुल्हन का घर से बाहर क़दम रखना स्वाभिमान के विरुद्ध था। वह इसी क्रोध तथा रोष की स्थिति में घर के भीतर आया–

'यह तुम ने क्या किया? परिवार की इज़्ज़त को धूल में मिला दिया' –मालिक ने बहिन से पूछा।

'–जी! यह तो कुछ नहीं हुआ और -'बहिन की बात पूरी होने से पहले इब्ने अज्लान बोल पड़ा।

'–इस से अधिक और क्या होगा? शरीफ़ दुल्हनें घर से बाहर नहीं जाया करतीं।' मालिक की बहिन ने उत्तर दिया:–

'–लेकिन कल (फ़त्यून के शयन-कक्ष की ओर संकेत था) जो होगा, वह इस से बढ़कर होगा। बस मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकती। लाज और शर्म ने मेरे होंठों को सी दिया है।'

बहिन का उत्तर सुनकर मालिक का स्वाभिमान तिलमिला उठा। दूसरे दिन जब उसकी बहिन नयी दुल्हन के रूप में बन-संवर कर फ़त्यून के यहां पहुंची तो मालिक बिन अज्लान भी सहेलियों के झुरमुट में ज़नाना कपड़ा पहन कर पहुंच गया। मालिक ख़ंजर छिपाये हुये मौके की घात में था, दिन बीता, शाम आयी, और रात हो गयी। फ़त्यून खुशी-खुशी शयन-कक्ष की ओर चला। मालिक की बहिन सहमी हुई बैठी थी। यह उसकी इज़्ज़त व आब्रू लूटे जाने की रात थी। फ़त्यून ने शयन-कक्ष में क़दम रखा ही था कि मालिक बिन अज्लान ने झपट कर फ़त्यून पर ख़ंजर का वार किया और बदकार फ़त्यून को ठंडा कर दिया।

मालिक बिन अज्लान अच्छी तरह जानता था कि यहूदी सारे यसूरिब पर छाये हुये हैं, यहां रहूंगा तो पकड़ा जाऊंगा। मेरी हिमायत में एक आवाज़ भी शायद बुलंद न होगी। औस व ख़ज़रज ने विरोध भी किया तो यहूद उन का गला दबा देंगे कि तुम हमारे सरदार के हत्यारे का समर्थन करते हो। फ़त्यून की हत्या करके वह यसूरिब से भाग कर शाम पहुंचा। अबू जब्ला ग़स्सानी वहां का हाकिम था, उसमें सज्जनता भी थी और मानवता भी। मालिक बिन अज्लान ने

तमाम घटनायें अबू जब्ला को सुना दीं। अबू जब्ला की शालीनता को बड़ा आघात लगा। उस ने तलवार पर हाथ रख कर कहा कि फ़त्यून की बद-कारियां अब ज़्यादा दिन तक जारी नहीं रह सकतीं और न यहूदी तुम्हारे परिवार पर जुल्म व सितम कर सकते हैं।

अबू जब्ला बड़ी भारी सेना लेकर यस्रिब पर चढ़ आया, पहले दिन उसने औस व ख़ज़रत के सरदारों को भोज पर निमंत्रित किया और उनको अमूल्य उपहार और ख़लअत[1] दे कर विदा किया। दूसरे दिन यहूदियों के सरदारों को दावत दी। यहूदी प्रसन्न थे कि हम औस व ख़ज़रज के सरदारों से हर तरह बढ़-चढ़ कर हैं, अबू जब्ला हमें उन से अधिक मूल्यवान ख़लअत देगा, पर अबू जब्ला की यह चाल थी। उस ने यहूदी सरदारों की हत्या कर दी और इस प्रकार यस्रिब में यहूदियों की शक्ति समाप्त हो गयी और औस व ख़ज़रज ने शक्ति प्राप्त कर ली। मदीना के अंसार उन्हीं की सन्तान थे। □

---

१. वह वस्त्र, जो किसी बड़े व्यक्ति की ओर से सम्मानार्थ किसी को दिया जाए।

# आतिथ्य-सत्कार

अंसार अपने स्वभाव के अनुसार बड़े सुशील, मिलनसार, विनम्र, उदार और अतिथियों का बढ़-चढ़ कर आतिथ्य-सत्कार करने वाले थे। इस्लाम ने इन गुणों को और जगा दिया। सत्य को स्वीकारने के लिए वे पहले ही से तैयार थे। सत्य की आवाज़ कान में पहुंचते ही दिल में घर कर गयी। इस्लाम के संदेश को मक्का वालों की तरह उन्होंने ठुकराया नहीं, बहुत जल्द स्वीकार कर लिया, मानो सत्य की आत्मा का उन्हें पहले ही से इंतिज़ार रहा हो। मदीना-वासियों में पहली बार और दूसरी बार सत्य-आहवान को स्वीकार करने के बाद ही से औस व ख़ज़रज में इस्लाम के प्रचार का आरंभ हो चुका था और अब पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की हिजरत के बाद तो यहूदियों के सिवा तमाम मदीना ईमान की दौलत पा चुका था। अंसार[1] सही अर्थों में इस्लाम और मुसलमानों के सहायक सिद्ध हुये। इस्लाम की सेवा में उन्हों ने जान और माल पेश करने में कभी कोताही नहीं की। मक्का का अजनबी इस्लाम मदीने में समर्थन और सहायता पा कर विजयी बन गया। विवशता का युग बीत चुका था, अब सहायता पा कर विजय पाने, छा जाने और ग़लबा पा लेने का युग शुरू हो रहा था।

मुहाजिर (अर्थात देश—परित्याग करने वाले) जब मदीना में आये, तो वे हर प्रकार से लुटे-पिटे और बे-सहारा लोग थे, परेशानी उनके चेहरों पर पढ़ी जा सकती थी। इस्लाम लाने के बाद उन्हें किसी प्रकार की राहत ही नहीं मिली। मक्का के शत्रुओं के पीणाजनक रवैयों ने उनसे जीवन की सारी प्रसन्नताएं छीन ली थीं। अपने-पराये सब उनके शत्रु और लहू के प्यासे थे। मक्का वालों ने सहाबा किराम का एक प्रकार से बहिष्कार कर रखा था। सांसारिक लाभ प्राप्त करने की राहें उन पर क़रीब-क़रीब बंद थीं। मक्का से वे ख़ाली हाथ आये, किसी-किसी देह पर तो कपड़े भी सहीसालिम न थे। परदेश में तो बे-सहारों को

---

१. अंसार का अर्थ होता है सहायता करने वाला,

और अधिक कष्ट होता है, पर अंसार के सद्-व्यवहार ने मुहाजिरों को परदेस में परेशान न होने दिया। जहां तक उनसे हो सकता था, अपने परदेसी भाइयों का दिल रखने और उनकी सहायता करने में उन्होंने कोताही नहीं की।

यह भौतिक संसार कार्य-कारण का संसार है। अल्लाह ने जीवन को बाक़ी रखने के लिए साधन पैदा कर दिए हैं और इन साधनों का उपयोग किये बिना सभ्यता और संस्कृति का जीवन जीने वालों का काम नहीं चल सकता। इंसानों को एक-दूसरे की सहायता और सुख-दुख में काम आने की क़दम-क़दम पर ज़रूरत पड़ती है, कोई व्यक्ति इस संसार में अकेला नहीं रह सकता। किसी न किसी हद तक दूसरे लोगों से संबंध बनाये रखना पड़ता है, यहां तक कि संयास भी सांसारिक संबंधों से बिल्कुल अलग नहीं रह सकता।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) स्वभावों को समझने वाले और सच्चाई की तह तक पहुंचने वाले थे। मुहाजिरों का बे-सहारा और परेशान होना आप (सल्ल०) की निगाहों में था। इस का भी हुज़ूर (सल्ल०) को अन्दाज़ा था कि अंसार अपने मुहाजिर भाइयों की सहायता को कहीं भार न समझें। अल्लाह ने इस्लाम की सेवा के लिये उन के दिल खोल दिये हैं। मक्का वालों की तरह उनके सीनों में तंगी और दिलों में भिंचावट नहीं है। हुज़ूर (सल्ल०) ने मुहाजिरों और अंसार में 'एक दूसरे को भाई बना लेने' की रीति प्रचारित की। अंसार सेवा में उपस्थित थे। आप ने अति स्नेह भरे स्वर में उन से फ़रमाया—

'ये (मुहाजिरों की ओर संकेत करते हुये) तुम्हारे भाई हैं।'

फिर हुज़ूर (सल्ल०) मुहाजिरों में से दो और अंसार में से दो आदमियों को बुला कर फ़रमाते, 'यह और तुम भाई-भाई हो।'

इस तरह अंसार और मुहाजिरों में भाईचारा क़ायम हो गया।

अंसार ने मुहाजिरों से सच-मुच सगे भाइयों जैसा व्यवहार, बल्कि इससे भी बढ़कर अपने आक़ा और मौला के इर्शाद का उन्होंने व्यवहार की भाषा में समर्थन किया। अन्सारी अपने साथ मुहाजिरों को ले जाते और अपने घरों की एक-एक चीज़ बता कर कहते कि इस माल में आधा तुम्हारा और आधा हमारा है। बकरियां, ऊंट, खजूरों के बाग़, खेत, तात्पर्य यह कि हर चीज़ उन्होंने आधी-आधी बांट कर रख दी, यहां तक कि कुछ अंसार तो इस पर तैयार हो गये कि दो बीवियों में से एक बीवी को तलाक़ दे कर अपने मुहाजिर भाई के हवाले कर दें। मानवता का इतिहास ऐसी सहानुभूति, उदारता और आतिथ्य-सत्कार

का उदाहरण प्रस्तुत करने में विवश है।

इस जगत में लोग सदा से स्वार्थ के पुजारी और मस्लहत के पीछे-पीछे चलने वाले होते आए हैं। भाई-भाई के साथ चाल और बनावट से काम लेता है। हर व्यक्ति अपने निज को दूसरे के लाभ हानि पर प्रमुखता देता बल्कि उसे श्रेष्ठ समझता है, त्याग-भाव में भी दुनिया वालों का कोई स्वार्थ अवश्य सम्मिलित होता है, नाम, ख्याति, दिखावा, प्रशंसा प्राप्त करने की कामना! दूसरों के मुख से यह सुनने की तमन्ना कि भाई! अमुक व्यक्ति बड़ा दानी, लम्बे हाथों वाला और त्याग-भाव रखने वाला है। एक पराए व्यक्ति के साथ यह किया, वह किया– या फिर जिसके साथ सद्व्यवहार किया जाता है, उसके मुआवज़े और बदल की तमन्नाओं में यह इच्छा छिपी होती है कि खुदा न करे! हम पर ऐसा समय आ पड़ा तो यह व्यक्ति हमारे भी काम आएगा– पर अंसार का त्याग, निष्ठा और सच्चाई के सिवा और किसी भावना और तमन्ना से परिचित ही न था, अल्लाह और रसूल (सल्ल०) के प्रेम में वह सब कुछ कर रहे थे। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के आदेश का पालन उन्हें स्वीकार्य था।

जब भाईचारा क़ायम हुआ, तो अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) जो इंतिहाई बे-सर व सामान मुहाजिर थे, साद बिन रबीअ (रज़ि ०) के भाई बने। साद ने कहा, मेरी दो पत्नियां हैं, इन में से जो पत्नी तुम्हें पसन्द आए, उसे मैं तलाक़ दिए देता हूं, तुम उससे विवाह कर लेना। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) ने आभार प्रदर्शित करते हुए इंकार कर दिया। फिर साद उन्हें अपने घर ले गये और तमाम चीज़ें दिखा कर कहा कि इनमें से आधी तुम ले लो। अब्दुरहमान (रज़ि०) ने फ़र्माया–

'भाई! तुम्हारा माल तुम्हें मुबारक रहे, मुझे तो बाज़ार का रास्ता बता दो।'

साद ने उन्हें क़ैनुक़ाअ के बाज़ार का रास्ता बता दिया। अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) ने पहले पनीर मोल ले कर बेचना शुरू की, नफ़ा होने लगा तो कुछ बचा कर दूसरा सामान ख़रीद लिया। व्यापार में वृद्धि होती गयी। वह ईमानदार थे, मेहनती थे, और ज़ुबान के सच्चे थे। जिस से जो बात कह दी और सौदा कर लिया, उस से न फिरते, चाहे उस में कितना ही टोटा क्यों न आ जाए। अल्लाह ने अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) के व्यापार में वृद्धि की, काम फैलता और बढ़ता ही चला गया, यहां तक कि बाहर के शहरों से सात-सात सौ ऊंटों

पर उनके व्यापार का सामान लद कर मदीना मुनव्वरा आता था। अल्लाह ने अंसार को यह भी दिखा दिया कि तुम जो मुहाजिरों की सहायता कर रहे हो, उस पर गर्व न करना। यह भी हमारी ही कृपा और हमारा ही एहसान है कि इस सौभाग्य और सत्कार्य के लिए तुम्हें तैयार कर दिया है। हम यह भी कर सकते हैं कि तुम्हारी सहायता किसी को न मिले और वह अपने बाहु-बल के आधार पर तुम से अधिक धनी हो जाए।

अन्सार स्वभावतः नम्र, सज्जन और भले लोग थे। उन्होंने मुहाजिरों पर न तो एहसान धरा और न उनसे अपने दुख-सुख में काम आने का बदला चाहा। उन की सहानुभूति स्वार्थ से परे थी, उनकी सेवाएं निष्ठापूर्ण थीं। अल्लाह और रसूल (सल्ल०) के आदेश के पालन में वे इतना सब कुछ कर रहे थे, अल्लाह ने इन सत्कार्यों को स्वीकार कर लिया। इतिहास में वे 'रसूल के अंसार' (अर्थात सहायक) की उपाधि से याद किए जाते हैं और धरती ही नहीं, आसमानों में भी उनके प्रशस्ति-गीत आज तक गूंज रहे हैं। □

# क़ुरैश की तैयारियां

वे क़ुरैशी शत्रु, जिन्होंने हब्श तक सहाबा किराम का पीछा किया था और इस्लाम-विरोध, जिन की छुट्टी में पड़ा था, मदीना में पैग़म्बरे इस्लाम और आपके साथियों को भला चैन से किस तरह बैठने देते, उन्होंने षडयन्त्र और मदीने पर आक्रमण की तैयारियां शुरू कर दीं, अपने जासूस क़ुरैश ने मदीना में भेज दिए थे, जो मुसलमानों की गतिविधियों की सूचनाएं मक्का भेजते रहे।

क़ुरैशी शत्रु नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद यह समझते थे कि उनके नगर मक्का में मुसलमान बे-सहारा होकर रह गये हैं। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के जाने के बाद उन की हिम्मतें टूट गयी हैं। अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) ही ने इन लोगों में जान देने की और त्याग करने की रूह फूंकी थी। जब वही यहां से चले गये, तो ये बेचारे अब किस के बल-बूते पर हमारी वज्रताओं का मुक़ाबला करेंगे। सरदार ही न रहा तो उस की सेना कब तक पांव जमाए रहेगी, पर उनकी आशाएं ग़लत सिद्ध हुईं। बहुत से मुसलमान तो अपना सबकुछ छोड़-छाड़ कर मदीना चले आए और हिजरत के पावन कर्त्तव्य के निभाने में उन्होंने घर-बार, माल-दौलत, यहां तक कि बीवी-बच्चों और अज़ीज़ों तक की परवाह न की और अल्लाह की राह में हर क़ुर्बानी और हर त्याग को ख़ुशी से गवारा कर लिया, कोई संबंध इस भले कार्य से उन्हें रोक न सका। हर सम्बन्ध को तोड़ कर और हर चीज़ को छोड़ कर वे घर से चल पड़े। जो मुसलमान मक्का में रह गये, उन्होंने धैर्य, साहस, अडिगता और दृढ़ निश्चय का उदाहरण प्रस्तुत किया। शत्रु उन को मारते-पीटते, क़ैद का कष्ट देते, गर्म पत्थरों और आग्नेय लोहों से शरीरों को दाग़ते, पर सहाबा किराम (रज़ि०) का ईमानी जोश किसी प्रकार भी कम न होता, बल्कि कष्ट पहुंचने, दमन-चक्र चलने और अन्याय नीति का शिकार बनने से तो उनका ईमान और बढ़ जाता। सहाबा किराम (रज़ि०) अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के अनुयायी और सृष्टि के स्रष्टा के पुजारी थे। स्वयं प्यारे नबी (सल्ल०) ने उन में

यह विश्वास जन्मा दिया था कि मुहम्मद (सल्ल०) चाहे तुम्हारे साथ रहें या न रहें, यहां तक कि वह संसार ही से विदा हो जाएं, फिर भी तुम्हारे ईमानी जोश में कमी न आनी चाहिए, इसलिए कि तुम ख़ुदा के पूजने वाले हो और ख़ुदा जिंदा है। और सब कुछ थामे हुए है। मुसलमानों की इस अडिगता को देखकर शत्रुओं को बड़ी झुंझलाहट होती कि इस्लाम की लगन तो हिजरत के बाद भी कम नहीं हुई, जो मुसलमान मक्का में रह गये हैं, उनके ईमानी जोश और सुदृढ़ विश्वास का वही हाल है।

मदीने से कुरैशी शत्रुओं के पास सूचनाएं आतीं कि मदीने में बहुत तेज़ी के साथ इस्लाम फैल रहा है। हिजरत से पहले ही बहुत से लोग मुसलमान हो चुके थे और हिजरत के बाद तो यह रफ़्तार और अधिक तेज़ हो गई, क़बीले के क़बीले मुसलमान होते चले जाते हैं। यहूदी और उनके प्रभावाधीन कुछ लोग इस सौभाग्य से अब तक महरूम हैं, वरना औस व ख़ज़रज के घर-घर इस्लाम का उजाला फैल चुका है और मदीने के सरदार और 'बड़े' अंसार अल्लाह और रसूल (सल्ल०) के आज्ञापालन का पट्टा अपनी गरदनों में डाल चुके हैं।

इन ख़बरों ने कुरैशी शत्रुओं में उत्तेजना फैला दी। वे घबराए, आशा के विपरीत जब कोई बात हो जाती है तो आदमी घबरा, जाता है। मश्विरा बल्कि फ़ैसला हुआ कि मदीने में अपने दुश्मनों को हम चैन से न बैठने देंगे। अगर उनको मोहलत मिल गयी और हमारी ओर से कोई प्रतिरोध न हुआ तो सारे अरब पर इस्लाम छा जाएगा, हमारे उपास्यों का ईश्वरत्व समाप्त हो जाएगा और हमारी पारिवारिक प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी, यह अपमान कैसे भी सहन नहीं किया जा सकता। कुरैश के वंशगत सम्मान को हर मूल्य पर बचाया जाएगा और वह बुत, जो सदियों से हमारी कठिनाइयां दूर करते रहे हैं, उनकी बड़ाई को हम किसी तरह नीचा न होने देंगे। अभी हमारे पास शक्ति है, बल है, प्रभुत्त्व प्रबल है, सैनिक शक्ति रुपए-पैसे की बहुतायत और हथियारों का बाहुल्य है। अरब क़बीले हमारा आदर करते हैं, ग्रामीण हमें सरदार मानते हैं। काबे का स्वामित्त्व और देख-भाल हमारे हाथ में है। सनआ से लेकर तायफ़ तक हमारा नेतृत्व स्वीकारा जाता है। मुसलमानों की संख्या भी अधिक नहीं हुई। उनका बल इस ढंग से तोड़ा जा सकता है।

कुरैश ने मदीना के सबसे बड़े रईस अब्दुल्लाह बिन उबई के पास अपना दूत भेजा कि या तो तुम स्वयं साहस से मुहम्मद (सल्ल०) की हत्या कर दो और

अगर तुम ने ऐसा न किया, तो हम कुरैश पूरी शक्ति के साथ तुम पर आक्रमण करके तुम्हारी क़ौम का सफ़ाया कर देंगे। एक ओर तो कुरैश ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हत्या पर अब्दुल्लाह बिन उबई को उभारा, बल्कि धमकी दी और दूसरी ओर उनके नव-जवानों की टोलियां मदीने के आस-पास गश्त लगाने लगीं, अंसार की चरागाहों को ये लोग तबाह कर डालते, मरुद्यानों को काट देते और मदीनी चरवाहों से बकरियां छीन ले जाते, कुरैश इस तरह अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके साथियों की शक्ति का अन्दाज़ा करना चाहते थे कि उन में शक्ति होगी तो हमारी छेड़-छाड़ का अवश्य उत्तर देंगे और होते-होते लड़ाई की नौबत आ जाएगी। मदीना से बाहर मुसलमानों का कोई प्रभाव नहीं है, तमाम लोग हमारा साथ देंगे, मुसलमानों को एक ही झड़प में पीस कर रख देंगे।

कुरैश के ये ओछे हथियार भी निरर्थक सिद्ध हुए, तो उन्होंने मदीने पर आक्रमण की तैयारी का इरादा कर लिया। वे मदीने पर पूरी शक्ति के साथ निर्णायक आक्रमण करना चाहते थे, पर इस काम के लिए हथियारों और धन-राशि की आवश्यकता थी। दूसरों के नगर पर चढ़कर जाना खेल नहीं था। यह लड़ाई उनकी ख़ानदानी लड़ाइयों और कबीलागत गृह-युद्धों से बिल्कुल भिन्न थी। युद्ध के ख़र्चे के लिए उन्होंने यह उपाय सोचा कि अब की बार जो तिजारती क़ाफ़िला माल व अस्बाब ले कर जाए उस का लाभ लड़ाई के ख़र्चे में लगना चाहिए। इस तरह सारी क़ौम लड़ाई में शरीक हो जाएगी। और किसी एक कबीले पर बोझ न पड़ेगा।

इस प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप देने के लिए कुरैशी सरदारों ने उत्तेजनापूर्ण भाषण दिए। लोगों को सहायता पर उभारा कि भाइयो! यह क़ौम और वतन की इज़्ज़त का मामला है। हमारे लिए इस से ज़्यादा नाज़ुक घड़ी फिर न आएगी। मुसलमानों के बल को न तोड़ा गया तो ये लोग शक्ति प्राप्त कर स्वयं हमारा सफ़ाया कर देंगे। क्या हम उस दिन के देखने के लिए ज़िंदा रहेंगे, जब इन मुसलमानों के हाथों लात व हुबल के टुकड़े-टुकड़े होते होंगे? हमारी तलवारों ने सदैव कुरैश की महानता की रक्षा की है। हम ने सीनों पर घाव खा कर भी क़ौम की प्रतिष्ठा को नीचा नहीं होने दिया।

कुरैश अलंकृत भाषा-सम्राट थे। आग्नेय भाषण करना उन्हें ख़ूब आता था। वे अच्छी तरह जानते थे कि लड़ाई के लिए अपनी क़ौम को किन शब्दों में

उभारा जाता है और किस रस का वाक्य उनके स्वाभिमान पर तीखा वार कर सकता है। मक्के की तमाम आबादी ने अपना सब कुछ इस तिजारती क़ाफ़िले की भेंट चढ़ा दिया, विधवाओं और धनहीन महिलाओं तक ने अपना बचा कर रखा हुआ धन तिजारत में लगा दिया। यह क़ाफ़िला इस निश्चय के साथ मक्के से शाम की ओर रवाना हुआ कि बस हम तनिक शाम से लौट कर आ जाएं, फिर हम नहीं या मुहम्मद और उनके साथी नहीं। इतनी ज़ोर की लड़ाई होगी और ऐसा घमासान युद्ध होगा कि अरब की धरती दहल जाएगी। अब तक हम मुसलमानों को व्यक्तिगत रूप से सताते रहे हैं, पर अब उन से सारी क़ौम एकदल होकर लड़ेगी, हमारी तलवारें मुसलमानों को बता देंगी कि क़ुरैश की पारिवारिक महानता से खेलना खेल नहीं है, वह समय दूर नहीं कि अबू क़हाफ़ा के बेटे, ख़त्ताब के सपूत और अबू तालिब के पुत्रों की लाशें धरती पर तड़पती होंगी। इन मूर्ख और ना-समझ अंसार को भी इस्लाम-प्रेम का बदला मिल जाएगा। बड़े आए हमारे शत्रुओं को शरण देने वाले।

क़ुरैश का तिजारती क़ाफ़िला रवाना हो चुका, तो उन्हीं दिनों में मक्का में अफ़वाह फैल गयी कि मुसलमान क़ाफ़िले को लूटने के लिए मदीने से चल दिए हैं। और किसी मंज़िल पर हमारे क़ाफ़िले से उन का संघर्ष हो जाएगा। इस सूचना का प्रचारित होना था कि क़ुरैशी शत्रुओं के रोष और उत्तेजना का तूफ़ान जोश में आ गया। उन्होंने एक मुख होकर कहा कि मुसलमानों को क़ाफ़िले पर हमला करने का हम अवसर ही नहीं आने देंगे, हम स्वयं मुसलमानों से जाकर गुथ जाएंगे। और उनकी तलवारें म्यानों से निकलने भी न पाएंगी कि हमारी चमचमाती धारदार तलवारें उन पर टूट पड़ेंगी। हमारे क़ाफ़िले पर हमला हमारे स्वाभिमान के विरुद्ध खुली चुनौती है, उसका पूरी शक्ति से उत्तर देंगे। हमले की पहल हमारी ओर से होगी।

रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को जब इस घटना की सूचना मिली, तो हुज़ूर (सल्ल०) ने सहाबा किराम (रज़ि०) को एकत्र किया, सब लोग एक आवाज़ पर इकठ्ठा हो गये, इन में मुहाजिर भी थे और अंसार भी! नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद इतना बड़ा सम्मेलन आज तक न हुआ था। हुज़ूर (सल्ल०) ने सहाबा (रज़ि०) के सामने पूरी स्थिति रखी। इसके उत्तर में हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) और दूसरे सहाबा (रज़ि०) ने अति उत्साहवर्द्धक भाषण किए और भाषणों में अपने निश्चय, संकल्प, विश्वास, आस्था और

इस्लाम के लिए हर प्रकार के त्याग और कुर्बानी को व्यक्त किया, ऐसा लग रहा था कि मुहाजिर अल्लाह के धर्म की सुरक्षा के लिए मौत से हाथ मिलाने को तैयार हैं, उन के मन में न किसी प्रकार का भय है और न किसी प्रकार का संकोच! लड़ाई होगी तो ये जांनिसार बर्छियों और तलवारों के घाव खा कर अपनी शूर-वीरता प्रदर्शित करेंगे, बढ़ते हुए कदम पीछे हटेंगे नहीं, खून की हर बूंद से यह हक्परस्त अल्लाह के पालनहार होने की गवाही देंगे।

मुहाजिर भाषण कर रहे थे, पर हुजूर (सल्ल०) बार-बार अंसार की ओर देखते थे। अंसार इसलिए मौन थे कि मुहाजिर जो कुछ कह रहे हैं, वही हमारा विचार है, यह हमारे दिलों की बात हो रही है। मुहाजिरों से हम अंसार किसी प्रकार पीछे न रहेंगे, पर जब अंसार ने महसूस किया कि प्यारे नबी (सल्ल०) उनके इरादों का हाल सुनना चाहते हैं, तो कबीला खज़रज के सरदार हज़रत साद बिन मुआज़ (रज़ि०) खड़े हुए और पूरे उत्साह के साथ, शिष्टाचार की सीमाओं में रह कर, बोले—

'क्या हुजूर (सल्ल०) का संकेत हम अंसार की ओर है? उस खुदा की कसम! जिस ने हुजूर को नबी बनाया है, आप आज्ञा दें तो नदी में कूद पड़ें, शत्रुओं के मुकाबले में आना हमें बोझ नहीं होता। हम अंसार में से एक आदमी भी पीछे न रहेगा। हुजूर जहां चाहें, हमें ले चलें।'

साद बिन मुआज़ भाषण कर चुके तो हज़रत मिक्दाद खड़े हुए—

'हुजूर (सल्ल०)! हम हज़रत मूसा की तरह कदापि न कहेंगे कि आप और आपका खुदा लड़ें, हम तो यहां बैठे-बैठे तमाशा देखा करेंगे। हम अंसार तो हुजूर (सल्ल०) के सामने से, पीछे से और दाएं-बाएं से खड़े होकर लड़ेंगे।'

अंसार के उत्साहवर्द्धक भाषण सुनकर हुजूर (सल्ल०) का मुबारक चेहरा खुशी से चमक उठा। हुजूर (सल्ल०) की प्रसन्नता को अंसार और मुहाजिर अच्छी तरह महसूस कर रहे थे, वे लोग भी प्रसन्न और सन्तुष्ट थे कि दासों का निवेदन स्वामी ने स्वीकार कर लिया। जब अंसार लड़ाई के लिए हुजूर (सल्ल०) से बैअत (वचन देना) कर रहे थे, तो असद बिन जुरारा ने उठ कर कहा—

'भाइयो! यह भी मालूम है कि तुम किस चीज़ पर बैअत कर रहे हो? यह अरब व अजम और जिन्नों और इंसानों से युद्ध की घोषणा है।'

हज़रत असद बिन जुरारा ने प्रत्यक्ष में बहुत डरा देने वाली बात कही थी

अंसार की जगह कम-हिम्मत लोग होते तो सोच में पड़ जाते; जान का भय, मस्लहतों की आड़ ढूंढने लगते, दबी हुई भाषा में कूटनीतिक उत्तर दिया जाता, पर ये रसूल (सल्ल०) के सहायक थे। ये अपनी जानें अल्लाह के हाथ बेच चुके थे और रसूल के आदेश के बाद संकोच न करना और उसके पालन के लिए बहाने ढूंढना, उनके धर्म में कपटाचार था। वे सब एक जुट होकर बोले—

'हां, हां, हम इसी पर बैअत करते हैं।'

रमज़ानुल मुबारक की १२ तारीख़ को अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) लगभग तीन सौ जां-निसारों को साथ लेकर मदीना से चले। आबादी से कोई एक कोस का फ़ासला तै करने के बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने सिपाहियों पर चयन-दृष्टि डाली। इनमें जिनकी छोटी उम्र थी, उनको मदीना लौटा दिया गया। उमैर बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) कम-सिन थे। शहीद होने का शौक़ और जिहाद का जज़्बा उन को यहां ले आया था। यह दृश्य देख कर कि बच्चों को मदीना वापस किया जा रहा है, वे पंजों के बल खड़े हो गये, ताकि बड़ी उम्र के लोगों में उन का क़द पस्त नज़र न आए और उन्हें लौटा न दिया जाए। हुज़ूर (सल्ल०) ने उन से वापस होने के लिए इर्शाद फ़रमाया, तो वह बे-अख़्तियार रो पड़े और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उन्हें लड़ाई के लिए साथ चलने की अनुमति दे दी। साद उनके बड़े भाई थे। उन्होंने स-उत्साह कम-सिन भाई के गले में तलवार डाल दी।

उमैर की आँखों में या तो आंसू झिलमिला रहे थे और हुज़ूर (सल्ल०) ने इस्लामी सेना में सम्मिलित होने की अनुमति जो दे दी तो उनके चेहरे पर प्रसन्नता खिल उठी। मारे खुशी के चेहरा लाल गुलाब हो गया। माथे पर आकाश-गंगा चमकने लगी, शौक़ की अति से दिल उछलने लगा। ईमानी जोश उमैर को उभारता था कि इस्लामी सेना के ओ कम-सिन सिपाही! अपने भाग्य पर गर्व कर कि तू इस लड़ाई में अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की ओर से लड़ने के लिए जा रहा है, जो इस्लाम की प्रस्तावना है। सत्य-असत्य के इस पहले युद्ध में तुम्हारी शिर्कत तुम्हें मुबारक हो! जीवित रहा तो भी सफल होगा और शहीद हो गया, फिर भी सफलता तेरे साथ रहेगी। □

# बद्र की लड़ाई

कम-सिनों को छांट देने और सेना का जायज़ा लेने के बाद सिपाहियों की तायदाद तीन सौ तेरह रह गयी, जिन में साठ मुहाजिर थे और शेष संख्या अंसार की थी। मदीने से सीरिया की ओर जो रास्ता जाता है, उस पर जां-निसार मुजाहिदों की यह टुकड़ी रवाना हुई। संसार की दृष्टि ने बड़ी भारी-भरकम सेनाएं देखी थीं। तीव्रगामी घोड़े लौह, टोप कवचें, बक्तर बन्द, ज़ोशन, तलवारें ढालें, नेज़ें बरछे और वह सब कुछ, जिससे शत्रु की सेना को नष्ट किया जा सकता है। सेना के साथ रसद का सामान, ख़ेमे, शामियाने, चित्र, नौबत, नक़ारे— पर यह अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के दासों की सेना थी, उनके पास टूटी हुई तलवारें और फटी हुई कवचें थीं, एक-एक सवारी पर दो-दो, तीन-तीन मुजाहिद सवार थे, रसद की जगह अल्लाह का नाम था, बहुत से बहुत कुछ थैले सत्तू और खजूर के होंगे। देखने में तो उनके पास ईमान की शक्ति और इस्लाम का जोश था। घरों से ये लोग इस बात का निश्चय करके चले थे कि अल्लाह का कलिमा बुलंद करने के लिए सर-धड़ की बाज़ी लगा देंगे—

काफ़िर हो तो शमशीर पे करता है भरोसा,
मोमिन हो तो बे-तेग़ भी लड़ता है सिपाही।

इन मुजाहिदों को मात्र अपने अल्लाह की ज़ात पर भरोसा था और यही भरोसा, विश्वास और ईमान, इन्हें मौत की आवाज़ पर दौड़ पड़ने के लिए लिये जा रहा था, उनके मन में ख़ुदा के सिवा और किसी का भय न था। जब से अल्लाह का भय उनके मन में आया और सब डर, तमाम आतंक और सारी भ्रान्तियां मन से निकल गयीं, तक्बीरें[1] पढ़ते और अल्लाह का स्मरण करते हुए जा रहे थे, नमाज़ का समय हो जाता तो ख़ुदा के सामने अति विनीति भाव के

१. अर्थात 'अल्लाहु अक्बर'

साथ झुक जाते, अल्लाह के रसूल हजरत मुहम्मद (सल्ल०) उनके इमाम, पेश्वा और सेनापति थे। हुज़ूर (सल्ल०) के साथ होने पर उनका भाग्य गर्व कर रहा था कि ऐ चरवाहो! तुम को ज़मीन व आसमान मुबारकबाद दे रहे हैं। आसमानों से तुम्हारे नाम सलाम आ रहे हैं। प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ रास्ता चलना ही बहुत बड़ा सौभाग्य है और नेकी है और यह तो अल्लाह के रास्ते में जिहाद करने के लिए रास्ता चला जा रहा है। सेना की कमान स्वयं पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के हाथ में है। सौभाग्य का यह चरमोत्कर्ष है।

कुरैशी शत्रु पूरी तैयारी और भारी युद्ध-सामग्रियों के साथ मक्का से चले, एक हज़ार से कुछ ऊपर उन की संख्या थी, हथियारों सवारियों और रसद के सामान की बहुतायत थी। कुरैश के तमाम सरदार स्वतः शरीक थे। अबू लहब बीमारी के कारण न आ सका, तो उसने अपनी जगह एक योद्धा को लड़ने के लिए भेज दिया। उक्बा बिन रबीअ कुरैशी सेना का नेतृत्व कर रहा था।

मदीना से लगभग अस्सी मील की दूरी पर बद्र स्थित है। यह स्थान शाम के रास्ते में पड़ता है। कुरैश जब बद्र पहुंचे, तो उन्हें पता लगा कि तिजारती क़ाफ़िला, जिसका नेता अबू सुफ़ियान है, स-कुशल मदीना के पड़ोस से निकल गया और अब कोई ख़तरा बाक़ी नहीं रहा। मुसलमान मदीने से मंज़िलों दूर जा कर उनके क़ाफ़िले का पीछा करने से रहे, इसलिए ज़ोहरा और अदी के क़बीलों के रईसों ने कहा कि हम अपने क़ाफ़िले के बचाने के लिए मक्का से चले थे। क़ाफ़िला स-कुशल शाम की ओर कूच कर गया, तो हमें भी मक्का की ओर लौट जाना चाहिए। मुसलमानों से छेड़-छाड़ करना कैसे भी उचित नहीं, पर अबू जह्ल ने किसी का कहा न माना, वह आग्रह करता रहा। उत्बा और उमैया तक कुछ नर्म पड़ गये, लेकिन अबू जह्ल की कठोरता यहां पहुंच कर और कठोर होती चली गयी। वह इस्लाम शत्रु बोला, मक्के को यों ही बिना लड़े-भिड़े ख़ाली हाथ लौट जाना भीरुता और साहसहीनता है। क़ाफ़िला चला गया तो क्या हुआ। हमारे शत्रु मुसलमान तो मौजूद हैं। इन लोगों की उपस्थिति अरब के लिए सब से बड़ा ख़तरा है। जब इधर आए हैं तो आओ इस ख़तरे और उपद्रव को भी मिटाते चलें।

कुरैश पहले से बद्र पहुंच चुके थे और सुदृढ़ और सुरक्षित मोर्चों पर उनका क़ब्ज़ा हो चुका था। रात का समय था। सहाबा किराम (रज़ि०) लगातार यात्रा करते हुए आए थे, रात को सबने आराम किया, मुसलमानों की इस पूरी टुकड़ी

में बस एक ज़ात जाग्रतावस्था में थी और वह ज़ात अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की थी। हुज़ूर (सल्ल०) रात भर अपने खुदा के आगे नतमस्तक रहे और दुआ में व्यस्त रहे। सब सो रहे थे और प्यारे नबी (सल्ल०) की आंखों से आंसू जारी थे, अपना दुख-दर्द अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पालनहार के दरबार में रख दिया।

रात का धुंधलका, जंगल, शत्रुओं के आक्रमण का ख़तरा— और इस स्थिति में अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का नत-मस्तक होना और आपकी दुआओं का स्वीकरण उस पर न्यौछावर हो गया! स्वीकृति-द्वार झूम-झूम और कांप-कांप गया! अर्श के कंगुरे हिलने लगे! ज़मीन की तनाबें और आसमान का शामियाना लरज़-लरज़ गया! कौन कह सकता है कि बन्दे ने अपने उपास्य से एकान्त में क्या कहा और उधर से क्या उत्तर मिला, जिस का मन तनिक भर भार का अनुभव करे और जिब्रीले अमीन तसल्ली के लिए तुरन्त उपस्थित होकर अर्ज़ करें कि आप के खुदा ने पैग़ाम भेजा है! और आज जब वह स्वयं गिड़गिड़ा रहा हो, उस का माथा अल्लाह के दरबार में धूल से भर रहा हो, तो ऐसी दशा में न जाने उधर से क्या पैग़ाम आए होंगे, यही वह एकांत है:—

कि जिब्रीले अमींरा हम ख़बर नीस्त

(कि हज़रत जिब्रील फ़रिश्ते को भी ख़बर नहीं है।)

मदीने से बद्र तक का रास्ता अति दुर्गम घाटियों से हो कर गुज़रता था, पर बद्र के आस-पास की धरती समतल थी, कहीं-कहीं टीला भी था। इसी मैदान के एक किनारे पर सहाबा किराम (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) के लिए छप्पर का एक सायबान बना दिया था। साद बिन मुआज़ छप्पर के नीचे नंगी तलवार सौंत कर हुज़ूर (सल्ल०) की रक्षा के लिए खड़े हो गये। साद इस निश्चय के साथ तैयार खड़े थे कि जान दे दूंगा, पर हुज़ूर (सल्ल०) पर आंच न आने दूंगा।।

सुबह की नमाज़ के बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जिहाद के लिये उपदेश दे कर फ़िदाइयों के दिलों को गरमा दिया। एक-एक शब्द पर प्राण न्यौछावर करने वाले मुजाहिद उछल-उछल पड़ते। इसके बाद लड़ाई के लिये पंक्तियां बनीं, हुज़ूर (सल्ल०) ने स्वयं पक्तियां ठीक करायीं। मुबारक हाथ में खजूर की एक शाखा थी और इसके इशारे से पंक्तियों को सीधी करने का आदेश दे रहे थे। सौदा इब्ने अज़्मा जो सु-शिष्ट सहाबी थे, संयोगवश उनके

क़दम पंक्ति की सीमा से आगे निकल गये और उनकी जगह की पंक्ति टेढ़ी हो गयी। हुज़ूर (सल्ल०) ने छड़ी से उनके सीने को ठोका दिया कि दूसरों की तरह पंक्ति में सीधे खड़े रहो। सौदा ने इस पर कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! ख़ुदा ने आप को सत्य पर अवतरित किया है और न्याय करने के लिये आप संसार में आये हैं, मेरे सीने पर आप ने छड़ी की जो चोट लगायी है, उसका मैं बदला लूंगा। हुज़ूर (सल्ल०) ने सीने से चादर हटा दी और फ़रमायाः—

ऐ सौदा ! क़िसास (बदला) ले।'

सौदा के इस निवेदन पर तमाम सहाबा चकित थे कि इस व्यक्ति को आज क्या हो गया है? मक्का से तो अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के हुक्म पर जान देने के इरादे से चला था और यहां आकर छड़ी के छोटे-से ठोके का नबी (सल्ल०) से प्रतिशोध और बदला चाहता है। किसी-किसी सहाबी (रज़ि०) ने क्रोधित होकर तलवार की मूंठ पर हाथ रख दिया कि हुज़ूर (सल्ल०) ने रोषयुक्त तेवरों में थोड़ा-सा भी संकेत किया तो सौदा का सिर उड़ा दूंगा।

हुज़ूर (सल्ल०) का बंद क़बा खुला ही था कि सौदा ने बढ़ कर मुबारक सीने को आस्था के साथ चूम लिया। हुज़ूर (सल्ल०) ने बदला लेने का कारण पूछा तो सौदा ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल यह मेरा अन्तिम समय है, घड़ी-दो घड़ी की बात और है, मैं अल्लाह के रास्ते में मारा जाऊंगा। मैंने चाहा कि जीवन के अन्तिम समय में हुज़ूर (सल्ल०) के मुबारक देह से अपना देह स्पर्श कर लूं। हुज़ूर (सल्ल०) ने उसके लिये भलाई की दुआ फ़रमायी और तमाम सहाबा (रज़ि०) हज़रत सौदा के इस उत्तर से प्रसन्न हो गये, उनके गुस्से ठंडे पड़ गये, जैसे किसी ने आग पर यकायकी बर्फ़ की सिल रख दी। कुछ ने तो मन ही मन में सौदा की इस अपार श्रद्धा की सराहना की।

युद्ध का आरंभ इस प्रकार हुआ कि पहले क़ुरैशी शत्रु के योद्धाओं ने मैदान में आ कर युद्ध -नाद किया। इधर से अंसार सोत्साह पहुंचे। शत्रुओं ने कहा कि अंसार का हमारा क्या जोड़! हमारे मुक़ाबले के लिये तो हमज़ा, उमर और अली (रज़ि०) को भेजो। इस उत्तर पर मुहाजिरों में से कुछ बहादुर लड़ाई के मैदान में आये, लड़ाई शुरू हुई। हुज़ूर (सल्ल०) अल्लाह के दरबार में हाथ फैला-फैला कर दुआ फ़रमाने लगे—

'इलाही! तूने मुझ से जो वायदा किया है, उसे आज पूरा कर!'

मग्नता और डूबने की यह स्थिति थी कि दुआ मांगने में मुबारक चादर

पावन कंधे से नीचे गिर-गिर पड़ती। फिर हुज़ूर (सल्ल०) ने सज्दा किया और सज्दे में सिर रख कर बोले–

'ऐ ख़ुदा! ये कुछ जानें मिट गयीं, तो फिर क़ियामत तक तेरा कोई पूजने वाला न होगा...।'

यह दुआ वास्तव में बंदगी-अभिमान था, इसके रहस्य मुहम्मद (सल्ल०) और मुहम्मद का ख़ुदा ही जानते हैं। अल्लाह की राह में यह लड़ाई हो रही थी। अल्लाह का रसूल (सल्ल०) दुआ मांग रहा था और अल्लाह ही ने अपने रसूल (सल्ल०) के मुख से इस दुआ के शब्द कहलवाये–हम तो बस इतना ही कह और समझ सकते हैं, इससे अधिक समझना तो हमारे बस से बाहर है।

दोनों ओर लड़ाई ठनी हुई थी। क़ुरैशी शत्रुओं ने अज्ञानता भरी संकीर्णता का ख़ूब-ख़ूब प्रदर्शन किया। एक-एक शत्रु लात व हुबल की जय पुकार-पुकार कर तलवार चलाता, उनमें बहुत-से अनुभवी योद्धा नव-जवान थे। आज वे यह तै कर के युद्ध-क्षेत्र में उतरे थे कि मुसलमानों का नाम व निशान मिटाकर रहेंगे, चाहे इसमें हमारी जानें क्यों न चली जायें, वे घाव खा-खा कर भी बढ़ने का यत्न करते। एक मरता तो दूसरा उसकी जगह आ जाता। आदमियों की उनके पास कमी न थी, हथियार भी बहुत थे, किसी के हाथ में तलवार टूट जाती, तो उसे तुरन्त दूसरी चमचमाती तलवार मिल जाती। सत्य-असत्य और कुफ़्र व इस्लाम का यह पहला युद्ध था। शत्रु अच्छी तरह जानते थे कि इस पहले युद्ध में अगर परास्त हो गये, तो हमारा युद्ध-कौशल और हमारी वीरता की साख बाक़ी न रहेगी, हमारी हवा उखड़ जायेगी-और जवानों का मनोबल टूट जायेगा। आज ख़ूब जम कर लड़ने की ज़रूरत है, मुसलमानों के सिपाही संख्या में बहुत कम हैं, हथियारों का भी उनके पास तोड़ा है। हम दृढ़ता के साथ जमे रहे तो वे मुट्ठी भर दीन-हीन मुसलमान कहां तक लड़ेंगे।

पर सहाबा किराम (रज़ि०) के ईमानी जोश ने शत्रुओं के पांव उखाड़ दिये। एक-एक बहादुर मुसलमान बिल्कुल अकेले क़ुरैश की पंक्तियों को चीर कर शत्रुओं के प्राण ले लेता, शत्रु के दोनों साइडों में भगदड मच गयी, यहां तक कि जां-निसार सहाबा (रज़ि०) ने असत्यवादियों के मोर्चे को तोड़ दिया, परेशान हाल, कमज़ोर और बे-सहारा ख़ुदापरस्त, टूटी हुई तलवारें, फटी कवचें, पर सत्य-उत्साह ने उनको अपार शक्ति प्रदान कर दी थी, होंठों पर ख़ुदा के नाम की तक्बीरें थीं और हाथों में तलवारें, इतने संतोष, भरोसे और निश्चय और

विश्वास के साथ लड़ रहे थे, जैसे विजय उनके भाग्य में लिखी जा चुकी थी, अपनी संख्या के कम होने का उन को दुख ही न था और शत्रुओं की अधिकता का न उन पर आंतक था। उन का मनोबल कह रहा था कि सारा अरब भी हमारे मुक़ाबले में आ जाये, तो उन से भी गुथ जायेंगे और दुनिया देख लेगी कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के दास मौत को खेल समझते हैं और सत्य के समर्थन में वे किसी बड़े से बड़े ख़तरे को भी ध्यान में नहीं लाते।

हुज़ूर (सल्ल०) अपनी जगह से अपने बहादुर साथियों की जांबाज़ी के दृश्य देख रहे थे। मुजाहिद घाव खा कर और अधिक उत्साह के साथ तलवार चलाते, माथे के घाव से लहू टपकता, तो कोई-कोई मुजाहिद, 'काबे के स्वामी की क़सम! मैं सफल हो गया' कह कर लहू की लाली से चेहरे को लाल बना लेता, ख़ाक व ख़ून में तड़प कर मुजाहिद अपने भाग्य पर गर्व करते कि शहेरग का लहू मूक भाषा में साफ़-साफ़ 'शहेरग से भी क़रीबतर' की गवाही दे रहा है-और यह भी कि स्वयं प्यारे नबी (सल्ल०) सर फ़रोशी और जां-निसारी का अवलोकन कर रहे हैं। धन्य है हमारा 'ख़ाक और ख़ून' में सना होना।

कुफ़्र इस्लाम का मुक़ाबला न कर सका, सत्य के आगे असत्य को सफलता न मिल सकी। लात व हुबल के पूजने वाले एक ख़ुदा की बंदगी करने वालों के सामने न जम सके। अच्छों की जीत और बुरों की हार हुई, कुरैश का दंभ टूट गया, वंशीय अभिमान और पैतृक महानता की पताका को धराशायी होना पड़ा। अबू जह्ल ने अपमानित हो धरती पर तड़प-तड़प कर जान दे दी। उक़्बा घावों को न सह सकने के कारण जहन्नम की ओर चल दिया और शैबा ने कराहते हुये प्राण खो दिये। सरदारों के क़त्ल ने रहे-सहे शत्रुओं का मनोबल तोड़ दिया। वे देख रहे थे कि मुसलमान हमारी पंक्तियां उलटे देते हैं और हमारे वीर इन शेरों के आगे लोमड़ियों की तरह भाग रहे हैं, अगर हम ने पराजय स्वीकार न की, तो हम में से शायद एक आदमी भी जीवित न बचेगा। इन मुसलमानों का मुक़ाबला करना हमारे बस का काम नहीं, जवानों का तो पूछना ही क्या, कम-सिन सिपाही, जिन की पूरी तरह मसें भी नहीं भीगीं, पूरे साहस और जोश के साथ तलवार चला रहे हैं।

अपनी पराज्य और सेना की भगदड़ का यह रंग देख कर शत्रुओं ने हथियार डाल दिये, हार मान ली, तलवारों को ज़मीन पर फेंक दिया, नेज़ों की अनि नीची कर ली, तरकशों को उल्टा लटका दिया, दम्भित गरदनें झुक गयीं,

होंठों पर अपमान की मुहर लगी थी, पर मौन अपनी भाषा में बोल रहा था कि हम पराजय स्वीकार करते हैं, अब हम तुम्हारी दया-कृपा पर हैं, जो चाहे, व्यवहार करो, हम तुम्हें मिटाने के इरादे से आये थे, पर क्या करें, भाग्य ने साथ न दिया। सैनिकों की भारी संख्या और हथियारों के आधिक्य के बाद भी हमें परास्त होना पड़ा, हमारे योद्धाओं ने भीरुता नहीं दिखायी, वे खूब जोश के साथ लड़े। कुरैशी सरदारों ने मौत की आंखों में आंखें डाल कर तलवारें चलायीं, पर मैदान तुम मुसलमानों के हाथ रहा, हम तुम्हें निःशक्ति, अपमानित, धनहीन और बे-सहारा समझते थे, पर हमारे तमाम अनुमान ग़लत सिद्ध हुए, तुम तो अटल निश्चयों का भारी पहाड़ सिद्ध हुए। काश! यह अपमान हमें देखना न होता और अबू जह्ल व शैबा के बराबर हमारी लाशें भी पड़ी होतीं।

□

# बद्र के क़ैदी

शत्रुओं की लाशों को देखा गया तो पता चला कि तमाम बड़े-बड़े कुरैशी सरदार क़त्ल हो चुके हैं, स्वयं कुरैशी सेना का सेनापति मारा गया और उसकी लाश बिना कफ़नाये-दफ़नाये पड़ी है। दारुन्नदवः में जिन चौदह सरदारों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के क़त्ल के प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त की थी, उनमें से ग्यारह बद्र की लड़ाई में मारे गये थे। बद्र की लड़ाई में कुरैशी सरदारों की जीवन-पुस्तिका के पन्ने बिखर गये थे। अरब की किसी लड़ाई में इतने नामी सरदार अब तक न क़त्ल हुये थे। बद्र में कुरैशी शत्रुओं की पराजय वास्तव में उनकी सत्ता का पतन और उनके प्रभुत्व का अन्त था। लक्षण बता रहे थे कि इस पराजय के बड़े दूरगामी परिणाम निकलेंगे। कुफ़्र का अपमान इस बिन्दु पर समाप्त न होगा, अभी उसे और अधिक अपमानित होना है। इस्लाम असत्य के किसी चिन्ह को शेष न छोड़ेगा, उजाला और धुंधलका एक जगह नहीं रह सकते, झूठ और सच में मेल नहीं हो सकता।

कुरैश के सत्तर आदमी क़ैद होकर मदीना लाये गये। ये सब के सब वीर और नामी व्यक्ति थे। अपने क़बीलों में इनका बड़ा आदर किया जाता था। पराजय-भाव ने उनके लाल और उजले चेहरों को संवला दिया था, आंखें सूखी थीं, पर हृदय रो रहे थे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के चचा अब्बास अब तक ईमान न लाये थे। वह भी अपने भाई-बन्द और सह-विश्वासी कुरैश के साथ सेना में शामिल होकर बद्र आये और कुरैश के समर्थन में खूब लड़े, इन क़ैदियों में अब्बास भी शामिल थे।

बद्र के क़ैदियों को मस्जिदे नबवी के स्तंभों से बांध दिया गया। नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने बंधनों के कष्ट को महसूस किया। हुज़ूर (सल्ल०) का संकेत पाकर सहाबा (रज़ि०) ने उनके चचा के बंधन ढीले कर दिये। रात का समय था। हुज़ूर (सल्ल०) बड़ी बेचैनी के साथ मस्जिद में टहलने लगे। सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया कि सरकार ने आराम नहीं

फ़रमाया? हुज़ूर (सल्ल०) ने उत्तर दिया कि क़ैदियों की हालत मुझ से देखी नहीं जाती। सहाबा (रज़ि०) ने अब्बास की तरह दूसरे क़ैदियों के बंधन भी ढीले कर दिये और जब बद्र के क़ैदियों को चैन आ गया, तो कहीं जाकर हुज़ूर (सल्ल०) ने आराम फ़रमाया।

बद्र की लड़ाई के ये क़ैदी प्यारे नबी (सल्ल०) और सहाबा किराम (रज़ि०) के खून के प्यासे थे। इनके हाथों मुसलमानों को बड़ी करुण पीणाएं पहुंची थीं, पर करुणानिधान ने इन सबको कपड़े पहनने के लिएं प्रदान किये। धूलों में सने वस्त्रों की जगह साफ़-सुथरे कुर्ते दिये गये। अब्बास बहुत लंबे तड़ंगे थे, सबसे ज्यादा लंबे क़द वाले, किसी का कुरता उनके देह पर ठीक न आता था। मदीना के मुनाफ़िक़ों में एक व्यक्ति अब्दुल्लाह बिन उबई था। वह इस गिरोह का सरदार था। इसकी लंबाई मदीने भर में प्रसिद्ध थी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उसका कुरता मंगवाकर अब्बास को पहनने को दिया।

अब्दुल्लाह बिन उबई ने जो हुज़ूर (सल्ल०) के चचा के साथ उपकार किया था, उसे प्यारे नबी (सल्ल०) ने भुलाया नहीं। मुनाफ़िक़ों का यह सरदार जब मरा तो हुज़ूर (सल्ल०) ने अपना कुरता उसके कफ़न के लिये प्रदान कर इस उपकार का मुआवज़ा दे दिया। वस्तुओं में अनुपात की दृष्टि से अन्तर हुआ करता है। वह मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई का कुर्ता था और यह रसूलों के सरदार मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (सल्ल०) की क़बा थी। अब्दुल्लाह बिन उबई के कफ़न से अधिक पवित्र कफ़न किसी मुर्दे को नसीब नहीं हुआ। कृपानिधान ने इब्ने उबई को अपने उपकार से ढांप दिया।

बद्र के क़ैदी निश्चय ही इसके अधिकारी थे कि उनकी गरदनें उड़ा दी जातीं। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) ने यही राय दी थी और कहा था कि मैं अपने नातेदारों को और अली बिन अबी तालिब (रज़ि०) अपने नातेदार क़ैदियों को क़त्ल करें, पर कृपानिधान ने मामूली सा जुर्माना लेकर रिहाई दे दी। जो क़ैदी लिखना-पढ़ना जानते थे, उनसे प्रतिदान भी नहीं लिया गया। उनका जुर्माना यही था कि अंसार के बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखा दें—अल्लाह ने बद्र में मुसलमानों की विजय को इन शब्दों में याद किया।

'तुम कमज़ोर थे, पर अल्लाह ने तुम्हारी सहायता की। अब तुम अल्लाह के लिये तक़्वा (संयम) अप्नाओ, ताकि उसके कृतज्ञ बन जाओ।' □

# हत्यारा दास बन गया

बद्र में कुरैश की पराजय की ख़बर जो पहुंची तो तमाम मक्का शोकग्रस्त हो गया। हर व्यक्ति प्रभावित और दुखी था। हर ओर इस लड़ाई की बातें और चर्चाएं होतीं। इस पराजय का सबको बड़ा दुख था। वह्ब का बेटा उमैर पैग़म्बर (सल्ल०) इस्लाम और मुसलमानों की दुश्मनी में आगे-आगे था। वह और उसका मित्र सफ़वान बिन उमैया दोनों एक जगह बैठकर बद्र में मारे गये लोगों का शोक मना रहे थे। उनकी बातें क्या थीं शोक के करुण गीत थे।

'उमैर! इस अपमानजनक पराजय के बाद अब जीने का मज़ा नहीं रहा है-' सफ़वान ने ठंडी आह भरकर कहा।

'—सच कहा तुमने सफ़वान! अगर मैं कर्ज़दार न होता और बाल-बच्चों के बखेड़े मेरे साथ न होते, तो मैं सवारी पर चढ़कर मदीना पहुंचता और मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को क़त्ल कर देता। मदीने में मेरा बेटा भी गिरफ़्तार है,' उमैर ने उत्तर दिया।

'—तुम न तो कर्ज़ का विचार करो और न बाल-बच्चों की चिन्ता में पड़ो। मैं बाल-बच्चों के भरण-पोषण का ज़िम्मा लेता हूं। मुझ पर भरोसा करो, उमैर!।'

—सफ़वान के इत्मीनान दिलाने पर उमैर—तेज़ी के साथ घर आया। पत्नी से कहा कि 'मैं मदीने जा रहा हूं। तुम्हारे बेटे को छुड़ाकर लाऊंगा। मेरी इस विष में बुझी हुई तलवार से अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद बच नहीं सकते। बद्र में मारे गये लोगों के प्रतिशोध की यह पहली क़िस्त है।'

उमैर ने तेज़ सी ऊंटनी ली और मदीने की ओर चल दिया। रास्ते में कहीं-कहीं थोड़ी-सी देर के लिये ठहरता और थोड़ा सुस्ता कर और ताज़ा दम होकर फिर चल पड़ता। वह जल्द से जल्द मदीना पहुंच जाना चाहता था, विष में बुझी तलवार को बार-बार देखता और मन ही मन में खश होता कि उसके

एक ही वार में (अल्लाह की पनाह) मुहम्मद (सल्ल०) का काम तमाम हो जायेगा। तलवार की बाढ़ पहले ही से तेज़ थी, मैंने विष में बुझाकर उसे मृत्यु का दूत बना दिया है। इसका थोड़ा सा घाव शत्रु को मौत का रास्ता दिखा देगा।

उमैर मदीना आया तो हज़रत उमर (रज़ि०) से राह में भेंट हुई। उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) उसके तेवरों ही से ताड़ गये कि यह मक्का से कोई बुरा इरादा लेकर आया है। उमर (रज़ि०) ने उसकी गर्दन दबोच ली और इसी अवस्था में उसे लेकर नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुये। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, उमर! इस व्यक्ति को छोड़ दो। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का आदेश सुनकर उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) के हाथों की पकड़ अपने आप ढीली हो गई। फिर हुज़ूर (सल्ल०) ने उसे क़रीब बुलाया–

'–किस इरादे से आये हो तुम यहां?' –अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उमैर से पूछा।

'–अपने बेटे को क़ैद से रिहाई दिलाने के लिए उपस्थित हुआ हूं'–उमैर ने उत्तर दिया।

'–तो फिर यह तलवार तुम्हारी गर्दन में क्यों लटकी हुई है?' अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पूछा।

'–हमारी तलवारें बद्र में किस काम आईं, जो...' उमैर का स्वर धीमा पड़ गया, मानो बद्र का नाम आते ही उसके हृदय के घाव उभर आये और ग़म ताज़ा हो गया। अन्तिम शब्द उसने दबे स्वर में कहा, मानो उसकी बात समाप्त हो चुकी।

उसके उत्तर में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया–

'तुम और सफ़वान दोनों ने हुजरे में बैठकर मेरी हत्या का षड़यंत्र जो रचा था।'

हुज़ूर (सल्ल०) का उत्तर सुनकर उमैर को पसीना आ गया। उसे बड़ा अचम्भा हुआ कि इस मश्विरे में सफ़वान और मेरे सिवा कोई शरीक न था, स्वयं मेरे नातेदारों, मित्रों और घर वालों तक को इस पड़यंत्र की सूचना न थी। यह मश्विरा हम दोनों ने अति गोपनीयता के साथ किया था, पर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का मक्के की बात को मदीने में रहकर प्रकट कर देना, निश्चित रूप से इस बात का प्रमाण है कि अल्लाह आप पर छिपी हुई बातें प्रकट कर देता है।

जिस व्यक्ति का खुदा के साथ इस प्रकार का मामला हो, उसको नबी होना ही चाहिये।

सत्य स्पष्ट हो चुका था। उमैर के स्वभाव में आग्रह और हठ-धर्मी न थी। स्वभाव की धूल नुबूवत के बादल के दो-चार छींटों से ही धुल गई, तुरन्त उठे और जोशीले ढंग से अल्लाह के पालनहार होने और मुहम्मद (सल्ल०) के रसूल होने की गवाही देकर मुसलमान बन गये। भाग्य का खुलना देखिये कि तलवार विष में बुझा कर इस नीयत के साथ मक्का से चले थे कि (अल्लाह की पनाह) अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद का अन्त कर दूंगा, पर यहां आकर दिल की दुनिया कुछ से कुछ हो गई, दृष्टिकोण ही बदल गया, निश्चयों की चादर ही उलट गई। अल्लाह की हिदायत ने हाथ थामा तो हत्यारा जान न्यौछावर करने वाला दास बन गया।

उमैर जब मक्का से रवाना हो गये तो क़ुरैशी शत्रुओं को एक-एक करके उनके निश्चय का ज्ञान हुआ। एक ने दूसरे से कहा, दूसरे ने तीसरे से! मक्का में खुशी की लहर दौड़ गई। वे लोग इस आशा में थे कि उमैर मदीने से अपने उद्देश्य में सफल वापस होगा, मदीने से लौटकर सगर्व वह कहेगा कि मैं इस तरह से मदीने पहुंचा और फिर कई दिन के यत्न के बाद अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद की महफ़िल में पहुंचा। इसके बाद पूरी तरह सतर्क होकर मुहम्मद को क़त्ल कर दिया। मेरी तलवार को सूंघ कर देखो। बनू हाशिम के खून की गंध आ रही है। जब मैं चला हूं तो समूचा मदीना शोकाकुल था। ख़त्ताब का बेटा उमर सरीखा वीर पुरुष भी यहूदी औरतों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था।

मदीना मुनव्वरा से मक्का में क़ाफ़िले आते-जाते रहते थे। लोग इंतिज़ार में थे कि उमैर अपने निश्चय को पूर करके न जाने किस क़ाफ़िले के साथ वापस आता है या अकेला लौटता है। मदीने की ओर से कोई व्यक्ति आता, क़ुरैशी शत्रु उससे पूछते कि मदीना की कोई नई ख़बर तो सुनाओ! वे अच्छी तरह जानते थे कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के क़त्ल की ख़बर छिप नहीं सकती। मदीना के आसपास की आबादियों में बिजली की तरह यह ख़बर पहुंचेगी— आने वाले कहते कि भाइयो! हमने तो कोई बात नहीं सुनी! बस सबसे ज़्यादा नई और ताज़ा बात यही है कि मदीना में मुसलमानों की संख्या बढ़ती जा रही है और वह बीज जिसे मक्का की धरती पर जमने न दिया गया, मदीना में फल-फूल ला रहा है।

आख़िर एक दिन मदीने से ख़बर आई, मक्का वालों के लिये दुखद और दिल तोड़ देने वाली ख़बर! कहने वाले ने कहा कि कुरैशियो! उमैर तो यहां से जाकर मुसलमान हो गया, तुम लोग व्यर्थ ही हवाई क़िले और काल्पनिक महल तैयार कर रहे हो। कुरैश इस ख़बर को सुनकर हक्का-बक्का रह गये, मानो उनके शरीर में लहू एकाएकी पानी बन गया हो। आशा के विपरीत जब कोई बात हो जाती है तो एक व्यक्ति भी प्रभाव लिये बिना नहीं रह सकता। कोई-कोई बूढ़ा शेख़े क़बीला तो अपनी दाढ़ी को बार-बार मुट्ठी में पकड़ता और छोड़ देता। झुंझलाहट ने तेवरों को अति रूखा बना दिया था। आज से पहले वे उमैर के लिये प्रशस्ति गान गाते थे कि उमैर का परिवार सदा से वीर, साहसी तथा स्वाभिमानी रहा है, उसके परदादा ने शाम की सीमा पर बिल्कुल अकेले ही डाकुओं की टोली का मुक़ाबला किया और उनको नीचा दिखाया, पर इस ख़बर के सुनते ही उमैर के सभी गुण उनकी दृष्टि में दोष और बुराई में बदल गये। कल तक जिसकी अच्छाई और बड़ाई के गुण-गान गाये जा रहे थे, आज उसके बारे में कहा जाने लगा कि इब्ने उमैर का परिवार कुरैश के लिये कलंक है। उसके पुरखे लड़ाइयों में औरतों के लिये बने कजावों की आड़ में शरण लिया करते थे, ऐसे डरपोक परिवार का यह ओछा व्यक्ति कुछ करे-वरेगा नहीं, हमारा विचार सही निकला। □

# एक ख़ूनी षड़यंत्र

कुरैश को विफलताओं पर विफलतायें मिल रही थीं, पर वे अपनी हरकतों से रुकते न थे। मदीने से जो ख़बरें उन के पास आतीं, उन्हें सुन-सुन कर वे क्रोधाग्नि में जलने लगते, झुंझलाते, दांत पीसते, होंठ चबाते और मुसलमानों को गालियां देते—नीच स्वभाव के व्यक्तियों से जब कुछ बन नहीं पड़ता, तो वे इसी प्रकार के ओछे हथियारों पर उतर आते हैं।

कुरैशी शत्रुओं को कैसे भी चैन नहीं आता था, वे इसी उधेड़बुन में लगे रहते कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) और आपके साथियों को किस ढंग से सताया जाये, कभी सहाबा (रज़ि०) में फूट डालने के उपाय सोचते, कभी यह योजना बनाते कि किसी प्रकार हिजाज़ के क़बीलों में दुष्भ्रम फैला कर और ग्रामीणवासियों को भड़का कर मदीने पर चढ़ाई करा दें। मदीने के यहूदियों और मुनाफ़िक़ों से मक्का के कुरैश सांठ-गांठ रखते थे, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और आपके साथियों की गतिविधियों की सूचनायें उन्हें पहुंचती रहतीं।

कुरैश अज़्ल और फ़ारा के क़बीलों में पहुंचे और उन को धमकी दी, लालच से भी परचाया और यह भी कहा कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद ने नया धर्म निकाल कर हमारे पैतृक धर्म को भारी ख़तरे में डाल दिया है, अरब की पारिवारिक प्रतिष्ठा धूल में मिली जा रही है। वे पावन मूर्तियां, जो सदियों से हमारी सहायता करती आई हैं, उनका ये मुसलमान अनादर करते हैं। यदि इस फ़ित्ने को न रोका गया, तो सारा अरब एक दिन मुहम्मद के क़दमों पर होगा—और जानते हो, उस समय अरब की क्या दशा होगी? एक मुख से भी लात व हुबल की जय न निकलेगी। दीन-हीन और ग़रीब मुसलमान कुरैशी सरदारों की बराबरी करेंगे, वह शराब, जिसके जाम हमारे पुरखे तलवारों की छांवों में पीते हैं, उस का पीना बंद कर दिया जायेगा, तमाम स्वाद, प्रसन्नतायें, मनोविहार समाप्त, हर आनन्द और छेड़-छाड़ ग़ायब! बस सुबह से शाम तक, बल्कि रात तक नमाजें पढ़ो, खड़े रहो, झुको और धरती पर गिर पड़ो और वह भी एक

काल्पनिक और अनदेखी हुई शक्ति के सामने!

कुरैश की बातों का इन लोगों पर जादू चल गया, इन दोनों कबीले के सात आदमी मदीना जाने के लिये तैयार हो गये। षड़यंत्र यह था कि किसी बहाने अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के सहाबा (रज़ि०) को ये अपने साथ ले आयें और फिर इन्हें धोखे से कत्ल कर दें। यह योजना सफल हो गयी, तो फिर इसी ढंग पर या षड़यंत्रों की शक्ल बदल-बदल कर सहाबा को मौत के घाट उतारते रहेंगे, इस प्रकार एक तो उन लोगों की संख्या कम होती जायेगी, दूसरा लाभ यह है कि दूसरे कबीलों के आदमी जब यह ख़बर सुनेंगे कि अरब में एक ऐसा दल पैदा हो गया है, जो मुसलमानों की हत्या कर दिया करता है, तो फिर इस्लाम की ओर उनका झुकाव और तबियत का चाव व्यावहारिक रूप न ले सकेगा।

अज़्ल और फ़ारा कौम के ये सात व्यक्ति, जिन को कुरैश के षड़यंत्र ने उभार कर मदीना भेजा था, मदीना पहुंचे और अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुये। इन लोगों ने मिस्कीनों जैसी शक्ल बना ली थी, मानो ये बड़े ही सीधे-सादे, भोले-भाले और भले स्वभाव के लोग हैं और इस्लाम का आकर्षण उन को यहां तक ले आया है—इन लोगों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हो कर कहा कि हमारे कबीले इस्लाम का सौभाग्य प्राप्त करने के लिये बिल्कुल तैयार हैं। आप हमारे साथ अपने साथियों में से कुछ ऐसे व्यक्तियों को भेज दें, जो कबीला वालों को इस्लाम की शिक्षा दे सकें। हुज़ूर (सल्ल०) ने दस साथी मुसलमान उनके साथ कर दिये। आसिम बिन साबित इस्लाम-प्रचारकों के इस पवित्र गिरोह के सरदार और शिक्षकों के इस दल के अमीर (सरदार) थे।

मदीने से यह कारवां ख़ुशी-ख़ुशी रवाना हुआ। सहाबा किराम को प्रसन्नता इस बात की थी वे इस सत्य-प्रचार की सेवा में निकल रहे हैं, उन अपरिचितों को इस्लाम की वास्तविकता बतायेंगे, जो अब तक इस्लाम नहीं लाये हैं, उन पर इस्लाम पेश करेंगे। हमारी कोशिश से अगर कुछ व्यक्ति भी संमार्ग पर आ गये तो हमारे आमालनामे इस नेकी के कारण बहुत वज़नी हो जायेंगे, सत्य का स्वीकारना बहुत बड़ा सौभाग्य और मानवता की सब से बड़ी सेवा है। इस संसार में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ, जो सब से बड़ी भलाई और नेकी कर सकता है, वह यही है कि उसकी कोशिश से गुमराही हिदायत में बदल

जाये-कोई संदेह नहीं कि भूखे को खिलाना, नंगे का बदन ढांकना और पीड़ितों की फ़रियाद को पहुंचना भी मानवता की सेवा है। पर यह भलाई उन तमाम नेकियों से बढ़ कर है कि किसी की कोशिश और प्रभाव से कोई गुमराह हिदायत पा जाये।

मदीने से कुछ मंज़िल तक ये लोग बहुत ख़ामोश रहे, जैसे ये सच-मुच हिदायत चाहते हैं और उन के मन पहले की तरह स्याह और कठोर नहीं रहे, पर जब उनकी बस्ती के चिन्ह दीख पड़ने लगे, तो उन के दिलों के चोर ज़ाहिर हो गये, कपट खुल गया और दुष्टताएं अपने असली रंग में सामने आ गयीं, वही तलवारें जो अभी तक म्यान में थीं, म्यान से निकल आयीं। इन क़बीलों के दौ सौ जवान इन सहाबा के मुक़ाबले में डट गये, उन्हें गिरफ़्तार करना चाहा, सहाबा किराम (रज़ि०) शत्रुओं की इस ख़ून की प्यासी भीड़ को देख कर तनिक भर भी न घबराए, उनके हौसले बुलन्द रहे और उनके ईमानी साहस ने हथियार डालने से इंकार कर दिया। उन्होंने भी तलवारें सौंत लीं। उनके तेवर मूक भाषा में कह रहे थे कि हम मुसलमान हैं, अपमान के साथ गिरफ़्तार नहीं हो सकते, तुम बहुत से बहुत यही कर सकते हो कि हमें क़त्ल कर दो, पर हमारे साहसों और ईमानी ताक़तों को परास्त नहीं कर सकते, जान बला से चली जाये, यह तो एक दिन जाने के लिये ही आयी है, पर ईमान पर आंच न आए।

लड़ाई शुरू हो गयी। उधर बहुत-से थे और ये कुल दस आदमी। दुश्मन अपने वतन में थे और ये परदेस में थे। वे पहले से तैयार थे और इनको यकायकी हमले का मुक़ाबला करना पड़ा। सहाबा (रज़ि०) लड़े और ख़ूब जम कर लड़े। आठ शहीद हुये और शेष दो सहाबी हज़रत ख़ुबैब और हज़रत ज़ैद (रज़ि०) को गिरफ़्तार कर लिया गया।

सुफ़ियान हज़ली उसी क़बीले का एक व्यक्ति था। वह इन दोनों जांनिसारों को मक्का ले गया और क़ुरैश को शुभ-सूचना दी कि षड़यंत्र पूरी तरह सफल हुआ, मुसलमान और स्वयं उसके रसूल (सल्ल०) जाल में फंस गये, पर साहिबो! ये मुसलमान होते बहुत बहादुर हैं और मैं तो कहूंगा थोड़े मूर्ख भी! हमारे नव-जवानों से लड़ने को तैयार हो गये, भला मुट्ठी भर आदमी सैकड़ों स-शस्त्र नव-जवानों का क्या मुक़ाबला कर सकते थे-आठ को हम ने मौत के घाट उतार दिया। वे 'अल्लाह-अल्लाह' पुकारते ही रहे, पर हम ने अपनी तलवारों और बरछियों से उन्हें हलाक कर दिया और ऐ क़ुरैशियो! उनके त्याग, सहानुभूति और शूर-वीरता

का हाल यह था कि एक मुसलमान दूसरे मुसलमान के सामने आ-आ कर नेज़े और बरछी के वार को रोकता—तात्पर्य यह कि उन आठ की तो लाश भी मिट्टी में मिल गयी होंगी, इन दो को हम गिरफ़्तार करके लायें हैं।

कुरैश मारे खुशी के फूले नहीं समाए। बहुत दिन के बाद यह एक खुशख़बरी उनके कानों ने सुनी थी। कुरैश ने अज़्ल और फ़ारा कबीलों की बहादुरी को सराहा कि तुम ने अरब वालों की लाज रख ली, बस ऐसे दो-चार मैदान और मार लिये गये तो मुसलमानों को ख़त्म ही समझो। कम से कम यह तो अवश्य ही होगा कि इस्लाम की प्रगति रुक जायेगी।

सुफ़ियान हज़ली ने इन दोनों को कुरैश के हाथ बेच दिया। कुरैश ने खुबैब और ज़ैद को डराया, अगर तुम ने इस्लाम न छोड़ा, तो तुम्हारा भी वही अंजाम होगा, जो तुम्हारे भाइयों और दोस्तों का हुआ है। देखो! हम तुम्हारे हित की बात करते हैं। हमारा कहा मानो, अपनी जानों को मुसीबत और तबाही में न डालो। तुम्हारे होंठों के हिलते ही बंधी हुई मुश्कें खुल सकती हैं—इस्लाम को छोड़ कर फिर अपने पैतृक धर्म की ओर लौट आओ, क़ौम में तुम्हारा आदर होगा और हर प्रकार की सुख-सुविधायें तुम्हारे लिये जुटा दी जायेंगी—पर खुबैब और ज़ैद को जान जाने का डर और धन-दौलत और सुख-चैन का प्रलोभन प्रभावित न कर सका। इस्लाम के नशे को कोई भी खटास नहीं उतार सकती।

कुरैश ने हज़रत खुबैब को सूली के नीचे खड़ा करके कहा कि अगर तुम इस्लाम से अलग हो जाओ तो तुम्हारी जान बच सकती है। खुबैब और ज़ैद ने एक स्वर में कहा मूर्खो! जब इस्लाम ही बाकी न रहा, तो हम अपनी जानें बचा कर क्या करेंगे? कुरैश इस उत्तर को सुन कर चकित रह गये, उन्होंने इस की कल्पना भी न की थी कि इस संसार में ऐसे आदमी भी मौजूद हैं, जो सत्य के लिये हंसी-खुशी जान दे सकते हैं और सूली के नीचे खड़े रह कर जिनका विश्वास डिगता नहीं।

कुरैश की जगह कोई और होता, तो इस घटना से शिक्षा ग्रहण करता, पर वे लोग तो पत्थर से भी अधिक कठोर दिल रखते थे और पत्थरों से तो कभी-कभी सोते भी फूट निकलते हैं, पर उनके दिलों में पसीजने की क्षमता ही न रही थी—एक निष्ठुर ने हज़रत खुबैब के सीने में ख़ंजर चुभो दिया और कहने लगा कि कहो! अब तो तुम मन में ज़रूर कहते होगे कि मैं छूट जाऊं और मुहम्मद मेरी जगह किसी तरह आ जायें — इस प्रश्न पर खुबैब के तन-बदन में आग लग गयी। वह शेर की तरह बिफर कर बोले—

'मेरी इन बातों का ख़ुदा गवाह है कि मुझे तो यह तक पसन्द नहीं कि मेरी जान तो बच जाये, पर अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के पैर में कांटा भी लगे'।

—निष्ठुरता की त्यौरियों में फिर ऐंठन आ गयी, क्रूरता ने झुरझुरी ली, मन की कालिख और अधिक फैल गयी, तर्कों का काम सूली की नोक से लिया गया, ख़ुबैब शहीद कर दिये गये, पर प्राण देते समय उनके होंठो पर मुस्कान क्रीड़ा कर रही थी, मानो मौत का वह स-हर्ष स्वागत कर रहे हैं, उन्होंने जान देते हुये फ़रमाया-

'ऐ ख़ुदा! हम ने तेरे रसूल (सल्ल०) के आदेश उन लोगों को पहुंचा दिये, अब तो अपने रसूल को हमारी दशा और शत्रुओं के करतूतों की सूचना दे दे।'

उत्पीड़ितों की यह मौत और सच्चाई की इस गवाही ने वास्तव में क़ुरैशी शत्रुओं के पाप के घड़े को किनारे तक भर दिया और इतिहास उस दिन का इंतज़ार कर रहा था कि जब अन्याय और अत्याचार का यह ताम-झाम समाप्त होने वाला था। □

# उहद की लड़ाई

बद्र में मक्का के शत्रुओं का हाल सुनकर मक्का में शोक का वातावरण छा गया। मक्का वाले यह आशा कर रहे थे कि हमारी हथियारों से लैस सेना का निहत्थे मुट्ठी भर आदमी क्या मुक़ाबला कर सकेंगे। एक ही ठेले में मुसलमान खुर्मे की तरह पिसकर रह जायेंगे। ख़ालिद और वर्क़ा सरीखे वीरों की तलवारें अपने शत्रुओं के लहू में डूबने से पहले म्यान में आना ही नहीं जानतीं। इन मुसलमानों को शायद अन्सार के आधिक्य पर गर्व हो गया है, पर वे बेचारे मदीना के हल्के-फुल्के लोग, जिनके पिछले इतिहासों में एक पृष्ठ भी ख़ून से रंगीन नहीं है, भला उन क़ुरैश का क्या मुक़ाबला कर सकेंगे, जिनके कारनामे ख़ूनी लड़ाइयों की यादगारें हैं। मक्का के वे मूर्ख क़ुरैश जो अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) के साथी बन गये हैं, वे निश्चय ही बहादुर हैं और हमीं में से हैं। कणों की अधिकता नदियों को पाट दिया करती है।

पर सूचना मिली कि बद्र में क़ुरैश को अपमानजनक पराजय का मुंह देखना पड़ा। उनके बहुत से वीर योद्धा मारे गये और बहुतों को मुसलमानों ने क़ैद कर लिया। क़ुरैश ने बद्र में बहुत कुछ बहादुरी दिखायी, पर मुसलमानों का जोश तूफ़ान का जोश था, छोटी-छोटी बरछियों और टूटी हुई तलवारों ने प्रलय ही लादी—फिर मक्का के शत्रुओं ने बदला लेने के लिय बड़े स्तर पर तैयारियां शुरू कर दीं, औरतों ने मर्दों को लाज दिलाई कि बद्र के बाद चुपचाप बैठ जाना भीरुता और कायरता है, क़ुरैश की महानता के पन्ने इस आसानी से नहीं फाड़े जा सकते, पराजय का बदला लिया जायेगा और अवश्य लिया जायेगा। कवियों ने वीर रस से ओत-प्रोत कविताएं लिखीं, जिनमें कहा गया—

'—अदनान और ग़ालिब की रूहें चीत्कार कर रही हैं। बदला! बदला!! बद्र में क़त्ल किये जाने वाले वीरों का बदला!!!'

—क़ुरैश जब बदला लेने निकलते हैं, तो आसमान कांप जाता है, धरती सिहर उठती है, शत्रु उनके प्रतिशोध-भाव को सहन नहीं कर सकता।

—विधवाओं के धड़कते हुये दिल और यतीमों के झिलमिलाते हुये आंसू तुम्हारे अभिमान के कान में 'प्रतिशोध' का नारा लगा रहे हैं।

—हारने के बाद आराम से बैठना कायरों और भीरुओं का काम है। तलवारों को म्यानों से बाहर निकालो, बर्छियों को हाथों में ले लो, घोड़ों को एड़ लगा कर युद्ध-स्थली में पहुंच जाओ। अधिक इंतिज़ार और सोच-विचार से अभिमान-भाव ठंडा पड़ जाता है।

वीर-रस में डूबी हुई इन कविताओं ने कुरैश में बदला लेने की आग को भड़का दिया, तैयारियां होने लगीं, हथियार ठीक-ठाक किये जाने लगे, किसी ने बरछी की अनि को ठीक किया, किसी ने तलवार पर धार रखी, कोई नेज़ों की नोकों को चमचमाने लगा। मुसलमानों से बद्र की पराजय का बदला लेने के लिये कुरैश की सेना चली। उन में वीर योद्धा भी थे और अनुभवी कुरैश भी, औरतें भी साथ थीं, ताकि वे अपने सिपाहियों को वीर-गान सुना कर उत्साह बढ़ायें और मनोबल बनाये रखें।

अबू सुफ़ियान चलने से पहले अपने उपास्य और हाजतें पूरी करने वाले हुबल की सेवा में उपस्थित हुआ। कुरैश के सबसे बड़े सरदार ने पत्थर की बे-जान मूर्ति के सामने सिर झुका दिया, दाढ़ी के बाल हवा से हिलने लगे। वाणों द्वारा पहले शकुन निकाला, शकुन के बाद फिर हुबल से सहायता मांगी, विनीत-भाव से कहा—

'मेरे पूज्य! कुरैश का सबसे बड़ा सरदार तेरे दरबार में सहायता मांगने आया है। हम अपने बद्र में मारे गये लोगों का मुसलमानों से बदला लेने के लिये जा रहे हैं, हमारी सहायता की जाये! तेरी महत्ता और महानता का गुण-गान करने वाले और तेरे नाम की जय पुकारने वाले, अब दोबारा अपमान का मुंह न देखने पायें, इन्हें विजय प्राप्त हो, हम सफल वापस हों, और आज जिन चेहरों पर चिंता और दुख के बादल छाये हुये हैं, कल उन पर हर्ष की किरणें झमझम करती नज़र आयें।

उहद की लड़ाई, मक्का के शत्रुओं के इसी 'प्रतिशोध' के रूप में प्रकट हुई, मुसलमानों की सेना पहुंच गयी, दोनों ओर से लड़ाई के लिये मोर्चे क़ायम हुये। तौहीद परस्त उहद पहाड़ की तलैटी में आ जमे और बंजर धरती के मैदान में शत्रुओं ने परे जमाये। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने स्वयं पंक्तियां ठीक कीं। मुसलमान मुजाहिद सीधी लाइनों पर अल्लाह पर भरोसा कर के खड़े हो गये।

उनको मालूम था कि उहद की लड़ाई बद्र की लड़ाई से अधिक तेज़ होगी। मक्का के शत्रु पूरे हथियारों के साथ लड़ने के लिये आये हैं। उनके प्रतिशोध की आग पूरी शक्ति के साथ भड़क रही है, लेकिन मुसलमानों के हौसले बहुत ऊंचे और उनके इरादे पहाड़ों की तरह मज़बूत थे, उनकी हिम्मतें कह रही थीं कि तनिक युद्ध का आरंभ हो तो फिर शत्रुओं को मालूम हो जायेगा कि खुदा परस्तों से लड़ाई करना मानो मौत से खेलना है।

हुनैन एक छोटी-सी पहाड़ी थी, जिस में एक दराड़ थी। मुसलमानों की सेना उसी के क़रीब मोर्चा जमाये हुये थी। यही जगह उन का ज़बरदस्त मोर्चा और कुमक भेजने का अड्डा था। ख़तरा था कि शत्रु इस मार्ग से आ कर कुछ गड़बड़ कर सकते हैं, इसलिये प्यारे नबी (सल्ल०) ने पचास धनुर्धारियों को एक स्थान पर नियुक्त कर के आदेश दिया कि चाहे तुम लोगों की जीत हो या हार, पर इस स्थान से कदापि न हटना, इसकी रक्षा करते रहना। हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि०) को धनुर्धारियों की इस टुकड़ी की कमान सुपुर्द फ़रमायी।

मुसलमानों की सेना पंक्तिबद्ध खड़ी थी, बस हुज़ूर (सल्ल०) का आदेश मिलने की देर थी। अल्लाह की राह में लड़ने-मरने की तमन्ना बे-चैन किये देती थी। हुज़ूर (सल्ल०) ने साद बिन वक़्क़ास और अबू उबैदा बिन जर्राह (रज़ि०) को इस्लामी सेना की सामने बढ़ने वाली टुकड़ी पर नियुक्त फ़रमाया। अग्र पंक्ति ठीक हो गयी तो हूज़ूर (सल्ल०) ने सेना के दायें और बायें बाज़ू की ओर ध्यान दिया। उकाशा बिन मुह्सिन असदी और अबू सलमा बिन अब्दुल असद (रज़ि०) को इन दोनों अंगों की कमान सुपुर्द की।

क़ुरैशी शत्रुओं ने भी पंक्तियां ठीक-ठाक कीं। उनके दायें बाज़ू का कमांडर ख़ालिद बिन वलीद बना, बायें बाज़ू का नेतृत्त्व इक्रिमा बिन अबू जह्ल को मिला और अग्र पंक्ति में अबू सुफ़ियान को नियुक्त किया गया।

लड़ाई का आरंभ हुआ। दोनों पक्ष के योद्धा युद्ध-कौशल दिखाने लगे, तलवारों की झंकार से पहाड़ियां गूंजने लगीं। एक ओर लात व हुबल की जय पुकारी जा रही थी और दूसरी ओर अल्लाहु अक्बर का नारा गूंज रहा था। हुज़ूर (सल्ल०) ने अबू दुजाना (रज़ि०) को अपनी तलवार प्रदान की। अबूदुजाना (रज़ि०) बड़े धीर-वीर और प्रबल योद्धा थे। नबी (सल्ल०) की तलवार लेकर जब शत्रुओं की सेना की ओर चले, तो उनकी चाल में गर्व की झलक पायी जाने लगी। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि, 'इस चाल को खुदा दुश्मन रखता है, पर

इस अवसर पर यह कोई दोष नहीं।'

शत्रुओं की पंक्ति से निकल कर एक सैनिक अबू दुजाना के सामने आया, वह अपनी तलवार का वार करना ही चाहता था कि अबू दुजाना ने उसका सिर उड़ा दिया। अब दुजाना पंक्तियों को चीरते हुये बढ़ते ही चले गये। अबू सुफ़ियान की पत्नी हिन्दा, दूसरी क़ुरैशी औरतों के साथ अपने सैनिकों को लाज दिलाने और उभारने वाले वीर-रस के पद पढ़ रही थी। हर पद प्रतिशोध-भाव से ओत-प्रोत था, हर पद मक्का के जवानों का मनोबल उभारता, जिससे प्रतिशोध-भाव और उग्र हो उठता। अबू दुजाना निर्भीकता प्रदर्शित करते हुये हिन्दा के पास पहुंच गये और उसे क़त्ल करने के लिये तलवार उठायी। क़रीब था कि हिन्दा का शव मैदान में तड़पता दीख पड़े, पर फिर ध्यान आया कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की तलवार का औरत के रक्त में सनना उचित नहीं। ऐसा विचार आते ही उठा हुआ हाथ रुक गया। अबू सुफ़ियान की पत्नी की जान बच गयी।

कमानों से तीर छूटने लगे, नेज़े हिले, तलवारें हरकत में आ गयीं। शत्रुओं ने भी आज मरने-मारने का निश्चय कर लिया था, बड़ी वीरता से लड़े। एक गिरता तो दूसरा उसकी जगह आ खड़ा होता, पर मुसलमानों के तूफ़ानी हमले का ताब न ला सके। उनके पैर उखड़ गये। आगे बढ़ने वाले पीछे हटने लगे। वे वीर जो विजय या मृत्यु का संकल्प लेकर चले थे, भाग खड़े हुये। जान हर किसी को प्यारी होती है। शत्रुओं को इस प्रकार भागता देखकर वे धनुर्धारी, जिनको अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि॰) की मातहती में पहाड़ी की दर्रे पर नियुक्त कर दिया था, ग़नीमत का माल लूटने लगे। धनुर्धारियों ने समझा कि हमारी विजय हो गयी, शत्रु परास्त हो गये और पराजय के बाद लड़ाई समाप्त हो जाया करती है, भागने वाले अब क्या लड़ेंगे। बद्र में जब उनको पराजय हुई थी, तो फिर एक सैनिक ने भी उलट कर सांस न ली थी—पर उनका विचार ग़लत निकला। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने जो आदेश दिया था कि किसी दशा में भी इस स्थान को न छोड़ना, निष्ठा के बाद भी उसके प्रतिकूल हो जाने में हालात का पांसा ही बदल गया। लड़ाई का नक़्शा ही कुछ से कुछ हो गया।

शत्रुओं ने जब देखा कि धनुर्धारी, जो प्रतिरक्षा की अति दृढ़ दीवार बने हुये थे, माल लूटने में लगे हुये हैं, तो इन उपद्रवियों ने पलटकर आक्रमण कर दिया। ये लोग इकट्ठे थे और मुसलमान बिखरे हुये थे, कोई कहीं था और कोई कहीं!

अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि०) अपने साथियों सहित शहीद हो गये। इस्लामी सेना में भगदड़ मच गयी। चौदह सहाबा (रज़ि०) के सिवा और जितने भी मुसलमान मुजाहिद थे, उन सब के पांव डगमगा गये। सबसे बड़ी विपत्ति यह आयी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की शहादत की ख़बर चारों ओर फैल गयी, उससे मुसलमानों का रहा-सहा मनोबल भी टूट गया।

वह्शी मक्का का एक गुलाम था। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की ताक में बैठा था, जैसे ही हमज़ा (रज़ि०) उसके निशाने पर आये, तो उसने हथियार फेंक कर मारा, सय्यिदुश्शुहदा हमज़ा (रज़ि०) उस बरछे के घातक घाव न सहन कर सके, अल्लाह का नाम लेकर दम तोड़ दिया। वह्शी ने उन का पेट चाक कर के कलेजा निकाला और स-हर्ष हिंदा के पास ले गया। वह्शी ने हिंदा से कहा—

'जानती है यह मैं क्या चीज़ ले कर आया हूं! यह कलेजा है उस व्यक्ति का, जिस ने तेरे बाप को लड़ाई में क़त्ल किया था।'

हिंदा ने हमज़ा के कलेजे को लेकर चबाया—ऐसा घोर प्रतिशोध संसार में किसी ने काहे को लिया होगा।

हज़रत अली (रज़ि०) हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के शव को बड़ी कठिनाई से खोज सके। शव का जोड़-जोड़ अलग था। हुज़ूर (सल्ल०) को यह दुखद सूचना मिली तो अति प्रभावित हुये। हमज़ा (रज़ि०) की बहिन सफ़िया (रज़ि०) भी इतनी निर्ममता के साथ क़त्ल किये जाने की सूचना पा कर रोने लगीं। सय्यिदा फ़ातमा (रज़ि०) की आंखों से भी आंसू गिरने लगे और स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की आंखें छलछला उठीं।

शत्रु अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठा रहे थे, उन का आक्रमण ज़ोर पकड़ता जा रहा था। वे देख रहे थे, इस्लामी सेना में भगदड़ मच गयी है, मुसलमानों में घबड़ाहट फैली हुई है। ऐसे में बढ़ते और हमले करते ही चले जाना चाहिये, यहां तक कि मुसलमानों का एक-एक सैनिक धरती पर ढेर हो कर गिर पड़े-या फिर ये लोग हार मान लें, बद्र का बदला ऐसे ही पूरा हो सकता है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कुछ जान निछावर करने वाले साथियों के झुरमुट में खड़े थे। चारों ओर से तीरों की ज़ोरदार वर्षा हो रही थी। नबी (सल्ल०) के इन फ़िदाइयों में हज़रत अली शेरे ख़ुदा (रज़ि०) ने उस दिन जिस धैर्य, अडिग वीरता, निर्भीकता और ईमानी उत्साह का प्रमाण जुटाया, वह इस्लामी इतिहास में कहावत बन गया है।

हज़रत हंज़ला (रज़ि०) एक उत्साही नव-जवान थे। संयोग कि उनका विवाह उस रात को हुआ, जिस दिन यह दुर्घटना घटी। सुबह का समय था। वह अभी अपना सिर ही धो रहे थे, कान में आवाज़ आयी कि उहद में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और आपके साथी कठिन घड़ियों के शिकार हो गये हैं, इसी हालत में तलवार गले में लटकायी और उहद में पहुंच कर शत्रुओं की पंक्ति पर टूट पड़े। इतनी निर्भीकता से तलवार चलायी कि शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। थोड़ी-सी देर में कितने शत्रुओं को नरक-मार्ग दिखाया। यह अकेले थे, उधर पूरी भीड़ थी। तीरों, बर्छियों और तलवारों ने इन के शरीर को बेध डाला, देह घावों से भर गया, धरती पर चकरा कर गिरे और अल्लाह के रास्ते में जान दे दी—शहीदों की खोज हुई तो हंज़ला के शव को पानी में भीगा हुआ देखा गया, मानो उनके शव को विधिवत स्नान कराया गया हो। एक रात का दुल्हा, अपनी नयी-नवेली दुल्हन को छोड़ कर मृत्यु से आलिंगन कर बैठा।

जह्श के बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) इतनी वीरता से लड़े कि उन की तलवार ही टूट गयी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की दृष्टि पड़ी तो आप ने उन को खजूर की डाली थमा दी। उसी डाली ने तलवार का काम किया और जह्श के बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की दी हुई डाल को लेकर शत्रुओं पर टूट पड़े और खूब-खूब अपना कौशल दिखाया।

हज़रत अबू तलहा अंसारी (रज़ि०) निशाने के बड़े तेज़ और मुस्तैद योद्धा थे। तमाम मदीना में उन का निशाना मशहूर था। उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सुरक्षा के लिये अपने सीने को ढाल बना दिया कि कोई तीर ऊंचा आता तो हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) पंजों के बल खड़े हो जाते कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ओर आने वाला तीर उनके सीने और गले में गड़ जाये, पर उस महान नेता को चोट न आये। अबू तलहा (रज़ि०) ने उस दिन शत्रुओं पर इतने ताबड़-तोड़ तीर बरसाये कि तीन कमानें उनके हाथ में टूट गयीं।

इन फ़िदाइयों में हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) भी थे, जिनके हाथ में धनुष था और शुत्रओं को लगातार तीरों का निशाना बना रहे थे। साद की निशानेबाज़ी को देख कर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) प्रेम और मनोबल उठाने वाले स्वर में फ़रमाते हैं—

'साद! तीर चला, तुझ पर मेरे मां-बाप कुर्बान!'

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के मुबारक मुख से ये पावन तथा प्रेम भरे शब्द साद के अतिरिक्त और किसी के लिये नहीं सुने गये। □

# नाजुक घड़ी

योद्धा धनुर्धारियों की भूल-चूक ने लड़ाई का रंग ही बदल दिया था। मुसलमानों के बिखराव को देखकर शत्रु आगे बढ़ते चले आ रहे थे, उनको विश्वास हो गया था कि मुसलमान अब अधिक देर तक नहीं जम सकते। उहद की लड़ाई ही से क़ुरैश के इतिहास का रुख़ बदल जायेगा, आज विजय मिल गयी तो यों समझो कि मुसलमानों का सारा बल ही टूट गया, हम तो बद्र में पराजय की विपत्ति झेल गये थे, पर ये लोग एक ही पस्पाई में जी छोड़ देंगे, जो मुसलमान मदीना में रह गये हैं, उन पर यहां से निबट कर आक्रमण करेंगे और इस तरह पैग़म्बरे इस्लाम और उनके साथियों के नाम व निशान को संसार से मिटा देंगे, बस वह समय निकट है कि सुलअ की पहाड़ियां 'अल्लाहु अक्बर' की गूंज से सदा-सर्वदा के लिए वंचित हो जायेंगी।

इब्ने क़ुमैया क़ुरैश की सेना में आगे-आगे रहता था। उसने हुज़ूर (सल्ल॰) पर पत्थरों की वर्षा कर दी। सूर्य की आंख यह करुण तथा हृदय विदारक दृश्य देखकर लहू टपका रही थी—कि वह जिसने संसार वालों पर अपनी रहमतों के फूल बरसाये, स्वयं उस पर पत्थरों की बारिश हो रही है। पत्थरों की वर्षा के प्रभाव से मुबारक चेहरा ख़ून से लाल हो गया, फिर उस भाग्यहीन ने बढ़कर तलवार का वार किया। एक तो तलवार की झोंक, फिर हुज़ूर (सल्ल॰) कवच पहने हुये थे, उसका बोझ भी इस अवसर पर बोझ ही बना। हुज़ूर (सल्ल॰) खड्ड में गिर पड़े। इब्ने क़ुमैया समझा, मुद्दत की तमन्ना पूरी हुई, मारे ख़ुशी के चीख़ पड़ा कि 'मुहम्मद मारे गये'—और यह आवाज़ शत्रुओं की सेना में फैलती ही चली गयी, ज़ालिमों के चेहरों पर ख़ुशी की लहर दौड़ गयी, होटों पर मुस्कान क्रीड़ा करने लगी। प्रसन्नता से उनके दिल बल्लियों उछल रहे थे! मक्के में जब यह ख़बर पहुंचेगी, तो हमारे कारनामों की धूम मच जायेगी। आशुकवि हमारी स्तुति के गीत गायेंगे और उकाज़ और ज़ुलमिजिन्ना क़े बाज़ारों में हमारे नाम के झंडे गाड़े जायेंगे।

अब उबैदा बिन जर्राह (रज़ि॰) ने हुज़ूर (सल्ल॰) के मुबारक देह से ख़ोद की कड़ियां अपने दांत से खींच कर निकालीं, जिसके असर से दांत टूट गये। अबू उबैदा (रज़ि॰) सावधानी दिखा रहे थे कि प्यारे नबी (सल्ल॰) के पावन रक्त से कहीं धरती लाल-लाल फूलों का चमन न बन जाये, वरना क्या असंभव है कि अल्लाह का अज़ाब आकर धरती से इसके उगाने की क्षमता ही समाप्त न कर दे।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के घावों से लहू बह रहा था और शत्रु विजय के नारे लगा रहे थे, मुसलमान बिखर गये थे, बड़ी ही कठिन घड़ी और अति विकट स्थिति थी। इसी दशा में हज़रत अली (रज़ि॰) अपनी ढाल में पानी लेकर आये, उन्होंने पानी डाला और हज़रत फ़ातमा (रज़ि॰) ने दुखी और पावन पिता के घावों को धोया।

घावों के कारण हुज़ूर (सल्ल॰) निढ़ाल-से हो गये, पर इसी स्थिति में आपने बैठकर नमाज़ पढ़ी। पीड़ितावस्था के इन सजदों पर स्वयं नमाज़ गर्व कर रही थी—शत्रुओं के यहां विजय के गीत गाये जा रहे थे। अबू सुफ़ियान ने बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि॰) का नाम लेकर पुकारा, अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का संकेत पाकर मुसलमानों की ओर से इन उत्साहपूर्ण प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया गया, फिर अबू सुफ़ियान ने अपने लोगों से पुकार कर कहा—भाइयो! खुशी मनाओ, ये सब लोग क़त्ल हो गये। अगर वे जीवित होते तो मेरी बातों का उत्तर अवश्य देते, अबू सुफ़ियान के इस व्यंग्य और अपमानजनक घोषणा पर हज़रत उमर (रज़ि॰) से चुप न रहा गया। धैर्य की पकड़ अपने-आप ढीली हो गयी। वे पुकारे—

'ऐ खुदा के दुश्मन! जिन-जिनको तूने नाम लेकर पुकारा है, वे सब जीवित हैं—'

इस पर अबू सुफ़ियान को भी जोश आ गया। कुफ़्र की झुंझलाहट ने बुतों की जय बनकर पुकारा। हुज़ूर (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि उत्तर में तुम भी 'अल्लाह तआला व अजल्ल' कहो।

रबीअ अंसारी (रज़ि॰) के बेटे सईद (रज़ि॰) भी इस लड़ाई में शरीक थे, वह नज़र नहीं आये, तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि कौन है जो सईद बिन रबीअ (रज़ि॰) की ख़ैर-ख़बर लेकर आये। हुज़ूर (सल्ल॰) का हुक्म सुनकर एक अंसारी तुरंत चल पड़ा। मैदान में शहीदों के शव बिखरे पड़े थे, लहू ने रेतीली धरती को लाल फूलों का चमन बना दिया था; बड़ी खोज के बाद

हज़रत रबीअ (रज़ि०) का पता चला-अंसारी ने देखा कि लाशों के झुरमुट में सईद (रज़ि०) भी ख़ाक व ख़ून में लोट रहे हैं।

'-अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तुम को सलाम कहा है'—ढूंढने वाले ने कहा।

'-मुझ जान निछावर करने वाले दास का सलाम भी हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में प्रस्तुत करना'-रबीअ (रज़ि०) ने उत्तर दिया और फिर थोड़ी देर के लिये रुक गये।

'—मेरे साथियों और दोस्तों से एक-एक करके कहना कि देखो, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के आज्ञापालन में कोताही न होने पाये, कमी हुई तो फिर खुदा के यहां तुम्हारी कोई विवशता स्वीकार्य न होगी।'...

ये बातें जोश में आ कर कहने को तो कह दीं, पर शहेरग से लहू की अन्तिम बूंदें टपक पड़ीं—गरम खून, जिस की हर बूंद में अल्लाह और रसूल (सल्ल०) का प्रेम झलक रहा था—और अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) पर जान न्यौछावर करने वाला दास हमेशा के लिये चैन की नींद सो गया, चेहरे पर सफ़ेदी फिर गयी और क्षण भर में देह और आत्मा एक दूसरे से जुदा हो गये। □

# उहद के बाद

मदीने में इस घटना की सूचना पहुंची तो मुसलमानों के घर-घर में कोहराम मच गया। लोग निराशा-भाव के साथ एक दूसरे का मुंह देखते। एक महिला भी इस दुखद सूचना के मिलने के बाद घर से उहद की ओर चल पड़ी– तेरा बाप मर गया–एक व्यक्ति ने सहानुभूति दर्शाते हुए कहा, पर औरत बढ़ती चली गयी– तेरा पति मर गया– पर औरत की चाल में तनिक भी सुस्ती न आयी।

फिर उस से कहा गया कि तेरा बेटा कलेजे पर बरछी खा कर मौत का निशाना बन गया।

'पर खुदा के बन्दे यह तो बता कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किस हाल में हैं? मेरे कानों ने बड़ी दर्द भरी ख़बर सुनी है। मेरे मुंह में धूल !– हृदय इस सूचना को सह नहीं सकता'– महिला ने रुक-रुक कर पूछा– 'अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तो जीवित हैं'– पर कहने वाले की बात पूरी भी न हुई थी कि औरत झट से बोल पड़ी–

'जब सरकार जीवित हैं, तो मैं किसी नातेदार के मरने से दुखी नहीं हो सकती। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के होते हुए सारी विपदाएं तुच्छ हैं।'

उहद से अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की वापसी की सूचना मिली तो मदीना के लोग आप के स्वागत के लिए बस्ती से बाहर निकल आए। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की अल्पायु और अबोध बालिका फ़ातमा भी रास्ते में खड़ी हो गयी। स्वागत के बाद लोग लौटे तो फ़ातमा ने देखा कि इन लोगों में हमज़ा (रज़ि०) का चेहरा नज़र नहीं आता, आखिर क्या बात है? वह क्यों नहीं आए? उन को तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ ही वापस होना था, अबोध बालिका का दिल धड़कने लगा। अनजाने ही यतीमी की धूल उस के चेहरे को छूने लगी। मन में सौ-सौ प्रकार के विचार आते थे और विचारों का उमड़-घुमड़ कर आना

स्वाभाविक था। लड़ाई से किसी व्यक्ति का न लौटना भयानक से भयानक दुर्घटना का कारण हो सकता है।

रास्ते में हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) मिले। फ़ातमा (रज़ि०) ने पूछा—

'—मेरे बाप कहां हैं अबूबक्र ?

सिद्दीके अक्बर (रज़ि०) ने अटक-अटक कर कहा—

'—पीछे खुद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तश्रीफ़ ला रहे हैं, उनसे तुम अपने बाप का हाल पूछना।' थोड़ी देर में हुज़ूर (सल्ल०) घोड़े पर सवार आते दीख पड़े। हमज़ा (रज़ि०) की बेटी फ़ातमा ने सवारी के आने का इन्तिज़ार भी न किया, तेज़ी के साथ आगे बढ़ी और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के घोड़े की लगाम मुट्ठी में पकड़ कर बोली—

'ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे बाप कहां हैं?'

प्यारे चचा हमज़ा (रज़ि०) की करुण मृत्यु से स्वयं हुज़ूर (सल्ल०) अत्याधिक प्रभावित थे, यतीम बच्ची के इस प्रश्न ने चचा की शहादत के घाव को और हरा कर दिया।

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया—

'तेरा बाप मैं हूं!'

हुज़ूर (सल्ल०) ने इन शब्दों में लड़की को तसल्ली भी दे दी और अति कलात्मक ढंग से घटना की सूचना भी दे दी। हुज़ूर (सल्ल०) खुल कर हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की निर्मम हत्या का उल्लेख करते तो अबोध बालिका के मन पर न जाने क्या बीत जाती— सय्यिदुश्शुहदा (शहीदों के सरदार) हमज़ा (रज़ि०) की यतीम बच्ची अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की बात सुन कर बे-अख़्तियार बोल उठी—

'इस उत्तर से मुझे खून की बू आती है।'



# खंदक़ की लड़ाई

क़ुरैशी शत्रुओं की उहद की लड़ाई के बाद और हिम्मतें बढ़ गईं। उन्होंने मक्का जाकर बड़े गर्व के साथ कहा कि उहद में बद्र की पराजय का हमने एक हद तक बदला ले लिया। हमज़ा सरीखे नामी योद्धा को ख़ाक व ख़ून में मिला दिया, स्वयं अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद हमारे चंगुल में आ गए थे। इब्ने क़ुमैया का हाथ तनिक और कसकर पड़ जाता तो सारा क़िस्सा ही ख़त्म हो गया होता। भाग्य अच्छा था जो मुहम्मद बच गए, पर उनके घाव— पत्थरों ने अब्दुल्लाह के बेटे के चहेरे को लहू-लुहान कर दिया था, पर साथियो! उनके साथी भी जान लड़ाने में अपना उदाहरण नहीं रखते! हम मुहम्मद की ओर तीर फैंकते, तो एक अंसारी मुहम्मद के बचाने के लिए तीर को अपने सीने पर रोक लेता और भाइयो! मुसलमान औरतों तक ने इस लड़ाई में बड़ी वीरता और साहस का प्रमाण जुटाया, तीर बरस रहे थे, तलवारें चखाचख चल रही थीं और वे औरतें मशकेज़े भर-भर करके अपनी पीठों पर लादकर ले जातीं, प्यासे सिपाहियों को पानी पिलातीं और घायलों की मरहम पट्टी करतीं— इसी ढंग की एक आध लड़ाई और हो गई तो मुसलमानों की हैकड़ी समाप्त समझो, हम क़ुरैश के शत्रुओं की जड़ उखाड़े बिना चैन से नहीं बैठ सकते। यह हमारे पारिवारिक प्रतिष्ठा का मामला है। हम थककर बैठ गए तो दुनिया क्या कहेगी? यही कि क़ुसई सरीखे नामी सरदार की सन्तान ने हार मान ली। हमारे वीरता के तमाम पिछले इतिहास पर पानी फ़िर जाएगा। हम ऐसा न होने देंगे।

खंदक़ की लड़ाई इसी सिलसिले की एक कड़ी थी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि०) के मशविरे से ख़ंदक़ खोदने का आदेश दिया। सहाबा ने ख़ंदक़ खोदनी शुरू की और स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) भी उसमें शरीक हो गए— सूर्य की आंखों ने ऐसा दृश्य काहे को देखा होगा कि सौभाग्य और सन्मार्ग राज्य का सम्राट मज़दूर की तरह ज़मीन खोद रहा था— कहां हैं मज़दूरों और किसानों के वे झूठे हितैषी और बनावटी दर्द मन्द, जो

सोफ़ों और कालीनों पर बैठ कर मज़दूरों के हित और कल्याण की योजनाएं बनाते हैं। इन विलासियों को मज़दूर के दुःख-दर्द की क्या ख़बर! मज़दूर क्या होता है और मज़दूरों पर क्या गुज़रती है? इसका आनन्द ख़ंदक की लड़ाई के उस पवित्र मज़दूर से पूछो, जिसने कहा—

'मज़दूर का पसीना सूखने से पहले उसकी मज़दूरी अदा कर दो।'

ख़ंदक खोदने में एक भारी पत्थर आ गया। सहाबा (रज़ि०) ने लाख कोशिश की, पर वह पत्थर टस से मस न हुआ। हज़रत सलमान (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में इस घटना की सूचना दी। हुज़ूर (सल्ल०) ने कुदाल की चोट जो उस पत्थर पर लगाई, तो एक चोट में वह पत्थर टुकड़े-टुकड़े हो गया, पत्थर से चमक पैदा हुई और मुसलमानों ने अपनी आंखों से देखा कि मिस्र, ईरान और शाम की सीमाएं साफ़ दीख पड़ रही हैं— इतिहास अपने को दोहरा कर अतीत को वर्तमान बना दिया करता है। और यहां वर्तमान के आइने में भविष्य झलक रहा था। यह नबी के चमत्कार का प्रभाव था, इन भेदों को हर कोई नहीं समझ सकता। यह मनः स्थिति हर किसी मन पर नहीं छाती— यह प्रकृति की देन और अल्लाह की कृपा थी। बुद्धि कहेगी कि इसके लिए तर्क लाओ, यह कैसे हो सकता है। इन्सान के हालात और परिस्थितियों में इतना असाधारण अन्तर नहीं हुआ करता। हम कहते हैं कि इस 'अन्तर' के लिए तर्कों की भी कोई कमी नहीं है। नहीं देखते हो कि एक ही बाग़ की एक ही क्यारी में गुलाब और धतूरे के दो पौंधे पैदा होते हैं, कोयले और हीरे के रासायनिक तत्वों में कोई अन्तर नहीं होता, पर एक चूल्हे में जलाया जाता है और एक बादशाहों के ताजों की शोभा बनता है। नबियों का सामान्य व्यक्तियों पर अनुमान न करो।

ख़ंदक की लड़ाई में भी कुरैशी शत्रुओं को विफलता का सामना करना पड़ा और उनके उपाय कुछ काम न आ सके। शत्रुओं का विचार ग़लत निकला कि उहद की लड़ाई के बाद मुसलमानों की हिम्मतें पस्त नहीं, तो आतंकित और भयभीत तो अवश्य हो गयी होंगी, पर उन्होंने महसूस किया, बल्कि आज़मा कर देख लिया कि मुसलमान पहले से और अधिक मज़बूत और सुदृढ़ हो गये हैं। हर टकराव और हर संघर्ष के बाद इस्लाम का नशा कम नहीं, बल्कि और तेज़ हो जाता है। □

# हज के लिए

सब जानते हैं कि नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज इस्लाम के मौलिक और महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य हैं। इन में से किसी एक के इंकार से भी मनुष्य इस्लामी सीमाओं से बाहर हो जाता है। और उनका छोड़ने वाला[1] अल्लाह का बहुत बड़ा अवज्ञाकारी है और इन कर्त्तव्यों के लगातार छोड़ने से ईमान बस कुछ यों ही-सा बाकी रह जाता है। जिस व्यक्ति के मन में खुदा का भय, रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत, और धर्म से लगाव होगा, वह इन मौलिक कर्त्तव्यों से विमुख हो ही नहीं सकता, भूल-चूक की और बात है।

हज का समय निकट आया तो हुज़ूर (सल्ल०) ने भी चौदह सौ सहाबा (रज़ि०) के साथ हज के कर्त्तव्य के अदा करने की नीयत से मक्का मुकर्रमा की ओर कूच फ़रमाया। कुरैशी शत्रुओं का छल-कपट और मुसलमानों का विरोध दृष्टि में था कि ये भाग्यहीन हर क्षण खुदापरस्तों के टकराव के लिए बहाने ढूंढते रहते हैं। जिसके मन में खोट होती है, वह दूसरे को भी अपना ही जैसा समझता है— इस विचार से कुर्बानी के ऊंट मुसलमानों ने अपने साथ ले लिए और हज का वस्त्र (एहराम) भी पहन लिया ताकि कुरैश को कहीं यह धोखा न हो जाए कि पैग़म्बरे इस्लाम हमला करने के लिए मक्का आ रहे हैं— हुक्म दिया गया कि जो मुसलमान हज करने के लिए चल रहे हैं, वे अपने साथ बस तलवार तो रख सकते हैं, पर कोई और हथियार नहीं ले जा सकते और तलवारें भी खुली हुई न रहें, उनको म्यान में रहना चाहिए।

यह हाजियों का कारवां था। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) उसके अमीर और सरदार थे। उद्देश्य केवल हज-कर्त्तव्य का अदा करना था। कुर्बानी के ऊंटों की पंक्तियां, शरीरों पर एहराम का वस्त्र और होठों पर 'लब्बैक अल्लाहुम-म, लब्बैक (हाज़िर हूं, ऐ अल्लाह! हाज़िर हूं।) के मनमोहक गीत! बस तलवारें अवश्य साथ थीं और उस समय में पानी के बरतनों, खजूर और सत्तू के थैलों और साए के लिए चादरों और खेमों की तरह तलवार का रखना भी

१. नमाज किसी हालत में माफ़ नहीं, रोज़ा सफ़र और बीमारी में माफ़ है, पर उसकी कज़ा अनिवार्य है और ज़कात और हज के लिए सामर्थ्य शर्त है।

अनिवार्य था— कोई अरब किसी क़रीबी नातेदार की मौत का पुरसा देने के लिए भी कहीं जाता तो तलवार ज़रूर साथ होती।

मदीने से कुछ मंज़िलों के बाद ज़ुलहुलैफ़ा नामी एक स्थान आया, जहां इस मुबारक क़ाफ़िले ने पड़ाव डाल दिया। हज के आरंभिक संस्कारों का यहां से आरंभ हो गया, मक्का से हिजरत के बाद हुज़ूर नबी करीम (सल्ल०) का यह पहला हज था। सावधानी के तौर पर हाजियों के कारवां में से एक आदमी को आगे रवाना कर दिया गया कि क़ुरैश के हालात और दिल का अता-पता लगाए। ज़ुलहुलैफ़ा से चल कर अस्फ़ान पर जब एकेश्वरवादियों का यह कारवां पहुंचा तो पैग़म्बर की ज़ुबानी सूचना मिली कि क़ुरैश तो इस ख़बर को सुन कर आग बगोला हो गये, उन के नव-जवान कहने लगे कि मुहम्मद और उसके साथियों को अब यह साहस हो गया है कि वह मक्का में हज करने के लिए मदीना से चल पड़ें। क्या वे चाहते हैं कि हमारे भाई-बन्दों को इस्लाम का चाव दिला कर फिर हम से और हमारे पैतृक धर्म से विमुख कर दें। हम यह मान भी लें कि अब्दुल्लाह के बेटे और उसके साथी हज करके चुपचाप यहां से चले जाएंगे और उनकी एक तलवार भी यहां म्यान से बाहर न आएगी— पर साहब! उन का यह ख़ामोश आना क्या कम क़ियामतें ढाएगा? मक्का-वास के समय में मुहम्मद को नमाज़ पढ़ते देख कर अच्छे-भले सूझ-बूझ वाले लोग मुसलमान हो गये— इन लोगों की तो ख़ामोशी भी बोलता हुआ प्रचार है।

हम मदीना के इस क़ाफ़िले का यहां आना किसी प्रकार पसन्द नहीं कर सकते, चाहे हरम की धरती को लहू से लाल ही क्यों न होना पड़े, घर पर तो छोटी-सी चींटी भी शेर होती है। और हम जो क़ुरैश के सरदारों की सन्तान हैं— भला अपने घर पर इस अपमान को स्वीकार कर लें। यह तो एक प्रकार से हमारी पराजय हुई। मदीना पहुंच कर भी मुहम्मद और उनके साथी मक्का का विचार नहीं छोड़ते। जो तलवारें बद्र और उहद में चमक चुकी हैं, क्या मक्का में म्यानों में ही लिपटी रहेंगी?

क़ुरैशी शत्रु जो मदीना पर चढ़-चढ़ गये थे, मक्का से कुछ मंज़िल दूर मुसलमानों के आ जाने की सूचना पा कर भला कैसे चुप बैठे रहते। उनमें विद्वेष और शत्रुता की एक लहर दौड़ गयी, तो तैयारियां शुरू हुईं। उकाज़ और मिना के मेलों में जाने के लिए नहीं- अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके शूरवीर साथियों से लड़ाई लड़ने के उद्देश्य से! ख़ालिद बिन वलीद के

भाग्य का सितारा अभी तक कुफ़्र की अंधियारी में छिपा था। उनके नेतृत्व में दो सौ वीर और अनुभवी कुरैश अस्फ़ान की ओर चल पड़े– यह अग्र सेना थी, असल सेना तो पीछे आ रही थी! कुरैशी शत्रुओं के तेवरों से रोष और क्रोध की चिंगारियाँ निकल रही थीं, पर प्रकृति मुस्करा रही थी कि मूर्खो! तुम्हारा कमांडर (ख़ालिद) जिस की तलवार आज कुफ़्र के समर्थन में नंगी है, एक दिन ऐसा आएगा कि यही तलवार इस्लाम के समर्थन का हक़ अदा करेगी।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को शत्रुओं की गतिविधियां और उनके इरादों की सूचनाएं मिलती रहती थीं और कुरैश के भी आदमी लगे हुए थे, जो यहां की सूचनाएं उन को जा कर देते। कुरैश ने उर्वः बिन मसऊद सक़फ़ी को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में बातचीत करने के लिए भेजा। उर्वः ने समझौते के लिए हुज़ूर (सल्ल०) से बातचीत की और यहां से वापस होकर कुरैशी शत्रु से बोला कि भाइयो! अमीरों और रईसों का तो कहना ही क्या है, मैंने नजाशी की शाही महि्फ़ल और कैसर व किसरा के बादशाही दरबार की तड़क-भड़क भी देखी है। पर अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के साथी, उन से जितनी श्रद्धा और लगाव रखते हैं और प्रतिष्ठा की जो शान मैंने वहां देखी, वह कहीं दीख नहीं पड़ी–

उर्वः से बातचीत तो हुई पर कोई बात पूरे तौर पर तै न पा सकी, इसलिए हुज़ूर (सल्ल०) ने हिराश बिन उमैया को कुरैश से इस समस्या पर बातचीत करने के लिए रवाना फ़रमाया– पर कुरैश बात के कच्चे और नीच निकले और वायदों के ख़िलाफ़ करने वाले भी। दूतों और एलचियों का उस अज्ञानता-युग में भी आदर किया जाता था, पर ये लात व हुबल के पुजारी थे– ख़ुदा को न पहचानने वाले, अन्यायी, अत्याचारी और छिछोरे भी– उन्होंने पहले तो नबी (सल्ल०) के दूत की सवारी के ऊंट को मार डाला, फिर स्वयं उनके साथ भी यही व्यवहार करना चाहते थे। वह तो कुछ कबीलों के लोगों ने बीच में आकर, बल्कि अवरोध पैदा कर के उन्हें बचा लिया, वरना उनकी जान जाने में कोई कसर न रही थी।

अभी बात-चीत का सिलसिला समाप्त न हुआ था, पर कुरैश से सहन न हो सका कि उन्होंने अपनी सेना की एक टुकड़ी मुसलमानों के इस क़ाफ़िले पर आक्रमण करने के लिए मक्के से रवाना कर दी। मुसलमान भी ग़ाफ़िल न थे। वे जानते थे कि कुरैश छेड़-छाड़ से मानने वाले नहीं, वे किसी न किसी बहाने

पहल अवश्य करेंगे। मुसलमान सिपाहियों ने इन हमलावार कुरैशियों को छापा मारने और हत्या और लूटपाट का अवसर ही न दिया। कुरैशी शत्रु तो कुछ करने के लिए तुल गये थे, पर उन्होंने देखा कि मुसलमान तलवार का उत्तर तलवार से देंगे, बराबर की टक्कर होगी, हालात नाजुक हो गये हैं, अधिक शेख़ी और अकड़ दिखायी तो जान से हाथ धोने पड़ेंगे— बचाव इसी में है कि चुप-चाप अपने को उनके हवाले कर दो— साँप हर जगह टेढ़ा चलता है, पर बांबी में इसे सीधा चलना पड़ता है, हर जगह सख़्ती अच्छी नहीं, मस्लहत देखकर कहीं-कहीं आदमी को नरम भी बनना पड़ता है।

कुरैश की इस टुकड़ी को गिरफ़्तार करके सहाबा (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में लाए। शत्रु समझ रहे थे कि आज जान की ख़ैर नहीं। यहीं जंगल में उनकी गरदनें उड़ा दी जाएंगी। हमलावर शत्रुओं के साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है— पर कृपा निधान ने उनको क्षमा कर दिया, बल्कि रिहा फ़रमा दिया।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और आपके सहाबा (सल्ल०) तो हज की नीयत से आए थे, छेड़-छाड़, लड़ाई और किसी प्रकार का टकराव उनका उद्देश्य ही न था, वे शान्ति और समझौता चाहते थे और इसी के लिए आपने हज़रत उस्मान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) को कुरैश से बातचीत करने के लिए मक्का रवाना किया। अबान के बेटे सईद मक्का में थे। हज़रत उस्मान (रज़ि०) की उन से नातेदारी थी। सईद बिन अबान के समर्थन में हज़रत उस्मान (रज़ि०) मक्का पहुंचे और कुरैशी शत्रु को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का पैग़ाम पहुंचाया।

जब यह सन्देश कुरैशी सरदारों तक इस्लाम के दूत ने पहुंचाया था, तो उस का उत्तर देना अनिवार्य था, उस पर वार्त्ता करनी थी ताकि समस्या स्पष्ट हो जाती, पर उन्होंने ऐसा करने के बजाए हज़रत उस्मान (रज़ि०) को नज़रबंद कर दिया— यह संसार भी विचित्र है कि यहां कहीं घटना होती कुछ है और बहुत से माध्यमों से होते-होते दूसरी जगह पहुंचते ही उसकी शक्ल कुछ हो जाती है, लोग रोचक कथा बनाने के लिए भी अपनी ओर से घटा-बढ़ा देते हैं। ख़बरों की वास्तविकता और घटना की शक्लों पर इस घट-बढ़ ने स्थिति को बड़ा नाज़ुक बना-बना दिया है।

हज़रत उस्मान (रज़ि०) की नज़रबन्दी की घटना भी इस ख़बर के साथ फैल गयी कि उनकी हत्या कर दी गयी। हुज़ूर (सल्ल०) को इसकी सूचना मिली

तो आपने अपने उद्गार व्यक्त किये कि उस्मान (रज़ि०) के खून का बदला लेना अनिवार्य है। फिर आप ने सहाबा (रज़ि०) को एकत्र किया। क्षण भर में नुबूवत की शमा के परवाने आस-पास इकट्ठा हो गये। उस्मान (रज़ि०) की शहादत की ख़बर से हज़ूर (सल्ल०) अति प्रभावित थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने बबूल के पेड़ के नीचे सहाबा किराम (रज़ि०) से अल्लाह की राह में मारने और मर जाने का वचन लिया।

विचित्र दृश्य था, चटयल मैदान— कहीं-कहीं खजूर के सूखे पेड़ और बबूल के वृक्ष दिखायी देते थे। दूर तक सन्नाटा छाया हुआ था और खुदा का नबी जांनिसारी के लिए सहाबा (रज़ि०) से वचन ले रहा था। मर्द और औरत जोश में आ-आकर वचन दे रहे थे कि अल्लाह के रास्ते में हमारी जानें काम आ जाएं, तो यह सब से बड़ा सौभाग्य होगा— यह वचन यथास्थिति बोल रहा था— अर्थात् यह कि अफ्फ़ान के बेटे उस्मान (रज़ि०) के खून की एक-एक बूंद का बदला लिया जाएगा। शत्रु इस अभिमान में न रहें कि हम पराए देश में हैं, मदीना यहां से दूर है— खुदा की क़सम! हम बद्र और उहद से अधिक वीरता के साथ लड़ेंगे। ये जाने आख़िर हैं किस दिन के लिए, खुदा की राह में इनका काम आ जाना जीवन का चरमोत्कर्ष है, इतिहास में यह बैअत (वचन) 'बैअतुर्रिज़्वान' के नाम से विख्यात है— पर बाद में जाकर इस ख़बर की वास्तविकता का पता चल गया कि सूचना ग़लत थी। हज़रत उस्मान (रज़ि०) शहीद नहीं हुए, शत्रुओं के यहां नज़रबंद हैं। □

# हुदैबिया का समझौता

इसके बाद संधि की वार्ता चली।

सुहैल बिन अम्र अपनी वाक-पटुता में विख्यात थे। सामान्य कुरैशियों की तरह उन में स्वभाव की तेज़ी भी न थी। अति गंभीर स्वभाव के व्यक्ति थे। दूतत्त्व के लिए ऐसे ही व्यक्ति का चयन उचित था— कुरैश का पर्यवेक्षक (सुहैल) मक्का से हुदैबिया पहुंचा। मक्का से कुछ कोस की दूरी पर एक कुंए का नाम हुदैबिया है। वहां जो छोटी बस्ती आबाद है, उसे भी 'हुदैबिया' ही कहते हैं। इसी से यह घटना 'हुदैबिया का समझौता' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सुहैल हुदैबिया पहुंच कर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए। समझौते की शर्तों पर बहुत देर तक बात-चीत होती रही। सुहैल की कोशिश यह थी कि कुरैश की बात कहीं नीची न हो जाए। कोई शर्त मैंने दब कर मान ली तो मक्का के सरदारों को मुंह दिखाने के योग्य नहीं रहूंगा। लोगों ने मुझे भरोसे का आदमी समझ कर ही तो भेजा है। कुरैशी सरदारों ने मुझे विदा करते हुए कहा था कि देखना सुहैल! तुम हमारी पैतृक प्रतिष्ठा के चार्टर पर हस्ताक्षर करने के लिए जा रहे हो। बहुत बड़ा दायित्व हमने तुम्हें सौंप दिया है।

वार्ता का क्रम चलता रहा, यहां तक कि दोनों फ़रीकों ने कुछ शर्तें मान लीं। हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को समझौता लिखने के लिए कहा। हज़रत अली (रज़ि०) ने सन्धि-पत्र पर लिखना आरम्भ किया। लेख का आरम्भ इस वाक्य से हुआ—

यह वह संधि-पत्र है, जिसे 'अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०)' ने मान लिया। इस पर कुरैश का दूत सुहैल बोला, यह क्या लिख दिया, हमारी और तुम्हारी सारी लड़ाई ही इस बात पर है कि हम मुहम्मद को अल्लाह का रसूल नहीं मानते। अगर हम आपको खुदा का रसूल मान लें तो फिर हम में और आप में कोई झगड़ा ही बाकी न रहे। संधि-पत्र में 'अल्लाह के रसूल' का शब्द नहीं

लिखा जाएगा, 'अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद, काफ़ी है— इस पर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि 'यद्यपि तुम झुठलाते हो, पर खुदा की क़सम! मैं खुदा का रसूल हूं'— फिर आप ने हज़रत अली (सल्ल०) को आदेश दिया कि 'रसूल' का शब्द लेख से मिटा दिया जाए— हज़रत अली (रज़ि०) की अन्तरात्मा कांप उठी, कहा, हुज़ूर का हर आदेश मेरे सिर आंखों पर, पर 'रसूल' का शब्द कदापि न मिटाऊंगा— और हुज़ूर!

खता नमूदा अम व चश्म आफ़रीं दारम
(मुझ से ग़लती हुई है, पर (इस ग़लती पर तो) मुझे शाबाशी मिलनी चाहिए)

हुज़ूर (सल्ल०) ने अली (रज़ि०) से कहा कि अच्छा, बताओ मेरा नाम कहां है। हज़रत अली (रज़ि०) ने अपनी उंगली उस पर रख दी और हुज़ूर (सल्ल०) ने 'अल्लाह के रसूल' का शब्द स्वयं अपने हाथ से मिटा दिया। इसके बाद संधि-पत्र की शर्तें लिखी गयीं—

१ मुसलमान इस वर्ष हज किए बिना लौट जाएं,

२. अगले वर्ष हज के अवसर पर मक्का आएं तो तीन दिन से अधिक न ठहरें,

३. हथियार लेकर न आएं, बस अधिक से अधिक तलवार ला सकते हैं, उनको भी बे-म्यान न होने दिया जाएगा,

४. जो मुसलमान मक्का में पहले से रहते हैं और ठहरे हुए हैं, उनमें से किसी एक को भी अपने साथ मदीना न ले जाएं, पर इसके विपरीत कोई मुसलमान मक्का आना चाहे, तो उसको न रोकें,

५. ग़ैर-मुस्लिमों या मुसलमानों का कोई व्यक्ति अगर मदीना जाए तो उसे वापस कर दिया जाएगा। और कोई मुसलमान मक्का पहुंच जाएं, तो उसे वापस न किया जाएगा।

अभी समझौता लिखा ही जा रहा था, दोनों ओर के नुमाइन्दों के हस्ताक्षर न हुए थे, लेख अधूरा था कि इतने में सुहैल के बेटे अबू जुन्दल गिरते पड़ते, पांव में बेड़ियां पहने हुए वहाँ आ पहुँचे और फ़रियाद करने लगे—

'ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) इस्लाम लाने के अपराध में शत्रुओं ने मुझे क़ैद में रखकर बड़ी-बड़ी पीड़ाएं दी हैं। ये देखिए मेरी पीठ को देखिए। कोणों के निशानों की कोई गिनती नहीं है— और मेरा सीना जलते पत्थरों से दाग़ा जाता है। हुज़ूर मुझसे कहा जाता है कि जब तक मुहम्मद से विमुख्ता की घोषणा

न करोगे, ऐसे ही सताए जाओगे मैंने साफ़-साफ़ कह दिया कि मूर्खो! मुहम्मद (सल्ल०) के साहचर्य और आज्ञा-पालन पर मुझ जैसी हज़ार जानें कुरबान। तुम मेरे देह के एक-एक अंग को भी अलग कर दोगे तब भी अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के आज्ञापालन का दम भरता रहूंगा।

हुज़ूर बड़ी कठिनाइयों से इन अन्यायियों की क़ैद से निकल कर आया हूं, पैरों की बेड़ियां भी नहीं काट सका। अब सरकार! मैं जाऊंगा नहीं, हुज़ूर (सल्ल०) के क़दमों में ही रहूंगा।

अबू जुन्दल (रज़ि०) की फ़रियाद सुनकर सहाबा किराम सिहर-सिहर उठे। स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अति प्रभावित हुए।

'—मुहम्मद सन्धि-पत्र की शर्तों पर अमल करने का यह सबसे पहला अवसर है। समझौते की शर्त के अनुसार इस व्यक्ति (अबू जुंदल) को मुझे वापस दे दो।' सुहैल ने हुज़ूर (सल्ल०) से कहा—

'—पर अभी समझौता लिखा नहीं जा सका—' हुज़ूर (सल्ल०) ने उत्तर में कहा—'

'—तो फिर हमें सिरे से समझौता ही स्वीकार्य नहीं—' सुहैल ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया।

'—अच्छा, इन (अबू जुंदल) को यहीं रहने दो—' हुज़ूर (सल्ल०) ने कई बार आग्रह के साथ फ़र्माया, पर सुहैल किसी प्रकार तैयार न हुआ। वह यही कहता रहा कि अबू जुंदल को आपके पास नहीं छोड़ा जा सकता। अतएव हज़रत अबू जुंदल (रज़ि०) को उसी दशा में मक्का वापस जाना पड़ा।

अबू जुन्दल—पीड़ित और क़ैदी अबू जुन्दल की आंखों में विनती तैर रही थी कि सरकार! ख़ुदा के लिये मुझे क्रुर तथा निष्ठुर शत्रुओं में वापस न भेजिये और हुज़ूर (सल्ल०) की कृपा-दृष्टि मूक भाषा में कह रही थी कि अबू जुन्दल सब्र कर! यह पीड़ितावस्था अधिक दिनों तक न रहेगी। अल्लाह तेरी हिफ़ाज़त करेगा, सब्र करने वालों का बड़ा दर्जा है।

सहाबा किराम (रज़ि०) कोइस घटना पर बड़ा दुख था। किसी-किसी की आंखों में तो आंसू आ गये। उन का बस चलता तो अबू जुन्दल (रज़ि०) को रोक लेते, जाने न देते, पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्म के आगे किसी को कुछ कहने-सुनने का साहस न था—समझौते की शर्तों पर भी उनको दुख था।

प्रत्यक्ष में मुसलमानों की ओर से दब कर समझौता किया गया था, हर शर्त मक्का के शत्रुओं ही के पक्ष में जाती थी, पर अल्लाह ने इस समझौते को 'खुली विजय' कहा, वह्य आयी—

'हम ने तुझ को खुली हुई विजय दी।' —सूरः फ़तह-१

हुदैबिया के समझौते से पहले ग़ैर मुस्लिम और मुसलमान एक दूसरे से दूर-दूर रहते थे। मक्का के लोग मक्का में और मदीना के रहने वाले मदीना में! लड़ाई और झगड़ों ने एक दूसरे के बीच पराएपन की दीवार खड़ी कर दी थी। दोनों ओर से जान जाने का ख़तरा भी लगा रहता। हुदैबिया के समझौते के बाद मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम एक दूसरे से मिलने-जुलने लगे और दोनों नगरों में आने-जाने का सिलसिला शुरू हो गया।

सहाबा किराम का जीवन, चरित्र तथा आचरण, रीति-नीति, खाने-कमाने के ढंग, शिष्टाचार, सच्चाई, नेकी और पाकबाज़ी को देख-देख कर ग़ैरों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा—और यह प्रभाव दिलों को इस्लाम की ओर खींच-खींच कर ले गया। समझौते के इस युग में अच्छी-भली तायदाद कुफ़्र की सीमाओं से निकल कर इस्लाम की गोद में आ गयी।

ख़ालिद सैफ़ुल्लाह (रज़ि०) ने, जिनकी तलवार ने सीरिया को जीत लिया और अम्र बिन आस (रज़ि०) ने, जिनको इतिहास मिस्र के विजेता के नाम से पुकारता है, उसी समय में इस्लाम का सौभाग्य प्राप्त किया। यह हुदैबिया का समझौता जिसकी शर्तों को देख कर उमर (रज़ि०) सरीखा धैर्यवान और शूर-वीर व्यक्ति भी अपने दुख को व्यक्त किये बिना न रह सका—वास्तव में 'खुली विजय' सिद्ध हुई, इस्लाम की चर्चा मक्का में पहले से और अधिक होने लगी, जो लोग अभी तक इस्लाम न लाये थे, वे भी दबी भाषा में इसे स्वीकारते कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद के साथी क्या हैं, फ़रिश्ते हैं—धरती पर चलती-फिरती नेकियां और बोलती हुई सज्जनता और भलाइयां, बात के सच्चे, क़ौल के पक्के, त्याग तथा सहानुभूति की प्रतिमूर्ति, ईमानदार, सत्यवादी—तो जिस धर्म ने बुरे लोगों को इतना अच्छा बना दिया, वह धर्म निश्चय ही सच्चा हो सकता है—ये बातें फैलने लगीं। दारुन्नदवः तक में भी इस प्रकार की चर्चायें छिड़ीं, सच्चाई सुमन-सुगंध की तरह फैल रही थी, उसे रोक कौन सकता था, कोई दुष्टावृत्ति व्यक्ति फूलों से चाहे कितना ही बैर रखता हो, उसकी सूंघने की शक्ति तो फूलों की सुगंध सूंघ कर निश्चय ही सुख-चैन का अनुभव करेगी।

□

# ख़ैबर की लड़ाई

मदीना में दो गिरोह थे, एक कपटाचारियों का और दूसरा यहूदियों का—ये दोनों गिरोह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और सहाबा किराम (रज़ि०) के विरुद्ध तरह-तरह के षड़यंत्र करते रहते, ये षड़यंत्र बड़े भयानक प्रकार के थे, मुसलमानों में फूट डालने की कोशिश की जाती। अरब के दूरस्थ क्षेत्रों से जो क़बीले अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में इस्लाम के बारे में प्रश्न करने आते, उनको तरह-तरह से बहकाया जाता। मक्का के शत्रुओं ने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध के जितने मोर्चे स्थापित किये, कपटाचारियों और यहूदियों के मश्विरे उनमें शरीक थे और यहूद तो बग़ली घूंसा और आस्तीन के सांप बने हुये थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की दया-क्षमा से उन्होंने सदा नाजायज़ लाभ उठाने का यत्न किया। यहूदियों की जगह कोई और होता तो उपकार-भार से गरदन न उठाता और अल्लाह के रसूल के सद्व्यवहार का मूल्य समझता—पर ये यहूदी थे, जिनको हज़रत ईसा रूहुल्लाह (अलै०) ने सांप के बच्चों की उपाधि दी थी। कृतघ्नता उनकी प्रकृति थी और इस्लाम-विरोध उनका स्वभाव।

यहूदियों के षड़यंत्र योजनायें और उनके नापाक इरादे एक-एक करके उद्घाटित होते गये, कोई बात छिपी न रही। उनका रवैया आरंभ ही से शत्रु-भाव से परिपूर्ण था। मक्का के शत्रु के घावों का मामला, वह तो बद्र और उहद तक ही सीमित रहा और यह बला दूर ही से टल गयी—अगर कहीं मदीने की बस्ती पर कुरैश आक्रमण करते, तो यहूदी उनका साथ देते और मुसलमानों पर तलवारें लेकर टूट पड़ते। मुसलमानों की प्रगति देख-देख कर उनके कलेजे पर सांप लोटते, और उनके मन क्रोधाग्नि से भीतर ही भीतर जलने लगे।

नैतिकता और न्याय का यही तक़ाज़ा है कि ऐसे शत्रुओं को अपने में न रहने दिया जाये। ये संपोले अब आस्तीनों में रखने योग्य न रहे थे-अतएव अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ख़ुदा के हुक्म से बनू नज़ीर को मदीना से निकाल दिया और ये लोग ख़ैबर में आबाद हो गये। देश निकाला की सज़ा इन

षड़यंत्रकारी शत्रुओं के करतूतों के मुकाबले में बहुत हल्की सज़ा थी—

पर यहूदी किसी का उपकार मानने वाले कब थे। उनके मन में पाप, कपट और लोभ घर कर चुका था। न्याय और मानवता का अंश मात्र भी उनके मन में बाक़ी न रहा था।

ख़ैबर पहुंच कर यहूदी चैन से न बैठे। इस्लाम-विरोध की भावना वहां पहुंच कर और तेज़ हो गयी। उनकी मंडलियां और आग्नेय वक्ता अरब क़बीलों में जा-जा कर और गांव-गांव घूम-घूम कर इस्लाम के विरुद्ध लोगों को भड़काते। अहज़ाब की लड़ाई यहूदियों के इसी प्रचार का भयानक परिणाम थी।

यहूदी षड़यंत्र करने और झूठ बोलने में बहुत आगे रहते थे। उन का षड़यंत्र बड़ा गहरा और बारीक होता—एक उदाहरण और केवल एक दृश्य—!

गर्मी का समय है। आसमान से आग बरस रही है। हवाओं में शोलों की लपट मिल-जुल गयी है, धूप इतनी तेज़-कि सचमुच सवा नेज़े पर सूर्य आ गया। रेत के कण सूर्य की गर्मी पाकर अंगारे बन गये और पत्थर के कणों से चिंगारियां निकलने लगीं। खजूर झूलसे हुये दिखायी देते हैं मानो उन पर वर्षा की एक छींट भी नहीं पड़ी।

इस स्थिति में एक यहूदी ख़ैबर से चल कर क़बीला ग़त्फ़ान के एक गांव में पहुंचता है—यह यहूदी—धोखादेही की प्रतिमूर्ति, और साक्षात षड़यंत्र—दर्मियानी क़द, पर दाढ़ी ढोड़ी से भी कुछ नीचे लटकी हुई, सर के बाल उलझे हुये, ऊंची क़बा, पर उसकी आस्तीनें ढीली-ढाली, माथे की सलवटें बे-तर्तीब मानो कोई किसी कपड़े में भिगो कर शिकनें निकाले बिना सूखने के लिये फैला दे, दांतों पर मैल जमा हुआ, आंखें चमकीली, पर छल-कपट का प्रदर्शन करने वालीं।

खजूरों के झुंड में अरबों के झोंपड़े थे, पूरी बस्ती में एक कुंवां था, जिस पर औरतों-मर्दों और बच्चों की भीड़ लगी थी—पानी भरा जा रहा था। पानी यों तो हर समय और हर ऋतु में ज़रूरी है, पर गर्मी में तो उसकी एक-एक बूंद अमृत का कार्य करती है। अरब के मरुस्थलों में प्यासे यात्री को हीरे-मोती की थैली नहीं, एक घूंट पानी चाहिये-प्यास की मौत बड़ी दर्दनाक होती है।

यहूदी ने हांपते हुये ऊंटनी को बिठाया। गांव के लोग उसके आस-पास इकट्ठा हो गये। इस जलन और धूप में ठीक दोपहरी में किसी का आना अचंभे से ख़ाली न था। आतिथ्य-सत्कार करने वाले अरबों ने यहूदी का स्वागत किया

और अपने खेमे में उसे ले गये। खजूर, पनीर सत्तू उसके सामने लाये गये-और बकरी का दूध भी। यहूदी ने पानी के लिये संकेत किया, क्षण भर में पानी आ गया। यहूदी पानी का पूरा डोल गट-गट पी गया। उसने अपनी दाढ़ी को निचोड़ा जो पानी में भीग गयी थी—प्यासा व्यक्ति घबराया हुआ भी तो होता है।

'—ऐ शेख़! इधर कैसे आना हुआ और किसी साथी, सहपाठी और क़ाफ़िले के बिना अकेले कैसे चल पड़े और-' गांव के एक बूढ़े आदमी ने पूछा और उसकी बात पूरी न हुई थी कि बीच में दूसरा व्यक्ति बोल पड़ा।

'—इधर का जंगल बड़ा भयानक है। आये दिन क़ाफ़िले लुटते रहते हैं। अकेले आदमी का यात्रा करना तो कैसे भी उचित नहीं। आप ने बड़े साहस—बल्कि मैं कहूंगा (क्षमा कीजिये) ग़लती की जो बिल्कुल अकेले इस ओर चले आये।'

'—पर मौत से बड़ा ख़तरा अगर सामने हो तो आदमी आख़िर क्या करे?' -यहूदी ने उत्तर दिया।

'—हम समझे नहीं! आपकी बात कुछ बौखलायी हुई-सी है, थोड़ा-सा पानी और पी लीजिये। आप इस आग बरसते में दूर से चल कर आ रहे हैं—मौत से बढ़ कर ख़तरनाक चीज़ क्या हो सकती है! विचित्र! माथे का पसीना तो पोंछिए और दाढ़ी के पेचों से धूल तो झाड़िये। थकन आप की त्यौरियों से बरस रही है-' कई आदमियों ने मिल कर कहा-इस प्रकार कि एक ने दो शब्द कहे, दूसरे ने उस पर और वृद्धि कर दी और तीसरे ने कुछ और बढ़ा दिया।

इस पर यहूदी ने भाषण शुरू कर दिया—

'भाइयो! इस धूप और लू में किसी का अरब के चटयल मैदानों में बिल्कुल अकेले यात्रा करना निश्चय ही मूर्खता है, बल्कि यों समझिये कि स्वयं अपने निज से शत्रुता करने के बराबर है, जान मुझे भी प्यारी है और जीवन को मैं भी प्रिय रखता हूं-पर जिस बात के कहने और जिस ख़तरे की सूचना देने के लिये मैं यहां आया हूं वह अति महत्वपूर्ण है (ग्रामीणों की निगाहें बूढ़े और कपटी यहूदी के होंठों पर जम कर रह गयी...)

'सुनो! यह ख़बर तो तुम तक किसी न किसी तरह अवश्य पहुंच चुकी होगी कि कुरैश के कबीले बनू हाशिम के एक व्यक्ति मुहम्मद (सल्ल०) नामी ने नुबूवत का दावा किया है—यह अब से कई साल पहले की बात है। कुरैश ने उस

पर सख़्ती की तो वह अपने साथियों को लेकर मदीना चला आया, अब मदीना अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) और उसके साथियों का केन्द्र बन गया है—अब्दुल्लाह का बेटा यह कहता है, जानते हो? बहुत कम जानते हैं, जो न जानने के बराबर है-दो तीन ग्रामीणों ने एक साथ मिल कर उत्तर दिया—तो लो, मैं बताता हूं! बनू हाशिम का यह पैग़म्बर, अरबों के पैतृक गर्व और पारिवारिक महानता का इन्कारी है, वह कहता है कि इंसान इंसान सब बराबर हैं, तो यह समता का पाठ अरब की महानता के विरुद्ध खुली हुई चुनौती है—अर्थात अब दास और स्वामी एक ही दस्तरख़्वान पर बैठ कर खाना खाया करेंगे—यह नहीं हो सकता। हम ऐसा नहीं होने देंगे, ग़ुलाम और मालिक बराबर नहीं हो सकते, अरब का स्वाभिमान इसे सहन नहीं कर सकता-गांव के लोग बीच में बोल पड़े, पर भाइयो! आप यों ही चुप-चाप बैठे रहे और इस फ़ित्ने का पूरी शक्ति के साथ मुक़ाबला न किया, तो आप को यह अपमान सहन करना पड़ेगा, तुम्हारे उपास्यों और ख़ुदाओं को तोड़-फोड़ कर मिट्टी में मिला दिया जायेगा। (ग्रामीणों के चेहरे मारे क्रोध के लाल हो-हो जाते हैं) मदीने से सूचना मिली है कि मुसलमान इस बार तुम ग़त्फ़ानियों पर बड़े ज़ोर-शोर के साथ चढ़ाई करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। वे कहते हैं कि ग़त्फ़ानियों का बल टूट गया और इस क़बीले को वश में कर लिया तो पूरा क्षेत्र हमारी मुट्ठी में आ जायेगा। (पर हमारी तलवारों की धार क्या मुड़ जायेगी और हमारा बाहु-बल क्या समाप्त हो जायेगा?) तलवार का उत्तर तलवार से और वाण का उत्तर वाण से दिया जायेगा। ग़त्फ़ानियों से छेड़-छाड़ कर के ये मुसलमान घाटे में रहेंगे। यह लड़ाई बहुत महंगी पड़ेगी। ग़त्फ़ानी आज तक किसी लड़ाई में हारे नहीं हैं। शाम के लड़ाका डाकुओं को हम ने कई बार हराया है और नज्द के रास्तों की खजूरों, बबूलों और पहाड़ियों पर हमारी विजय-पताका फहरा रही है-एक ग्रामीण अपनी नंगी तलवार को हिलाते हुये बोला!...

यहूद ने क़बीला ग़त्फ़ान की तरह अरब के दूसरे क़बीलों में भी मुसलमानों के विरुद्ध क्रोध और प्रतिशोध की एक आग भड़का दी। क़बीला ग़त्फ़ान का ख़ैबर के यहूदियों से समझौता भी था, और वे एक-दूसरे के मित्र थे। नबी (सल्ल०) की हिजरत के छठे वर्ष क़बीला ग़त्फ़ान ने मदीने पर आक्रमण करने के लिये बहुत बड़े पैमाने पर तैयारियां शुरू कर दीं।

ख़ैबर के यहूदियों के षड़यंत्र भयानक खेल खेल रहे थे। मदीना के

मुनाफ़िकों से भी वे सांठ-गांठ रखते थे और उनके माध्यम से मुसलमानों के हालात मालूम करते रहे। मुनाफ़िकों का सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई बिन सलूल यहूदियों के इस इस्लाम-विरोध से समय पर लाभ उठा रहा था। उनमें उत्तेजना पैदा करने के लिये वह ज़ालिम मदीना से झूठी सूचनाएं और गढ़ी हुई सूचनाएं भेजता रहता। उसने अपने दूत को ख़ैबर भेजा, जिसने ख़ैबर के यहूदियो को जाकर सूचना दी कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद तुम लोगों पर आक्रमण करने की तैयारियां कर रहे हैं। नितदिन मश्विरे होते हैं। मुसलमानों के वक्ता जनता को लड़ाई पर उभारते हैं, तलवारों पर पानी रखा जा रहा है और नेज़ों की अनियां तेज़ की जा रही हैं— पर तुम लोग इस ख़बर को सुनकर कहीं डर न जाना, ऐसा न हो कि साहस खो बैठो कि ये मुसलमान न जाने कितनी भारी सेना लेकर चढ़ाई करेंगे, ये गिनती के आदमी हैं। युद्ध के हथियार भी पूरे नहीं हैं, ये तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, पर फिर भी शत्रु को कमज़ोर और बेचारा समझना न चाहिए, तुम अपने उपाय से अचेत न रहो और फ़ित्ने को उभरने से पहले दबा दो, हमारे दिल तुम लोगों के साथ हैं और दिल नहीं तलवारें भी।

ख़ैबर के यहूदियों ने इस ख़बर के मिलते ही आस-पास के क़बीलों को उकसाया कि मुसलमानों के आक्रमण करने से पहले हमें स्वयं मदीना पहुंच कर उन पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। तुम इस लड़ाई में हमारा साथ दोगे तो ख़ैबर के खजूरों की आधी पैदावार तुम्हें भेंट की जाएगी। कनाना, यहूदा बिन क़ैस और ग़त्फ़ान के क़बीलों ने इस शर्त को मंजूर कर लिया, हामी भर ली, नव-जवानों ने रानें ठोंक कर कहा कि मदीना की धरती को हम मुसलमानों का क़ब्रस्तान बना देंगे, बद्र व उहद और ख़ंदक़ की तमाम लड़ाइयों का बदला इस एक ही लड़ाई में ले लिया जायेगा।

यहूदी और ग़त्फ़ान के मदीने पर हमले की तैयारियों की सूचना पाकर हुज़ूर नबी करीम (सल्ल०) मुसलमानों की सेना लेकर ख़ैबर की ओर चल पड़े। सहाबा किराम (रज़ि०) के पास हथियारों की कमी थी, पर ईमान की ज्यादती ने इस कमी को पूरा कर दिया। शहीद होने का शौक़ उन की पाकबाज़ आखों में झलक रहा था, त्यौरियां बोल रही थीं कि हज़रत मूसा कलीमुल्लाह (अलै०) के इन अवज्ञाकारी अनुयायियों को ख़ाक व ख़ून में तड़पा कर ही मदीने को लौटेंगे और ये ग़त्फ़ानी, जिन को अपनी वीरता पर बड़ा गर्व है, बहुत जल्द देख लेंगे कि अल्लाह की राह में लड़ाई करने वालों से लड़ना हंसी-खेल नहीं है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इस लड़ाई में सबसे पहली बार इस्लामी सेना के लिये झंडे तैयार कराये। एक झंडा हुबाब इब्ने मुंज़िर को और दूसरा झंडा साद बिन उबादा को दिया। तीसरा झंडा हज़रत अली बिन अबू तालिब (रज़ि०) को मिला—झंडा जो हज़रत अली (रज़ि०) को दिया गया था, ख़ास अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का झंडा था, जो हज़रत आइशा (रज़ि०) की मुबारक चादर से बना था।

ख़ैबर के आस-पास मरुद्यानों का सिलसिला था, आबादी में पहाड़ियां थीं, जिन में छः क़िले थे। पांच क़िलों को तो मुसलमानों ने बहुत जल्द जीत लिया, पर यह छठा क़िला, जो क़मूस के नाम से प्रसिद्ध था, सबसे ज़्यादा मज़बूत था, बहुत कोशिश के बाद भी क़ब्ज़े में न आया। इस क़िले की स्थिति भी कुछ ऐसी थी कि हमला करने वाली सेना के लिये कठिनाइयां और प्रतिरक्षकों के लिये सुविधायें थीं। क़मूस क़िले का नेतृत्व मर्हब के सुपुर्द था। मर्हब की शक्ति और शारीरिक बल की सारे अरब में धूम थी। आमतौर पर प्रसिद्ध था कि मर्हब अकेला एक ओर हज़ार पहलवान एक ओर! इतना वीर और बलवान पहलवान जिस क़िले का सरदार हो, उसे मज़बूत होना ही चाहिये था।

संध्या का समय था, सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ था। हां मरुद्यानों पर सांध्य कालिमा दौड़नी शुरू हो गयी थी। प्राण न्यौछावर करने वाले सहाबा (रज़ि०) घेरे हुये थे, नुबूवत की शमा के चारों ओर परवानों की भीड़ थी। इतने में हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि कल मैं उस व्यक्ति को झंडा दूंगा, जिस के हाथ पर ख़ुदा विजय प्रदान करेगा, और जो ख़ुदा और ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) को चाहता है और ख़ुदा और उसके रसूल उसको चाहते हैं।

सहाबा किराम (रज़ि०) में हर व्यक्ति इसी तमन्ना और इसी आशा में था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मुझे झंडा प्रदान करेंगे, आशा जब बंधती है तो फैलती और शाखा पर शाखा होती चली जाती है। रात बीती, सुबह की सफ़ेदी फैली, इंतिज़ार के शौक़ का दम आंखों में खिंचकर आ गया था, सभी इंतिज़ार में थे कि देखें अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किसे झंडा देते हैं। तमन्नायें बड़े असमंजस में थीं—कि इतने में अली बिन अबू तालिब (रज़ि०) का सितारा चमका। यह विशेष सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अली को अपने मुबारक हाथ से झंडा प्रदान कर दिया। अली (रज़ि०) का चेहरा मारे हर्ष के गुलाब की तरह रंगीन हो गया, पर इस रंगीनी में ज़िम्मेदारी का

एहसास भी झलक रहा था कि देखना! अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जो पद प्रदान किया है और जो ज़िम्मेदारी सौंपी है, उसमें कोताही न होने पाये।

क़िला क़मूस के सरदार और बलवान पहलवान मर्हब ने रात को सपना देखा कि एक शेर मुझे चीर रहा है। मर्हब ने पत्नी से सपने का उल्लेख किया, पत्नी ने उत्तर दिया कि तुम तो बड़े वीर हो, आज तुम्हें क्या हो गया है कि सपना देख कर जी छोड़े देते हो। सपने की बातों और कल्पनाओं पर कोई विश्वास नहीं किया करता। मर्हब ने कहा कि मैं अपने दिल को क्या करूं कि इस सपने के देखने के बाद मन बैठा जाता है, न जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा है और क्या घटना घटित होने वाली है।

सुबह को जब हज़रत अली (रज़ि०) समर-क्षेत्र में तश्रीफ़ लाये तो मर्हब भी बड़े ज़ोर-शोर के साथ वीर-रस से परिपूर्ण पदों को पढ़ता हुआ क़िले से बाहर निकला। उसने लोहे की कवच पहन रखी थी। एक हाथ में ढाल थी और दूसरे हाथ में चमकती हुई तलवार, नेज़ा बग़ल में था—उसके चेहरे से भय और ग़ज़ब टपक रहा था। घायल भेड़िये की-सी उसकी हालत थी—उसके पद—

'ख़ैबर की घाटियां मुझे यहां पहचानती हैं कि मैं मर्हब हूं और मैं वीर हूं, अनुभवी और दुनिया देखे हुये हूं और हथियार बन्द हूं।'

उसके उत्तर में हज़रत अली हैदरे कर्रार (रज़ि०) ने पूरे उत्साह से फ़रमाया—

'मैं वह हूं कि मेरी मां ने मेरा नाम शेर (हैदर) रखा था। शेर ही की तरह में भयावह हूं।'

शेर का नाम सुनते ही मर्हब को रात का सपना याद आ गया और उसके हाथ-पांव में सनसनी-सी दौड़ गयी, आदमी था जीवट और लड़ाई लड़ने में कुशल और अनुभवी, जी कड़ा कर के उस ने अपने को संभाला, लड़ाई शुरू हुई। मरहब ने अपनी वीरता और शक्ति का भली प्रकार कौशल दिखाया। जब वह पैंतरे बदल कर हज़रत अली (रज़ि०) पर आक्रमण करता, तो क़िले की फ़सील पर खड़े हुये यहूदी हर्ष-विह्वल हो चिल्ला पड़ते। इस शोर में प्रोत्साहन का भाव भी काम कर रहा था, पर यह अली से मुक़ाबला नहीं, हैदरे कर्रार (शेर बबर) से मुक़ाबला था। यह उस से लड़ाई थी, जिसके लिये विजय और ईश-सहायता निश्चित हो चुकी थी। आज एक मरहब क्या, सारी दुनिया भी अली (रज़ि०) के मुक़ाबले पर आ जाती तो हार जाती।—मरहब ने बहुत कुछ

दांव-पेच किये, पर शेरे खुदा के सामने ख़ैबर के गीदड़ की कुछ न चल सकी। हज़रत अली (रज़ि०) ने उसका क़िस्सा ही ख़त्म कर दिया। उसकी लाश कंकड़ियों पर तड़पने लगी। हज़रत अली (रज़ि०) ख़ैबर का मज़बूत दरवाज़ा तोड़ते हुये क़िले में दाखिल हो गये और मुसलमानों की तकबीर के शोर से ख़ैबर की युद्ध-स्थली गूंजने लगी।

विजय हो गयी तो स्वभावतः ख़ैबर की सारी धरती मुसलमानों के क़ब्ज़े में आ गयी। ख़ैबर की धरती अब रसूलुल्लाह (सल्ल०) की अधिकृत भूमि थी। ख़ैबर के यहूदी रसूल (सल्ल०) के दरबार में हाज़िर हुये और अर्ज़ किया कि ख़ैबर की भूमि हमारे ही क़ब्जे में रहने दी जाये। जो कुछ भूमि की उपज होगी, उसकी आधी पैदावार हम दे दिया करेंगे। यहूदियों का निवेदन स्वीकार कर लिया गया।

जब फ़स्ल का समय आता, तो अल्लाह के रसूल हज़रत अब्दुल्लाह बिन रुवाहा (रज़ि०) को पैदावार की बटाई लेने के लिये ख़ैबर भेज देते, हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) तमाम पैदावार को इकट्ठा कर के दो भागों में बांट देते और यहूदियों से कहते कि इसमें से जिस भाग को चाहो, ले लो। यहूदी इस पर साश्चर्य कहते, बल्कि कहने पर विवश हो जाते, दिल की आवाज़ रुक न सकतीः—

'ज़मीन व आसमान इसी न्याय और इंसाफ़ के सहारे क़ायम है।'

□

# शाम में

इस ज़माने में बादशाहों और शंहशाहों के अधीन सरदार और रईस हुआ करते थे। इन सरदारों और रईसों की हैसियत अर्द्ध स्वतंत्र शासकों जैसी थी। अपने क्षेत्र में ये भी एक प्रकार के छोटे-मोटे बादशाह थे, इनके यहां महल सरायें भी थीं और दरबार भी गर्म होते थे। भोग-विलास की महि्फ़लें और हर्ष के उत्सव भी होते थे।

कै़सरे रूम के अधीन बहुत से रईस और सरदार थे। इनमें शाम के सीमावर्ती क्षेत्र का शुरहबील बिन उमर नाम का एक रईस था। हुज़ूर (सल्ल०) ने जब बादशाहों और शासकों के नाम हिदायत के पत्र और दावतनामे भेजे तो एक पत्र शुरहबील के नाम भी हज़रत हारिस बिन उमैर (रज़ि०) के हाथ रवाना फ़रमाया। शुरहबील अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का पत्र पढ़ कर लाल-पीला हो गया और पत्रवाहक (हज़रत हारिस) की हत्या कर दी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को जब इस घटना की सूचना मिली, तो हुज़ूर (सल्ल०) ने हारिस के ख़ून का बदला लेने के लिये तीन हज़ार की सेना को हज़रत ज़ैद बिन हारिस (रज़ि०) के नेतृत्व में बलक़ा की ओर भेजा। ज़ैद एक दास थे, जिनको हुज़ूर (सल्ल०) ने आज़ाद फ़रमाया था। उन्हीं के सेनापतित्व में अंसार और मुहाजिरों के प्रतिष्ठित जनों ने सिपाही बनकर अल्लाह के रास्ते में लड़ना सहर्ष स्वीकार किया।

हुज़ूर (सल्ल०) ने हिदायत फ़रमायी कि ज़ैद बिन हारिसा शहीद हो जायें, तो उनके बाद हज़रत जाफ़र तैयार सेना की कमान अपने हाथ में लें, वह भी शहीद हो जायें तो अब्दुल्लाह बिन रुवाहा (रज़ि०) सेनापतित्व के कर्त्तव्य निभायें। हज़रत अब्दुल्लाह बिन रुवाहा (रज़ि०) बड़े प्रतिष्ठावान साथी थे। ख़ैबर के यहूदियों में पैदावार की बटाई लेने के लिये हर साल फ़स्ल पर जाया करते थे, उच्च कोटि के कवि भी थे।

इस्लामी सेना इधर मदीना से रवाना हुई, उधर जासूसों ने शुरहबील को सूचना दे दी कि मुसलमान हारिस के ख़ून का बदला लेने के लिये तुम्हारे क्षेत्र में आ रहे हैं। शुरहबील ने लड़ाई की तैयारियां शुरू कर दीं और थोड़े ही समय में

एक लाख के निकट भारी सेना कील-कांटे से लैस कर ली। दूसरी ओर स्वयं रूम का कैसर बहुत बड़ी सेना लेकर सीमा के एक महत्वपूर्ण मोर्चे पर आ कर जम गया।

शत्रुओं की सेना की कोई गिनती न थी। हथियार बहुत था, अरब के निहत्थों का शहंशाही और सरदारी से मुकाबला था। देश भी पराया था, यहां के जंगलों, घाटियों, मरुद्यानों, पहाड़ियों और रास्तों की भी जानकारी न थी, पर मुसलमान अल्लाह का नाम लेकर असत्यवादियों से टकरा गये, बड़े घमासान का रन पड़ा, मुसलमान बड़ी वीरता और जान लगा कर लड़े।

इस्लामी सेना के कमांडर हज़रत ज़ैद (रज़ि०) ने इतनी बर्छियां खायीं कि शहादत का जाम होंठों से आ लगा। इन के बाद हुज़ूर रसूले करीम (सल्ल०) के इर्शाद के अनुसार हज़रत जाफ़र तैयार (रज़ि०) ने सेना की कमान संभाली और इस्लामी झंडा हाथ में लेकर शत्रुओं की सेना में घुस पड़े। कुछ देर तक सवारी पर लड़ते रहे, फिर सवारी से कूद कर ज़मीन पर उतरे और इतनी वीरता और साहस से लड़े कि शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। हज़रत जाफ़र तैयार (रज़ि०) जिधर का रुख़ करते, शत्रुओं की सेना काई की तरह फट जाती। अन्ततः घावों से चूर हो गये और शहादत का सौभाग्य प्राप्त किया। अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) ने जब उनकी लाश देखी, तो हज़रत जाफ़र तैयार (रज़ि०) के देह पर तलवारों और बर्छियों के सौ के लगभग घाव थे, पर ये सब के सब घाव सामने की ओर थे, जाफ़र (रज़ि०) की पीठ पर एक खरोंच भी न थी। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) की शहादत हो चुकी, तो उनकी जगह हज़रत अब्दुल्लाह बिन रुवाहा (रज़ि०) ने ले ली। अब्दुल्लाह (रज़ि०) भी खूब लड़े, यहां तक कि शहादत का जाम पी लिया।

इस्लामी सेना के तीन सेनापति जब एक-एक कर के शहीद हो गये, तो हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने झंडा हाथ में लिया और वीरता और पौरुष का लोहा मनवा लिया। उस दिन एक नहीं, आठ तलवारें उन के हाथ से टूट-टूट कर गिरीं—मुसलमानों की सेना बहुत से बहुत तीन हज़ार थी और शत्रुओं की संख्या कम से कम एक लाख! हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने मौके की नज़ाकत का अन्दाज़ा लगाया और इतनी भारी सेना के घेरे से मुसलमानों की सेना निकाल लाये। वीरता, शूरता तथा कौशल का बे-मौक़ा इस्तेमाल कभी-कभी ख़तरे का कारण बन जाता है। सेना का बेहतरीन कमांडर और सफल जनरल वह है जो युद्ध की नाड़ी को पहचान सके। □

# मक्का की जीत

नबी की हिजरत के आठवें वर्ष की घटना है कि हुज़ूर (सल्ल०) मस्जिद में तशरीफ़ रखते थे, इतने में एक व्यक्ति अति दर्द भरे स्वर में फ़रियाद करने लगा:—

'ऐ खुदा! मैं मुहम्मद (सल्ल०) को वह समझौता याद दिलाता हूं, जो हमारे और उनके पुराने क़बीले में हुआ है। ऐ खुदा के रसूल ! हमारी सहायता करो और खुदा के बन्दों को बुलाओ...।'

हुज़ूर (सल्ल०) ने वस्तुस्थिति जाननी चाही तो मालूम हुआ कि क़ुरैश के संकेत पर, बल्कि उन की सहायता से बनू बक्र ने बनू खुज़ाआ का हरम की सीमाओं में खून बहाया और समझौता भंग कर दिया। हुदैबिया के समझौते की शर्तों के आधार पर बनू खुज़ाआ और मुसलमान एक दूसरे के मित्र हो गये थे, यही मुसलमानों के मित्र(खुजाआ) भेड़-बकरी की तरह हरम की सीमाओं में ज़िब्ह कर दिये गये।

अम्र बिन सालिम अपने क़बीले की ओर से फ़रियाद लेकर प्यारे नबी (सल्ल०) के दरबार में हाज़िर हुये थे। इस संबंध में तमाम घटनायें और स-विस्तार विवेचन सुन कर हुज़ूर (सल्ल०) अति प्रभावित हुये और क़ुरैश के पास तीन शर्तें ले कर दूत रवाना फ़रमाया।

पहली शर्त यह थी कि खुज़ाआ के मक़्तूलों का खून बहा दिया जाये। दूसरी शर्त यह थी कि क़ुरैश बनू बक्र के समर्थन से हाथ उठा लें और आख़िरी शर्त यह थी कि आम एलान करा दिया जाये कि हुदैबिया में जो समझौता हुआ था, वह टूट गया।

क़ुरैश के नुमाइन्दे ने रसूल (सल्ल०) के दूत से कहा कि पहली दो शर्तें तो हमें स्वीकार नहीं, हां, तीसरी शर्त मंज़ूर है। जब दूत मदीना वापस चला गया, तो क़ुरैश को अपनी ग़लती का एहसास हुआ कि हमने उतर देने में जल्दी और

तेज़ी से काम लिया, अबू सुफ़ियान को उन्होंने मदीना भेजा और अबू सुफ़ियान ने हुदैबिया के समझौते को फिर से बहाल करने की कोशिश भी की थी, पर अब मामला समझौता और समझौते की बहाली की सीमा से गुज़र चुका था। कुरैशी शत्रु की लगातार अनियमिततायें, षड़यंत्र और इस्लाम-विरोध किसी समझौते और सन्धि का अधिकारी न था। अबू सुफ़ियान का दूतत्व असफल रहा, इतिहास अपना पृष्ठ उलट चुका था, सच्चाई सफलता के क्षितिज से झांक रही थी और असत्य को आप ही आप ठंडे पसीने आ रहे थे।

हुज़ूर (सल्ल०) ने मक्का की ओर कूच की सामान्य घोषणा कर दी। कुछ दिन में कूच की तैयारियां पूरी हो गयीं, यहां तक कि रमज़ान की दस तारीख़ (सन् ०८ हि०) को हुज़ूर (सल्ल०) दस हज़ार फ़िदाई और श्रद्धालुओं को साथ लेकर मदीना मुनव्वरा से मक्का मुकर्रमा की ओर रवाना हो गये। मंज़िलों पर मंज़िलें तै करती हुई यह पवित्र सेना मक्का की सीमाओं में दाख़िल हुई—हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत अब्बास (रज़ि०) को हुक्म दिया कि जाओ, अबू सुफ़ियान को पहाड़ की चोटी पर ले जा कर खड़ा कर दो ताकि वह अपनी आंख से अल्लाह की सेना के रौब व दबदबे का अवलोकन कर ले। सबसे पहले अरब क़बीलों की सेनाओं ने पेश-क़दमी की। ग़िफ़ार क़ौम का झंडा सबसे आगे लहरा रहा था, फिर दूसरे क़बीलों के जांबाज़ सिपाही हथियारों से सजे हुये तक्बीर का नारा बुलंद करते हुये आगे बढ़े। अबू सुफ़ियान इस दृश्य को देख-देख कर सिहर-सिहर उठता, तक्बीरों के जोशीले नारों ने उसके बदन के रोंगटे खड़े कर दिये— यह तो वह ज़माना था कि मक्का की धरती मुसलमानों के लिये बिल्कुल ही तंग हो गयी थी और ख़ुदा के मानने वाले अति उत्पीड़न और विवशता का जीवन बिता रहे थे, यहां तक कि स्वयं प्यारे नबी (सल्ल०) को मक्का छोड़ देना पड़ा और आज मक्का के वातावरण में इस्लाम के झंडे लहरा रहे थे, उत्पीड़न विजय और प्रभुत्व से बदल गया था, कुफ़्र छिपने के लिये शरण ढूंढ़ रहा था और असत्य का आतंक धराशायी पड़ा था।

तमाम क़बीलों की टुकड़ियों के बाद अंसार की बारी आयी। तलवार, नेज़े, कमानें, कवचें तथा झंडे और सब से बढ़ कर उसका हर्षोत्साह, सर्वोत्कृष्ट निष्ठा और आस्था-भाव—क़ुरैश इस दबदबे को देख कर कांप-कांप गये। ये अंसार थे, रसूल (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) के सहायक, जिन्होंने मुहाजिरों के साथ भाइयों जैसा व्यवहार किया, इस्लाम के समर्थन में जो सदैव इस्लाम के लिये ढाल का काम करते रहे, पवित्र लड़ाइयों में, जिनकी वीरता और जिहाद के

उत्साह की कहानियों से इस्लामी इतिहास के पन्ने सदैव सुसज्जित रहेंगे।

क़बीलों की तमाम टुकड़ियां एक-एक करके गुज़र गयीं, तो सब से अन्त में स्वयं हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की शानदार सवारी मक्का के गली-कूचों को महकाती हुई और धूल के कणों को चंद्र -सूर्य बनाती हुई दीख पड़ी। हज़रत ज़ुबैर बिन अब्बास (रज़ि०) के हाथ में नबी (सल्ल०) का झंडा था और हुज़ूर (सल्ल०) ने अति विनीति-भाव तथा कृतज्ञता प्रदर्शन के लिये मुबारक सिर को झुका लिया था कि चमकता माथा कजावे से लग गया था—जिस समय अंसार की टुकड़ी मक्का में दाखिल हुई थी, तो हज़रत साद बिन उबादा (रज़ि०) अंसार के सेनापति थे, उनके मुंह से जोश की हालत में निकल गया था कि—

'आज घमासान का दिन है, आज काबा हलाल कर दिया जायेगा।'

इस वाक्य को जिस क़ुरैशी ने सुना, सिहर उठा। अबू सुफ़ियान ने जब नबी (सल्ल०) के सितारे को देखा, तो डरते-डरते शिकायत के स्वर में पुकारा—

'आप ने सुना, उबादा के बेटे साद, अंसार के सेनापति, ने क्या कहा था—'

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, 'साद ने ठीक नहीं कहा, आज तो काबा की महानता का दिन है...।'

इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अंसार की सेना का झंडा साद बिन उबादा से लेकर उनके बेटे को दे दिया जाये।

हरम की छत पर मासूम कबूतर हर्ष से नृत्य कर रहे थे कि आज काबे की पाकी का दिन था। हिजरत के दिन से लेकर आज तक हरम की धरती का कण-कण दिल थामे हुये था, पर अब उनके दिन फिर गये थे। निर्जीव कणों के मुख में जीभ आ गयी थी—और वाक-शक्ति भी! वे बोल रहे थे—

'हुज़ूर (सल्ल०) जब से आप यहां से तशरीफ़ ले गये हैं, हम पर हर्ष की एक प्रातः भी उदित नहीं हुई। हम उसी दिन से सरकार की राह देख रहे हैं, हम पर कैसी-कैसी कठिन घड़ियां आयी हैं और कैसी-कैसी भयानक सूचनायें हम तक पहुंची हैं—कभी यह कि उहद की लड़ाई में अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) को शहीद कर दिया गया, मुसलमानों की हेकड़ी समाप्त हो गयी, कभी यह कि मदीना के यहूदी और कपटाचारियों ने गाजर-मूली की तरह सहाबा (रज़ि०) को काट डाला और कुछ दिन में यह भी सुन लेना कि अब्दुल मुत्तलिब के घर का चिराग़ भी गुल हो गया—और हुज़ूर (सल्ल०) आप से लड़ने

के लिये जब कुरैशी शत्रु गुज़रे हैं, तो उनके जोश और हौसले को देख कर हम सिहर उठे थे और अल्लाह से दुआ करते थे कि ऐ अल्लाह! अपने नबी (सल्ल०) और मानवता के हितैषी नबी (सल्ल०) की सहायता करना। अल्लाह ने हम तुच्छ कणों की सुन ली। हुज़ूर (सल्ल०) तश्रीफ़ ले आये। कुरैश के दंभ व अभिमान के झंडे आप ही आप धराशायी हो गये।'

कुरैश मुसलमानों की सेना देख कर बहुत डरे। मुकाबले का साहस किसी में न था। उनके बाहु-बल आज निःशक्त हो गये थे, तलवारों के कौशल आप ही आप धुंधले हुये जा रहे थे। वीरता जवाब दे रही थी और अरब के पैतृक स्वाभिमान पर ओस सी पड़ गयी थी—पर इस हालत में भी कुरैश की एक टोली से सहन न हो सका। उसने साहस करके आक्रमण कर दिया, और क़र्ज़ बिन जाबिर फ़हरी, हब्श बिन अशअर दो सहाबियों को शहीद कर दिया। हज़रत ख़ालिद तलवार चलाना नहीं चाहते थे। वे देख चुके थे कि साद बिन उबादा के ये शब्द कि—

'आज घमासान का दिन है। काबा आज हलाल कर दिया जायेगा।'

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को पसंद नहीं आये-पर जब कि दूसरी ओर से तलवारें अपना काम कर रही थीं, उभार कर चुप बैठे रहना और लड़ाई-झगड़े से आंखें चुरा जाना कैसे भी उचित न था। ख़ालिद (रज़ि०) ने भी तलवार का उत्तर तलवार से दिया, यहां तक कि शत्रु मैदान छोड़ कर भाग निकले। उनके तेरह आदमी काम आये। उन की लाशें भी वे साथ न ले जा सके।

ख़ालिद के तेवर रोषयुक्त थे। नंगी तलवार पर दुश्मनों के लहू की लाली सनी थी। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ालिद से पूछ-गछ की। ख़ालिद और दूसरे साथियों ने पूरी घटना बिना कुछ घटाये-बढ़ाये बयान कर दी। मालूम हुआ कि लड़ाई की शुरूआत कुरैशी शत्रुओं ने की थी। छेड़-छाड़ उन्हीं की ओर से हुई थी, हमलावर वही लोग थे। मुसलमानों को विवश हो प्रतिरक्षा के लिए तलवार उठानी पड़ी। मुसलमान चुप रहते तो स्वयं हरम की धरती में बद्र व उहद का इतिहास दोहराया जाता— इस सूचना के बाद नबी (सल्ल०) के मुख से स्वर गुंजरित हुआ— 'अल्लाह का हुक्म यही था।'

मक्का में ख़ीफ़ नामी स्थान को हुज़ूर (सल्ल०) के आवास-गृह का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ख़ीफ़— बनू हाशिम के उत्पीड़न और विवशता का इतिहास अपने भीतर छिपाए हुए था। अब से कुछ वर्ष पहले जब कुरैशी

शत्रुओं ने बनू हाशिम का पूर्ण बहिष्कार कर दिया था और यह परिवार स्वय अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के व्यक्तित्व सहित जहां घेरे में ले लिया गया था, यह वही जगह थी! कल का घिरा हुआ और कैदी आज का विजयी था, जिन्होंने उसे कैद किया था और घेर लिया था, आज वे उसकी कृपा-दृष्टि के मुहताज थे। समय ने करवट बदली थी। अरब का इतिहास दूसरे ढंग पर लिखा जा रहा था और कुरैशी शत्रुओं की महानता के सितारे अब झिलमिला रहे थे— बल्कि डूब रहे थे। सत्य बहुत दिन तक पीड़ितावस्था में नहीं रह सकता। अत्याचार की नैया सदा एक ही रुख़ पर नहीं बह सकती। असत्य वादियों को एक निर्धारित समय तक ढील दी जाती है। जब पाप का घड़ा भर चुकता है, तो एक हल्की-सी लहर उसे डुबोने के लिए काफ़ी होती है। सदा से यही होता चला आया है। यह अल्लाह के क़ानून की सुन्नत है, जिस में कभी परिवर्तन नहीं होता।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ख़ाना काबा में तशरीफ़ लाए। हरम के दर व दीवार ने 'अभिनन्दन' किया—

'सलाम ऐ तायफ़ और मक्का के पीड़ित नबी सलाम! दरूद ऐ उहद के घायल दरूद! भूखा रह कर औरों को खिलाने वाले सख़ीदाता 'स्वागत'! ख़ंदक के पवित्र मज़दूर 'अभिनन्दन', मानवता के सबसे बड़े हितैषी 'दरूद व सलाम', विवश होकर मक्का परित्याग करने वाले यात्री 'बहुत-बहुत सलाम—!'

वह काबा जिस की बुनियादें हज़रत इब्राहीम (अलै०) और हज़रत इस्माईल (अलै०) के पवित्र हाथों ने उठायी थीं और जो केवल एक अल्लाह की भक्ति के लिए मुख्य था, मूर्ख और अज्ञानी कुरैश ने उसे बुत ख़ाना बना रखा था, जगह-जगह पत्थर और लकड़ी की मूर्तियां बिठा दी गयी थीं और दीवारों पर चित्र बने थे— हुज़ूर (सल्ल०) ने काबा में दाख़िल हो कर छड़ी से एक-एक मूर्ति पर चोट लगायी, यह आयत पढ़ते हुए—

'सत्य आ गया और असत्य मिट गया और असत्य मिटने के लिए ही था'

—सूर : बनी इस्राईल आयत नं० ८१

मूर्तियां टूट-टूट कर धरती पर गिरने लगीं, जिनके सामने शताब्दियों कुरैश के माथे टिके रहे थे, आज वे स्वयं धराशायी, बल्कि पद-दलित हो रही थीं। इस दृश्य को देख कर हजरे अस्वद (काला पत्थर) मुस्करा-मुस्करा दिया, 'मीज़ाबे रहमत' की ख़ुशी के मारे बाछें खिल गयीं और 'हतीम' प्रसन्न हो झूमने

लगा। मक्का के काफ़िरों ने काबे की दीवारों पर पैग़म्बरों और फ़रिश्तों के चित्र भी अपने अनुमानों और कल्पनाओं के आधार पर बना दिए थे। दिखाया यह गया था कि दोनों पावन पैग़म्बरों के हाथों में जुआ के वाण हैं।

हुज़ूर (सल्ल०) ने इन चित्रों को मिटाते हुए ईर्शाद फ़रमाया— 'यह क़ौम नहीं जानती कि नबी कभी भी जुआ नहीं खेलते—!'

मक्का में प्रवेश करते ही घोषणा की गयी थी—

१. जो व्यक्ति हथियार डाल देगा, उसके लिए शरण है,

२. जो व्यक्ति दरवाज़ा बन्द कर लेगा उसके लिए शरण है, और

३. जो व्यक्ति अबू सुफ़ियान के यहां पनाह लेगा, वह भी अपने को शरण में समझे।

क़ुरैशी शत्रु अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सामने आए लजाते हुए, सहमे हुए, डरे हुए, दिल अन्दर से कह रहे थे कि आज जान की ख़ैर नहीं, हमारे एक-एक अत्याचार का बदला लिया जायगा, एक-एक शहीद मुसलमान के खून के बदले का आज दिन है, हमें अपनी करतूतों की सज़ा भुगतनी ही पड़ेगी। अबू जुन्दल की पीठ से ले कर हब्शी बिलाल के सीने तक कितने शरीर हैं, जिनको हमने नहीं छेदा, नहीं तपाया, नहीं तरसाया और नहीं दाग़ा, हमारे ही अन्याय तथा अत्याचार के कारण ही अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद को घर से बे-घर होना पड़ा और फिर जब वह मदीना में पहुंच गये तो वहां भी हमने उन्हें चैन से किसी दिन बैठने न दिया। हमारे ही सरदार अबू सुफ़ियान की पत्नी ने मुहम्मद के प्रिय चचा हमज़ा का कलेजा चबाया था और इब्ने क़ुमैया हमीं में से तो था, जिसकी तलवार ने अब्दुल्लाह के बेटे और आमना के लाडले यतीम के चेहरे को लहूलुहान कर दिया था, पर कृपानिधान ने फ़रमाया—

'तुम से कोई पूछ-गछ नहीं, जाओ, तुम सब आज़ाद हो।'

बस यों समझो कि हत्यारों को फांसी के तख़्ते पर चढ़ा कर उतार दिया गया, तलवारें गरदन के क़रीब लाकर रोक दी गयीं। यमदूत गरदनों की ओर अपना हाथ बढ़ा चुका था . कि उसे रोक दिया गया— मानवता का पूरा इतिहास दया-क्षमा के इस उदाहरण से ख़ाली है। यह हर किसी की नहीं, सिर्फ़ कृपानिधान ही की शान थी और यह गुण आप ही के लिए मुख्य था।

सलाम उस पर कि जिसने ख़ून के प्यासों को क़बाएं दीं,
सलाम उस पर कि जिसने गालियाँ सुन कर दुआयें दीं।

सलाम उस पर कि दुश्मन को हयाते जाविदां दे दी,
सलाम उस पर अबू सुफ़ियान को जिसने अमां दे दी।
सलाम उस पर कि असरारे मुहब्बत जिस ने समझाए,
सलाम उस पर कि जिसने ज़ख़्म खाकर फूल बरसाए।
सलाम उस पर कि जिसके घर में चांदी थी न सोना था,
सलाम उस पर कि टूटा बोरिया जिसका बिछौना था।
दरूद उस पर कि जिसका नाम तस्कीने दिलो जां है,
दरूद उस पर कि जिसके खुल्क़ की तफ़सीर कुरआं है। –माहिरुल क़ादरी

एक समय के बाद सफ़ा का भाग्य जागा था कि प्यारे नबी (सल्ल०) वहां तशरीफ़ लाए थे–

बर ज़मीने कि निशाने कफ़े पाए तू बूद,
सालहा-सजदा-ए-साहिबे नज़रां ख़्वाहद बूद।

(जिस भू-भाग पर आपका पद-चिन्ह होता है, वह भाग दृष्टि वालों के लिए वर्षों नमन-स्थली बनी रहती है।)

सफ़ा में एक ऊँची जगह पर हुज़ूर (सल्ल०) बिराजमान हुए और ग़ैरमुस्लिमों से इस्लाम के लिए बेअत (वचन) लेना शुरू किया। इस्लाम स्वीकारने और बेअत का सौभाग्य प्राप्त करने का यह क्रम बहुत देर तक चलता रहा, अपवित्र आज पवित्र किए जा रहे थे, दिलों की स्याही ईमान के अमृत से धुली जा रही थी, चरित्र और आचरण बदल रहे थे, अज्ञानता का दम और वंश का गर्व आज मिट रहा था– बेअत और सत्य स्वीकारने के इस सौभाग्य में औरतें भी बराबर शरीक थीं, आज उनकी गुलामी की ज़ंजीरें भी कट रही थीं और उनके भाग्य का सितारा भी मान-सम्मान, भाग्य-सौभाग्य तथा प्रेम-स्नेह के क्षितिज से चमक रहा था। यह अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) थे– 'नेकों में सबसे बड़े नेक और धर्मात्माओं में सबसे बड़े धर्मात्मा।'

हुज़ूर (सल्ल०) की जीवन-चर्याओं तथा पवित्र जीवनी में यह बात कहीं नहीं मिलती कि आपने किसी परायी औरत का हाथ कभी छुआ हो, इसलिए मक्का-विजय के दिन औरतें जब इस्लाम स्वीकार करने उपस्थित होतीं, तो हुज़ूर (सल्ल०) एक प्याले में मुबारक हाथ डाल कर निकाल लेते और औरतें फिर उस प्याले के पानी से अपनी उंगलियां भिगोतीं– यह औरतों से बेअत का तरीक़ा था। □

# मक्का में

मक्का के तमाम शत्रुओं के मन अभी साफ़ नहीं हुए थे, किसी-किसी के मन में अभी खोट बाक़ी थी— मक्का-विजय के दूसरे दिन की घटना है कि हुज़ूर (सल्ल०) काबे का तवाफ़ (परिक्रमा) फ़रमा रहे थे। उमैर का जोशीला बेटा फ़ुज़ाला घात में था, उसने देखा कि हरम में लोगों की इस समय भीड़ नहीं है, इक्का-दुक्का आदमी आ जा रहा है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के शरीर पर कोई हथियार भी नहीं है, बिल्कुल निहत्थे हैं, ऐसा अवसर फिर नहीं आएगा, लाओ क़ातिलाना हमला करके उनका काम तमाम कर दूं। मुहम्मद (सल्ल०) क़त्ल हो गये, तो मक्का के इतिहास का रुख़ उसी क्षण बदल जाएगा। यह इस्लाम और मुसलमानों की सारी चहल-पहल और घमा-घमी उन्हीं के दम क़दम से है, दूल्हा न रहा तो बाराती बिखर ही जाएंगे। इस व्यक्ति ने हमारी पैतृक महानता के पन्नों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। कुसई और अदनान की आत्माएं तड़प रही होंगी कि कुरैश की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गयी।

फ़ुज़ाला तलवार कपड़े में छिपाए हुए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के निकट आया— 'क्या फ़ुज़ाला आ रहा है?'— अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पूछा।

'जी हां! मैं फ़ुज़ाला ही हूं।'— फ़ुज़ाला ने उत्तर दिया।

'तुम अभी अपने मन में क्या सोच रहे थे? अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा।

'—जी! कुछ नहीं!!' (भयभीत होकर) 'मैं तो मन ही मन में अल्लाह को याद कर रहा था।'

—फ़ुज़ाला के इस उत्तर पर हुज़ूर (सल्ल०) को हंसी आ गयी और इर्शाद फ़रमाया—

'तुम अपने ख़ुदा से क्षमा चाहो...!'

यह कह कर हज़ूर (सल्ल०) न फ़ुज़ाला के सीने पर अपना हाथ रख

दिया। फ़ुज़ाला कहते हैं कि इससे पहले मेरे मन में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के व्यक्तित्व से कुछ लगाव न था। मुझे झुंझलाहट आती थी कि उनके कारण हम कुरैश की पारिवारिक प्रतिष्ठा क्षतिग्रस्त हो गयी, पर हुज़ूर (सल्ल०) के मुबारक हाथ से स्पर्श होते ही मेरा सीना सुख-शान्ति की निधि बन गया। और आप के स्नेह तथा श्रद्धा का दरिया जोश मारने लगा।

फ़ुज़ाला मक्का के नव-जवान थे, जिनकी रातें मदिरा पान में और सुन्दरियों के झुरमुट में बीतती थीं। शराब पी, नशा हुआ और बहुत-सी वासनायुक्त गोदों को स्वागत के लिए तैयार पाया। पतिव्रता की कल्पना से मक्का वासी कोसों दूर थे। गाना-बजाना, पीना-पिलाना, परायी औरतों के साथ मेल-जोल, जुआ, गन्दी बात— हर व्यक्ति की यह तमन्ना—

इतनी बरस पड़े कि नहा लूं शराब में!

फ़ुज़ाला जब प्यारे नबी (सल्ल०) के पास से वापस हुए, तो रास्ते में उनकी प्रेयसी का घर पड़ता था। उस औरत ने देखा तो फ़ुज़ाला के चेहरे को बदला हुआ पाया। वासनामय निगाहें अब झुकी हुई थीं, जैसे लज्जा-भार से ये अब धरती से लग कर फिर उठेंगी नहीं! औरत महसूस कर रही थी कि फ़ुज़ाला ने भूले से भी उस पर ग़लत निगाह न डाली। फ़ुज़ाला करीब से गुज़रे, तो उसने स्वयं ही टोक कर कहा—

'—फ़ुज़ाला! मेरी एक ज़रा-सी बात तो सुनते जाओ।'

हज़रत फ़ुज़ाला (रज़ि०) ने निगाहें नीचे करके उत्तर दिया—

'नहीं, नहीं, खुदा और रसूल (सल्ल०) ऐसी बातों से मुझे मना करते हैं।'

अल्लाह! अल्लाह!! या तो वासना-तृप्ति और पाप-तृप्ति की वह स्थिति— और अब पाक बाज़ी की यह शैली—!

क्या नज़र थी, जिसने मुर्दों को मसीहा कर दिया।

हुज़ूर (सल्ल०) का जिन दिनों मक्का में वास था, वहां एक और घटना घटित हुई। अस्वद बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) की एक लड़की फ़ातमा नाम की थी। उसने अजीब तमाशा किया, कुछ घरानों में चली गयी और नातेदारों और जानने वालों के नाम से धोखा देकर ज़ेवर ले आयी, फिर उनको बेच खाया।

यह मुक़दमा अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सामने पेश हुआ। लोगों ने मशविरा करके हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि०) से कहा कि आप अल्लाह के

रसूल (सल्ल०) से सिफ़ारिश कर दें कि फ़ातमा बिन्त अस्वद को हुज़ूर (सल्ल०) छोड़ दें। उस बेचारी से भूल-चूक हो गयी थी। मक्का का वातावरण ही इसी प्रकार का रहा है। हज़रत उसामा (रज़ि०) ने 'हां' कह दी, बल्कि हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होकर सिफ़ारिश भी कर दी। इस पर हुज़ूर (सल्ल०) के मुबारक चेहरे का रंग बदल गया, फ़रमाया—

'तुम अल्लाह की हदों (सीमाओं) के बारे में मेरे पास सिफ़ारिश लेकर आए हो।'

हज़रत उसामा (रज़ि०) को अपने इस कार्य पर बड़ी लज्जा आयी। विनीत-भाव से कहा— 'ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! मेरे लिए अल्लाह से मग़्फ़िरत(क्षमा) तलब कीजिए। मैं क्षमा चाहता हूं।'

जिस दिन उसामा ने सिफ़ारिश की है, उसी दिन संध्या को हुज़ूर (सल्ल०) ने मुसलमानों की सार्वजनिक सभा में भाषण दिया।

'—पिछली उम्मतों (समुदायों) के विनाश का एक कारण यह भी था कि जब उनमें से कोई प्रतिष्ठावान व्यक्ति चोरी करता तो उसे छोड़ देते और जब कोई कमज़ोर आदमी चोरी करता तो उस पर हद जारी करते (अर्थात् दंड देते)। ख़ुदा की क़सम! जिसके कब्ज़े में मेरी जान है, अगर मुहम्मद की बेटी फ़ातमा भी चोरी करेगी, तो उसका हाथ भी काटा जाएगा।'

□

# मक्का की विजय के बाद

मक्का पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी, पर अभी तक अरब के कुछ क़बीलों के दिलों में इस्लाम-विरोध की आग सुलग रही थी। कुफ़्र की अज्ञानता रह-रह कर उकसाती और उभारती, देखना मक्का वासियों की तरह कहीं हथियार न डाल देना। अरब का स्वाभिमान पराजय स्वीकार नहीं कर सकता।

मक्का से कुछ दूरी पर एक छोटी-सी बस्ती में असाधारण चहल-पहल दीख पड़ रही है, लोग ख़ेमों और छप्परों में आ जा रहे हैं। हर व्यक्ति किसी तैयारी में है। तर्कशों में तीर डाले जा रहे हैं, धनुषों को परखा जा रहा है। और तलवारें इकट्ठी की जा रही हैं।

'—अब जीवन नीरस है। अपमान के जीवन से मौत बेहतर है—' एक बूढ़े अरब ने कहा।

'—आपने मेरे मुख की बात छीन ली। हुबल तोड़ दिया गया, लात व उज़्ज़ा के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। अपने उपास्यों के इस अनादर का हम मुसलमानों से बदला लेंगे, मृत्यु या विजय, बस यही हमारा नारा है। हम उस समय तक लड़ेंगे, जब तक देह में एक सांस भी बाक़ी है। हमारी तलवारों की धारें मक्का से विजय के नशे को बहुत जल्द उतार देंगीं।'— दूसरे व्यक्ति ने कहा। —हवाज़िन क़बीले की ओर से दूत आया है। वहां हर तरह की तैयारी पूरी हो चुकी है। उन्होंने कहला भेजा है कि हम ख़ैबर वालों के संकेत के इन्तिज़ार में हैं, हमें रण स्थिति में उतरा हुआ ही समझो। तायफ़ और मक्का के मरुद्यान और बाग़ दोनों क़बीलों में आधे-आंधे विभाजित होंगे। मुसलमानों का पल्ला नीचा देखेंगे तो मक्का वासी भी हमारे साथ हो जाएंगे। उनके दिलों के घाव अभी हरे हैं। समय की नज़ाकत से हमें फ़ायदा उठाना चाहिए'— एक ग्रामीण सरदार ने तलवार धरती पर टेक कर कहा।

क़बीलों को फिर एक बार मुसलमानों के विरुद्ध उभार दिया गया। आग्नेय वक्ताओं ने बस्तियों में जा-जा कर भाषण दिए कि हम अपने उपास्यों के

अनादर का बदला लिए बिना नहीं रहेंगे। मुसलमान मक्का में हमारे खुदाओं को अपमानित करके आदर के साथ मदीना वापस नहीं हो सकते। हमारी तलवारें आखिर किस दिन काम आएंगी— बनी मुज़र और बनी हिलाल कबीलों ने भी हवाज़िन की युद्ध-घोषणा का समर्थन किया। इस लड़ाई में औरतों और बच्चों के साथ माल व दौलत, यहां तक कि ऊंटों और बकरियों को भी साथ ले लिया गया, ताकि लड़ने वाले अपने परिवार और धन-सम्पत्ति के बचाव के लिए घरों का रुख़ न करने पाएं।

हुज़ूर (सल्ल०) को जब क़बीलों की युद्ध की इस तैयारी की सूचना मिली, तो आप भी जान न्यौछावर करने वाले साथियों को लेकर मक्का से आगे बढ़े। हरम के निकट हुज़ूर (सल्ल०) लड़ना नहीं चाहते थे। मुसलमानों की सेना में वृद्धि होती जा रही थी। स्वयं मक्का के दो हज़ार व्यक्ति इस्लामी सेना में शरीक हो गये। इनमें वे लोग भी थे जो हाल ही में ईमान लाए थे। नव-मुस्लिमों के अतिरिक्त जिन मूर्तिपूजकों से समझौता हुआ था, उन के लोग भी इस्लामी सेना में भरती हो गये और यह संख्या बढ़ते-बढ़ते बारह हज़ार तक पहुंच गयी। सैनिकों की भारी संख्या देख कर कुछ अभिमान-सा पैदा हो गया।

शत्रुओं की सेना से इस्लामी सेना का मुक़ाबला हुआ। क़बीलों ने पहले ही से अपनी सेना को एक ऐसी जगह जमा दिया था, जहां से मुसलमानों पर बड़ी आसानी से तीर बरसाए जा सकते थे। शत्रुओं ने पोज़ीशन लेकर मुसलमानों की सेना पर तीरों की वर्षा शुरू कर दी। अग्रिम पंक्ति पर तीरों का भरपूर हमला रहा, घायल धरती पर गिरने लगे।

तीरों का ओलों की तरह तांता बंधा था। मुसलमान सेनानियों को सिर उठाने, सोचने और इस कटु स्थिति के लिए कोई उपाय खोज निकालने की मोहलत ही नहीं मिली। चारों ओर मौत ही मौत दिखायी देती थी, लोग घबरा कर भाग निकले। बड़े-बड़े सूरमाओं के पाँव उखड़ गये, पर ऐसे अवसर पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अति धीरज के साथ सवारी से उतरे और फ़रमाया—

'इसमें तनिक भर सन्देह नहीं है कि मैं नबी हूं और अब्दुल मुत्तलिब का बेटा हूं।'

हुज़ूर (सल्ल०) के इस कथन का सार यह था कि सेनाओं, दलों और टुकड़ियों के विजय-पराजय का मेरे सच्चे नबी होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मेरी खुद ज़ात अपने स्थान पर सत्य का माप दंड है। □

# तबूक का युद्ध

शाम व्यापार की बहुत बड़ी मंडी थी। मक्का और मदीने से प्रायः व्यावसायिक काफ़िले वहां आते जाते रहते थे– नबी (सल्ल०) की हिजरत का नवां साल था कि एक काफ़िला शाम की ओर से मदीने में आया और काफ़िले वालों ने सहाबा किराम (रज़ि०) को यात्रा के दूसरे हालात के अलावा एक अति महत्वपूर्ण घटना की सूचना दी–

–हम शाम से आ रहे हैं इस वर्ष कपड़े का भाव बहुत मंदा रहा, यमनी चादरें चार-चार दिरहम में बिकी हैं।

–व्यापार में तो उतार-चढ़ाव होता ही रहता है।

पर इन व्यावसायिक स्थितियों से अधिक महत्वपूर्ण बात हम आप से कहने के लिए आए हैं।

–वह क्या? जल्दी कहिए! पहले आपको वही बात कहनी थी।

–बादशाह कैसर ने अपनी बादशाही में सार्वजनिक घोषणा कर दी है कि मौता की हार का मुसलमानों से बदला लिया जाएगा। आज उन असभ्यों तथा ख़ानाबदोशों ने मेरे अधिकारी को परास्त किया है, कल मुझ पर चढ़ दौड़ेंगे। उनके साहस बहुत बढ़ गये हैं। इस बढ़ते फ़ित्ने को पूरी शक्ति के साथ कुचल देना चाहिए।

–यह सूचना तो निश्चय ही अति चिन्ता जनक है। कैसर कोई यमामा और ग़स्सान का शासक नहीं है, वह तो बादशाहों का बादशाह है। किसरा के अतिरिक्त उसकी बराबरी का बादशाह आज और कौन है?

–अरे साहब! ईसाइयों के तमाम कबीले भी मिल गये हैं। क्रासों को हाथों में लेकर लोगों ने कस्में खायी हैं कि मदीने पर विजय पाकर ही दम लेंगे। जनता में बड़ा जोश पाया जाता है, घोड़े, तलवार, बर्छे वाण, धनुष, कवचें, लौह खोद और अन्न इकट्ठा किया जा रहा है।

—तो फिर क्या होगा?

—इतनी कमज़ोरी की बातें करते हो फ़ुज़ैल! हम ने क़ुरैश की बड़ी-बड़ी सेनाओं को हराया है— और वह भी इस तरह कि निहत्थे या हथियारों की भारी कमी थी। हमारा भरोसा सिर्फ़ अल्लाह की ज़ात पर है। क़ैसर को अपनी बादशाही पर गर्व है, पर रण-स्थलों में उस की औलाद को भी मालूम हो जाएगा कि मुसलमान ऐसे होते हैं। सत्य के सामने असत्य ठहर नहीं सकता, सच्चाई झूठ से दब नहीं सकती।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को इस घटना की सूचना मिली तो हुज़ूर (सल्ल०) ने युद्ध की तैयारी की सार्वजनिक घोषणा कर दी। यह रूम के क़ैसर से मुक़ाबला था, पहली तमाम लड़ाइयों से बड़ी लड़ाई थी, इसलिए पर्याप्त हथियारों की आवश्यकता थी। हज़रत उस्मान ग़नी (रज़ि०) ऊंटों और घोड़ों की क़तारें और एक हज़ार दीनार लेकर नबी (सल्ल०) के दरबार में उपस्थित हुए। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) ने चालीस हज़ार दिरहम हाज़िर किए। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) ने घर के तमाम माल व अस्बाब का आधा हिस्सा भेंट चढ़ा दिया—

यह कौन आ रहा है? तेज़, तेज़, अबा का[1] दामन ज़मीन पर घिसट रहा है?

—यह अबू क़हाफ़ा के नामी बेटे अबूबक्र (रज़ि०) हैं।

—अरे साहब! यह तो अपने साथ ऊंट, बकरी, तलवारें, कवच, पहनने के कपड़े, यहां तक कि पानी पीने के बरतन तक लिए जा रहे हैं।

—फिर सिद्दीक़ जो ठहरे, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के गुफ़ा के साथी, सच्चे मित्र, इनके त्याग का कौन मुक़ाबला कर सकता है? अब तक उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) का नम्बर बढ़ा हुआ था— आधा माल लेकर नबी (सल्ल०) के दरबार में हाज़िर हुए थे— मगर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) का त्याग सब से बढ़ गया।

'यह अल्लाह की कृपा है, जिसे चाहता है, प्रदान करता है, और अल्लाह बड़ी कृपाओं वाला है।'

(सूरः जुमा, आयत : ४)

—और भाइयो! घर का एक-एक तिनका हाज़िर करने के बाद अबूबक्र

---

१. एक पहनावा

(रज़ि०) किस प्रकार सिर झुकाए खड़े हैं, मानो उन से कुछ न बन सका। इस उच्च आचरण, प्राण न्यौछावर करने की भावना और ईमानी शक्ति पर आने वाली नस्लें गर्व किया करेंगी।

अबू अक़ील (रज़ि०) एक ग़रीब अंसारी थे, मज़दूरी करके पेट पालते, कभी काम न मिलता तो घर में उपवास रहता। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की घोषणा सुन कर उन से रहा न गया। एक व्यक्ति के मरुद्यान में पहुंचे और रात भर मज़दूरी पर कुंए से पानी निकाल कर पेड़ों को सींचते रहे। इस परिश्रम से प्राप्त की गयी मज़दूरी में चार सेर खजूर मिली, दो सेर तो बाल-बच्चों को दे आए और आधी खजूरें लेकर नबी (सल्ल०) के दरबार में उपस्थित हुए। मन अंदर से भिचा-भिचा-सा था, अपनी ग़रीबी पर उनको दुख हो रहा था, सोचते थे कि दूसरे लोगों ने तो दिरहम व दीनार के ढेर लगा दिए हैं, मेरी इन दो सेर खजूरों का क्या महत्व होगा, बल्कि देखने वाले उल्टा उपहास करेंगे कि इस तुच्छ भेंट के लाने से तो यही अच्छा था कि घर में बैठे रहते, मगर ग़रीबी पर गर्व करने वाले प्यारे नबी (सल्ल०) ने अबू अक़ील की निष्ठा को यह महत्व दिया कि उनकी लायी हुई खजूरों को तमाम मूल्यवान माल व अस्बाब पर बिखेर कर इस निष्ठापूर्ण भेंट को सब से ऊंचा कर दिया। अंसारी का हृदय खुशी से फूल गया, मन का संकोच और लाज का दुख जाता रहा। वह अपनी निर्धनता पर गर्व करने लगे।

अति तीव्र गर्मी का समय था। आसमान से सच-मुच आग बरस रही थी और धरती आग-कुंड बन गयी थी। झुलसा देने वाली लू चल रही थी। यह समय घरों में बैठ कर आराम करने का था, यात्रा भी कोई मंज़िल, दो मंजिल की न थी। सैकड़ों मील की दूरी, गर्मी की तेज़ी, रास्ते में कोसों दूर तक पानी और छायादार पेड़ों का पता नहीं! सवारियों की कमी और उस पर कष्ट यह कि एक-एक ऊंट पर कई-कई व्यक्ति सवार, और बहुत-से तो पैदल चल रहे थे। घोर विपत्ति का सामना था पर सहाबा किराम (रज़ि०) ने हर कष्ट को खुले मन के साथ सहन किया।

तबूक में पहुंच मुसलमानों की यह सेना, जिस की संख्या तीस हज़ार के लगभग थी, ठहर गयी। अब आगे शाम का क्षेत्र था। एक महीने तक अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मुसलमानों की सेना के साथ तबूक में ठहरे रहे, शाम वालों को जब मालूम हुआ कि मदीने पर उनके हमला करने से पहले मुसलमान स्वयं

कील-कांटे से लैस होकर शाम की सीमाओं में आ पहुंचे तो उनके मनोबल टूट गये। कैसर का प्रतिशोध-भाव ठंडा पड़ गया और जिन ईसाई नव-जवानों ने मुसलमानों को खाक व खून में तड़पाने का बीड़ा उठाया था, उनके हौसलों ने आप ही आप हथियार डाल दिए। मुसलमानों के इस वीरता पूर्ण कदम ने रूम और शाम ही नहीं, मिस्र व ईरान तक हिला दिया, जहां-जहां इस घटना की सूचना पहुंची। लोग महसूस करने लगे कि कोई नयी क्रांति आने वाली है।

□

# जान निछावर करने वाले एक सहाबी

एक सहाबी का नाम था अब्दुल्लाह (रज़ि०) और ज़ुलबिजादैन उपाधि, यह अभी बहुत कम-सिन थे कि बाप चल बसे। चचा ने यतीम भतीजे का लालन-पालन किया, बचपन ही में इस्लाम की आवाज़ कान में पड़ चुकी थी, यह शौक़ बढ़ता ही चला गया। चचा उन पर मेहरबान था। यह बड़े हुए तो उस ने बकरियां और माल व अस्बाब दे कर भतीजे का बहुत कुछ ग़म दूर किया।

चचा मूर्ति पूजक था, इस्लाम से बैर-भाव रखता और मुसलमानों की तरक़्क़ी से जलता। चचा के डर के मारे अब्दुल्लाह (रज़ि०) का शौक़ दबा-दबा रहा। यह मन की बात खुलकर व्यक्त न कर सके, पर ईमान का जोश कब तक दब कर रहता। आख़िर एक दिन उन्होंने साहस करके चचा से साफ़-साफ़ कह दिया कि प्यारे चचा! मैं वर्षों से इंतिज़ार कर रहा हूं कि आप अब इस्लाम लाते हैं, तब इस्लाम लाते हैं, लेकिन आप का अब तक वही हाल है। जीवन का कोई भरोसा नहीं, न जाने कब मौत का दूत आ पहुंचे, मुझे तो आप अनुमति दे दीजिए कि मैं मुसलमान हो जाऊं। इस सौभाग्य से आख़िर कब तक महरूम रहूं?

भतीजे की इस वार्ता को सुन कर चचा आग बबूला हो गया। आँखें क्रोध के मारे लाल हो गयीं। क्रुद्ध स्वर में बोला—

'—कान खोल कर सुन ले अब्दुल उज़्ज़ा (अब्दुल्लाह का पुराना, अज्ञानता-युग का नाम) अगर तूने अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद का धर्म स्वीकार कर लिया, तो तेरा सारा माल व मताअ छीन लूंगा, यहां तक कि तेरे शरीर पर कपड़े का एक तार भी न रहने दूंगा।'

अब्दुल्लाह (रज़ि०) के मन में इस्लाम घर कर चुका था। दुनिया के माल व दौलत का लालच उनको अपनी ओर खींच न सकता था, चचा से बोले—

'मूर्ति-पूजा और अनेकेश्वरवादी बातों से मेरी तबियत उदासीन हो चुकी है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का पालन मैं अवश्य करूंगा। अब रही दुनिया और उसका सामान, तो उसका कोई भरोसा नहीं, इन सब चीज़ों को यहीं एक दिन रह जाना है। इन चीज़ों के लिए मैं सच्चे धर्म को छोड़ दूं— यह कितने घाटे का व्यापार है? आप शौक़ से एक-एक चीज़ मुझसे ले लीजिए।'

अब्दुल्लाह ज़ुलबिजादैन (रज़ि०) का चाचा भी बड़ा अन्यायी और हठ का पूरा निकला। इस्लाम का नाम सुनते ही वह सिर से लेकर पैर तक और मन से लेकर दृष्टि तक बदल गया। आंखों में दया-कृपा की जगह निर्दयता आ गयी, मानो न वह उसका चचा है और न यह उसका भतीजा! रक्त और नातेदारी का लगाव भी जाता रहा-उस अन्यायी ने अब्दुल्लाह (रज़ि०) से एक-एक चीज़ छीन ली, यहां तक कि शरीर से कपड़े भी उतरवा लिए।

अब्दुल्लाह (रज़ि०) इसी प्रकार अपनी बूढ़ी मां के पास पहुंचे। बेटे को इस हालत में देखकर मां का मन भर आया, पूछा—बेटे क्या हुआ? ये तुम्हारे कपड़े किस ने छीन लिए? अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने उत्तर दिया, मां, मैं इस्लाम ला चुका हूं और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होने का शौक़ रखता हूं। मैं मदीना में पहुंच कर ही रहूंगा। आप से हो सके तो मेरा तन ढांकने के लिए कपड़े की व्यवस्था कर दीजिए। मां ने बेटे को एक कम्बल दिया। अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने कम्बल के दो टुकड़े किए, एक टुकड़े को तहबंद की तरह बांधा और दूसरा चादर बना कर ओढ़ लिया और मदीने के लिए चल पड़े।

माल व मताअ के छिन जाने का अब्दुल्लाह (रज़ि०) को तनिक भी दुख न था। वह मन ही मन में प्रसन्न हो रहे थे कि मदीना पहुंच कर पैग़म्बरे इस्लाम के दीदार का सौभाग्य प्राप्त होगा। उनकी कृपा दृष्टि एक ओर और सारी दुनिया की नेमतें एक ओर! मैंने इस व्यापार में नफ़ा कमाया, कुछ खोया नहीं, धर्म को संसार पर प्रमुखता दी, मूल जीवन तो परलोक का जीवन है।

झिलमिलाते हुए सितारों की छावों में अब्दुल्लाह (रज़ि०) मस्जिदे नबवी में पहुंचे और दीवार से टेक लगा कर बैठ गये, इंतिज़ार की घड़ियां बड़ा सब्र चाहती हैं। एक-एक क्षण एक-एक शताब्दी जान पड़ता है— इतने में नुबूवत का सूर्य उदित होता दीख पड़ा, अब्दुल्लाह (रज़ि०) की आंखों में श्रद्धा की ज्योति

छा गयी, तमन्नाएं मारे खुशी के झूमने लगीं, बल्कि इतराने लगीं।

'—तुम कौन हो?'— अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने प्रेम भरे स्वर में पूछा।

'—मेरा नाम अब्दुल उज़्ज़ा है, ऐ अल्लाह के रसूल! परदेसी हूं, निर्धन हूं, आप के दीदार का आकर्षण खींच कर लाया है। संमार्ग चाहता हूं।'— अब्दुल्लाह ने उत्तर दिया।

'—देखो! तुम्हारा नाम अब्दुल्लाह! और उपाधि— ज़ुलबिजादैन! (धारीदार कपड़ो वाला) तुम हमारे पास ठहरो और मस्जिद में रहो।' —अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का इर्शाद सुनकर अब्दुल्लाह (रज़ि०) का चेहरा खुशी से झूम गया। उनकी तमन्ना से और अधिक और हौसले से बढ़ कर नवाज़ा गया।

अहले सुफ़्फ़ा (चबूतरे वाले) उन निर्धन साथियों का गिरोह थे, जो सबसे अधिक समय हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में गुज़ारते, कुरआन पढ़ते, हदीसें सुनते और खुदा की इबादत करते, अब्दुल्लाह (रज़ि०) भी उसी गिरोह में शामिल हो गये।

हज़रत अब्दुल्लाह ज़ुलबिजादैन (रज़ि०) को पवित्र कुरआन से विशेष लगाव था, समय का अधिक भाग कुरआन सीखने और पढ़ने में गुज़रता। एक दिन मस्जिदे नबवी में सहाबा किराम रज़ि०) नमाज़ पढ़ रहे थे और अब्दुल्लाह (रज़ि०) कुरआन पाठ में लगे हुए थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से शिकायत की कि यह ग्रामीण कुरआन इतने उच्च स्वर से पढ़ रहा है कि लोगों की नमाज़ में बाधा पड़ती है। हुज़ूर (सल्ल०) ने इस पर स्नेह युक्त स्वर में फ़रमाया—

'—उमर इस व्यक्ति से कछ न कहो। यह तो अल्लाह और रसूल के वास्ते सब कुछ छोड़ कर यहां आया है।'

यही अब्दुल्लाह ज़ुलबिजादैन तबूक की लड़ाई में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ थे। गर्मी की वह तेज़ी कि खुदा की पनाह! दूर की यात्रा हर प्रकार का कष्ट और परेशानी। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को बुखार आ गया। हर रोग शुरू में यों ही सा होता है। हर रोगी यही समझता है कि अच्छा हो जाउंगा, आख़िरी सांस तक आशा बंधी रहती है— पर अब्दुल्लाह का समय आ चुका था, बुख़ार बढ़ता ही गया, ताप में कमी न हुई, जंगल में लू ने ताप की तीव्रता और बढ़ा दी, यहां तक कि प्राण-पखेरू उड़ गये और अल्लाह का नेक बन्दा अल्लाह से जा मिला।

क़ब्र खोदी गयी, इतने में रात हो गयी। हर ओर अंधेरा ही अंधेरा फैल गया। हज़रत बलाल (रज़ि०) ने चिराग़ हाथ में लिया और हज़रत अबूबक्र व उमर (रज़ि०) के साथ स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) क़ब्र में उतरे। सिद्दीक़ और फ़ारूक़ (रज़ि०) जब जनाज़े को ले कर क़ब्र में रखने लगे, तो हुज़ूर (सल्ल०) फ़रमाने लगे—

'—अपने भाई के मान-मर्यादा का ख़्याल रखो।'

क़ब्र में जनाज़ा रख दिया तो क़ब्र पाट दी गयी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने मुबारक हाथ से क़ब्र पर स्वयं ईंटें रखीं, फिर दुआ फ़रमायी—

ऐ ख़ुदा आज की शाम तक मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न रहा, तू भी उससे प्रसन्न हो जा। ऐसी मौत पर हज़ारों जीवन न्यौछावर! -इसी लिये तो अब्दुल्लाह बिन मसऊद सरीखे महान साथी ने तमन्ना की कि काश! ज़ुलबिजादैन की जगह मैं उस क़ब्र में दफ़्न किया जाता। □

# परीक्षा

हज़रत काब बड़े उच्च श्रेणी के सहाबी (प्यारे नबी सल्ल० के साथी) थे। तबूक की लड़ाई के लिए उन्होंने मुख्य रूप से दो सौ ऊंट खरीदे थे और ऊंटो को हरियाली और चारा खिला-खिला कर खूब मोटा बनाया था, ताकि अल्लाह की राह में इन सवारियों के क़दम तेज़-तेज़ उठें। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जान न्यौछावर करने वाले साथियों के साथ मदीना से तबूक के लिए चल पड़े, पर काब ने सोचा कि मेरे ऊंट काफ़ी तेज़ हैं, मैं रास्ते में जाकर इस्लामी सेना से जा मिलूंगा। गर्मी का समय था, पूरा वातावरण अग्नि-कुंड बना हुआ था, ख़जूरों की फ़स्ल भी आ चुकी थी—काब यही सोचते रहते कि आज चलता हूं, कल चलता हूं। दिन बीतते गये और इस्लामी सेना मदीना से इतनी दूर पहुंच गयी कि अब बहुत ज़्यादा तेज़ चलने के बाद भी उनसे मिल जाने की संभावना न थी, यहां तक कि तबूक में निवास करके अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सहाबा किराम सहित मदीना वापस भी चले आए।

हज़रत काब को बड़ा दुख था कि हाय! मैंने यह क्या किया? अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होना बहरहाल ज़रूरी है। हुज़ूर (सल्ल०) ने तबूक न जाने का कारण पूछा तो आख़िर क्या विवशता बताऊंगा? मुझ से भारी चूक हुई, अब उस की भराई की कोई शक्ल भी नहीं है। क्या करूँ? क्या न करूँ? लज्जा-भाव रह-रह कर मेरे मन को कचोटता है कि काब! तुझ से बड़ी चूक हुई।

काब का मन उभारता कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होना हो और आप पूछें तो बीसियों बहाने और सैकड़ों विवशताएं बतायी जा सकती हैं अर्थात यह कि मैं बीमार हो गया, पत्नी को ज्वर आ गया, भाई ऊंट से गिरकर घायल हो गया, घर भर में केवल मैं ही उस की मरहम-पट्टी और देख-भाल करने वाला था—नातेदार और रिश्तेदार भी नफ़्स के इन हीलों का समर्थन करते कि भाई! तुम्हारी नीयत में तो खोट न थी। तबूक तुम

बहरहाल जाना चाहते थे, बस ज़रा-सी ग़फ़लत और थोड़ी-सी भूल-चूक हो गयी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पूछें तो कोई उचित बहाना रख देना। हुज़ूर (सल्ल०) बहुत सादा तबियत हैं, तुम्हारी बात को निश्चय ही ठीक मान लेंगे। दिलों का हाल तो अल्लाह जानता है, अब रहा गुनाह—सवाब तो जीवन में किस व्यक्ति से भूल-चूक नहीं हो जाती। तुम अपनी ग़लती की अल्लाह से क्षमा मांग लेना। उसकी ज़ात, क्षमा करने वाली और दयावान है, सच्चे मन की दुआ स्वीकार कर ली जाती है।

हज़रत काब के लिए बड़ी कठोर परीक्षा की घड़ी थी। मन के वे धोखे, नातेदारों के वे मश्विरे—पर काब ने बड़े साहस के साथ निर्णय किया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से झूठ बोल कर बचने का उपाय करना अपने आप में बहुत बड़ा पाप है। यह नहीं हो सकता। काब मन के धोखे में नहीं आ सकता और न नातेदारों और मित्रों के सहानुभूति परक मश्विरे उस के सत्य की राह में बढ़े क़दमों को डिगा सकते हैं। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) ने हम से सच बोलने का वचन लिया था। यह कैसे हो सकता है कि मैं उस महान व्यक्तित्त्व के स्वामी के समक्ष झूठे बहाने गढ़ कर दुनिया दिखावे की शर्म से बचने की कोशिश करूं। सच्चाई में बड़ी जान है—

'झूठ नष्ट कर देता है और सच्चाई मुक्ति दिलाती है।' (हदीस)

और अल्लाह की दया-कृपा से आशा है कि सच्चाई मेरी मुक्ति का कारण बनेगी।

काब सहमे हुए, झुके हुये और लजाये हुये अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में पहुंचे। वह साक्षात 'लज्जा' बने हुए थे और उन की शर्मायी निगाहें क्षमा-याचना कर रही थीं। अल्लाह के रसल (सल्ल०) काब की ओर देख कर मुस्कराये, पर यह मुस्कान रोष पूर्ण थी। मुस्कान-मुस्कान में अन्तर हुआ करता है। यह रंग देख कर ही काब के होश व हवास जाते रहे। हुज़ूर (सल्ल०) ने तबूक न चलने का कारण पूछा। काब ने कहा—

'—ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! मेरे मनहूस मन ने मुझे ग़फ़लत में डाल दिया। सुस्ती का मुझ भाग्यहीन पर क़ब्ज़ा हो गया और शैतान ने मुझे राह से भटका दिया।'

इस पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने रोषयुक्त स्वर में काब से कहा—

'—काब! तू यहां से उठ कर चला जा, यहां तक कि अल्लाह तेरे बारे में

कोई हुक्म भेजे।'

काब नबी (सल्ल०) के दरबार से उठ कर चले आए, चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं, मन बैठा जा रहा था और पांव उठते न थे मानो उनमें शक्ति ही नहीं रही। यह किसी शासक और बादशाह की नहीं, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के रोष का मामला था। क़ाब के मन पर जो भी बीतता था, थोड़ा था-काब के नातेदारों और रिश्तेदारों ने कहा, काब! तू ने सच कह कर अपने को विपत्ति में डाल दिया। अरे मूर्ख! दूसरों की तरह तू भी कोई बहाना गढ़ लेता तो यह दुर्दिन देखने को न मिलता।

काब ने उत्तर दिया कि भाइयो! किसी दुनियादार के साथ मामला पेश आता तो में कोई झूठ-मूठ बात कह कर छूट जाता, पर यह अल्लाह के रसूल (सल्ल०)का मामला है। अल्लाह वह्य भेज कर अगर मेरे झूठ को खोल देता, तो मैं कहीं का न रहता।

'—भाइयो! अच्छा यह तो बताओ कि मेरे साथ जो मामला हुआ है, क्या और किसी के साथ भी ऐसा हुआ है?' काब ने पूछा।

'—हां, हिलाल बिन उमैया और मुरारा बिन रबीअ के साथ भी यही मामला पेश आया है।' लोगों ने एक साथ उत्तर दिया।

इसके बाद मरहला और अधिक सख़्त था। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हुक्म फ़रमाया कि कोई मुसलमान काब, मुरारा और हिलाल से बात-चीत न करे। इन तीनों का यों समझों कि बहिष्कार कर दिया गया। दो-चार-पांच नहीं, पूरे पचास दिन इसी स्थिति में बीते। आदमी के साथ जीवन की सौ आवश्यकताएं लगी हैं। काब को भी काम-काज से घर के बाहर जाना पड़ता। गलियों, बाज़ारों खेतों और मरुद्यानों में, पर क़ोई मुसलमान उन से बात-चीत न करता। विचित्र कठिनाई और परेशानी का सामना था। सहाबा किराम (रज़ि०) ने दुआ-सलाम बन्द कर दी, मानो काब से किसी का कोई संबंध ही नहीं है और यह इन के लिये बिल्कुल अनजाना और पराया है।

एक दिन हज़रत काब मदीने के बाहर पहुंचे। उनके चचेरे भाई अबू क़तादा का नगर से बाहर बाग़ था। जहाँ वह एक मकान बनवा रहे थे। काब के चचेरे भाई को सलाम किया, पर भाई ने कोई ध्यान न दिया, बल्कि मुंह फेर लिया। काब ने दिल थामते हुये कहा—

'अबू कतादा! तुझे मालूम तो है कि मैं ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) को मित्र रखता हूं और मेरा दिल शिर्क और कपटाचार से पवित्र है, फिर तू मुझ से बात क्यों नहीं करता?'

अबू क़तादा ने काब की बात का कोई उत्तर न दिया। वह यथा पूर्व चुप रहे, होंठ हिले ही नहीं, काब की ओर से मुंह फेरे रहे। काब ने एक बार नहीं, तीन बार अबू क़तादा का ध्यान आकृष्ट किया, पर उन्होंने एक अक्षर भी उत्तर में न कहा।

काब मस्जिदे नबवी में नमाज़ पढ़ने के लिए जाते, तो कोई मुसलमान उन से बातें न करता। यह चुप-चाप नमाज़ पढ़ कर चले आते—और यह भी करते कि ख़ामोशी के साथ मस्जिदे नबवी के किसी कोने में बैठ जाते और अन्दाज़ा लगाते कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मुझे किस दृष्टि से देखते हैं। काब ने बहुत बार महसूस किया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मेरी ओर कनखियों से देख रहे हैं। मेरी परेशानी पर हुज़ूर (सल्ल०) को तरस भी आ रहा है, पर जब मैं हुज़ूर (सल्ल०) की ओर देखता तो हुज़ूर (सल्ल०) निगाहें फेर लेते।

घर के लोग किसी व्यक्ति से बोलना-चालना छोड़ दें, तो बेचारा दिवाना हो जाये, यहां तो सारे शहर ने काब का बहिष्कार कर दिया था। साहब-सलामत और दुआ-सलाम तक जाती रही थी। काब के दिल की जो हालत भी हो गयी हो, कम थी। काब तंहाई में रोने लगते, संसार उनकी दृष्टि में अंधेरा था, आशा की कोई किरण दिखायी न देती थी—

जब उस ने फेर लीं नज़रें, रंगे तबाही, आह न पूछ!
नज़रें ख़ाली, सीना वीरां, दिल की हालत क्या कहिए!

संध्या का समय था, सूरज पूरी तरह डूबा नहीं था, खजूरों की डालियों पर शाम की स्याही का धुवां-सा नज़र आता था, लोग काम-काज कर के घरों को वापस आ रहे थे, रास्तों में बकरियों और ऊंटों की पंक्तियां दिखायी देती थीं, परिंदे दाना-तुनका चुग कर अपने घोसलों का रुख कर रहे थे और ऊंटों के गल्लों की बजती हुई घंटियां मानो सांध्य-मौन आप ही आप गुनगुना रहा हो, इतने में एक ईसाई तेज़-सी ऊंटनी पर आता हुआ दीख पड़ा।

'—काब कहां है? काब, जिस का तुम मुसलमानों ने बहिष्कार कर दिया है, जिस से तुम्हारे नबी रुष्ट हैं।' —ईसाई ने लोगों से पूछा।

–तुम हवा के घोड़े पर सवार हो, तनिक तसल्ली से बात करो?–देखो, सामने वाले बाग़ के किनारे जो व्यक्ति सिर झुकाए बैठा है, वह काब है! तुम यात्री हो, इसलिए हम ने तुम्हारे लिए काब की ओर संकेत करके उसका पता भी बता दिया, वरना मदीने का कोई व्यक्ति भी पूछता, तो हम यह भी न करते'–एक बूढ़े अरब ने उत्तर दिया।

ईसाई तेज़ी के साथ काब के पास आया और हर्ष व्यक्त करते हुये बोला, काब! प्रसन्न हो जा, तेरे दिन फिर गए, तेरे भाग्य का सितारा चमक उठा, बादशाह सलामत ने तुझे याद फ़रमाया है। यह सौभाग्य बड़े भाग्यवानों को मिलता है, फिर उस ने शाहे ग़स्सान का पत्र काब के हाथ में दे दिया। उस में लिखा था–

'–ऐ काब बिन मालिक! मुझे मालूम हुआ है, तेरा साहब (अर्थात हज़रत मुहम्मद, अल्लाह के रसूल सल्ल०) तुझ से रुष्ट हो गया है और अपने यहां से उस ने तुझे निकाल दिया है। दूसरे मुसलमानों ने भी तुझ से किनारा कर लिया है, जिस नगर के लोग तुझ से इतने उदासीन हैं, वहां तुझ जैसे आदमी का रहना ठीक नहीं। इस पत्र के पढ़ते ही हमारे पास चला आ, हमारी कृपाएं तेरी राह देख रही हैं।'

हज़रत काब की जगह कोई स्वार्थी व्यक्ति होता, तो खुशी के मारे फूला न समाता, यह एक बादशाह की ओर से तलबी का फ़रमान था, दुनियां की नेमतों और हर प्रकार की प्रतिष्ठा प्रदान करने का इसमें वायदा था। पर काब शाही ख़त और फ़रमान पढ़ कर भड़क उठे, इस में मन का दुख भी शामिल था। दुख इस बात का कि मेरी इस हालत को देख कर बादशाह मुझे कुफ़्र की ओर बुलाता है। उस ज़ालिम के मन में आख़िर यह विचार आया कैसे कि काब मदीना छोड कर उस की राजधानी का रुख कर सकता है।

ईसाई ख़ामोश खड़ा था। उसे आशा थी कि काब मुझ से कहेगा कि मुझे अपने साथ ऊंट पर बिठा कर बादशाह के हुज़ूर में ले चलो, घर भी जाना नहीं चाहता और घर जाऊं तो किस के पास जाऊं। एक-एक नातेदार मुझ से मुंह फेरे हुये हैं। पर ईसाई के आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब उस ने देखा कि काब ने अति अपमान जनक ढंग से शाही फ़रमान को आग में डाल दिया।

'तेरा बादशाह सलामत और आक़ा की कृपाओं से मेरे आक़ा की नाराज़गी बेहतर है।'–हज़रत काब (रज़ि०) ने ईसाई दूत से कहा। शाही फ़रमान जल

चुका था। आग का धुवां शाम के धुंधलके में मिलकर और गहरा हो गया। ईसाई अपनी लम्बी दाढ़ी को पेच देता हुआ वापस चला गया। बहुत तेज़-तेज़ आया था, पर इस विफलता के बाद उसके पांव धीरे-धीरे उठने लगे—बड़ी कड़ी परीक्षा थी काब की, पर अल्लाह ने अपनी कृपा की कि काब के पांव को थोड़ा-सा भी न डगमगाने दिया।

वह जिस का इम्तिहाँ लें और जो हो कामियाब उस में,
हमारा आप का जीना नहीं, जीना उसी का है।

इस मरहले से निबट कर और इस अग्नि-परीक्षा से गुज़र कर हज़रत काब (रज़ि०) अपने घर पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने एक सहाबी को यह हुक्म दे कर भिजवाया है कि काब से कहना कि वे अपनी पत्नी से दूर रहे। हज़रत काब (रज़ि०) ने पूछा कि क्या इस आदेश का अर्थ है कि मैं अपनी पत्नी को तलाक़ दे दूं। इर्शाद हुआ, नहीं, तलाक़ नहीं। उस के बिस्तर से दूर रहो। इस पर काब ने अपनी चहेती बीवी और जीवन संगिनी को उसके बाप के घर भिजवा दिया।

इसी स्थिति में पूरे पचास दिन बीत गए। काब के मन पर ग़म के आरे चल रहे थे, दुनिया का दुख-दर्द, व्यापार की लाभ-हानि, किसी मित्र-नातेदार का रोष होता तो सहन किया जा सकता था, यह खुदा और रसूल (सल्ल०) की समस्या थी, यहां हर क्षण ईमान लाने और भविष्य नष्ट होने का ख़तरा, काब के दुख-दर्द का कोई अन्दाज़ा न था, जिसके मन पर बीतती है, वही जानता है। काब का अधिक समय तौबा और इस्तिग़फ़ार में गुज़रता।

रात का समय था। काब अपने मकान के ऊपरी हिस्से पर थे और थे क्या, दुख और पीड़ा की स्थिति में बेचारे पड़े हुए थे, निढाल, परेशान, क्षुब्ध और क्लान्त, जीवन अब उन पर बोझ लगने लगा था—इतने में एक व्यक्ति ने टीले पर खड़े हो कर काब को ज़ोर से पुकारा—

'काब तुझे खुशखबरी हो कि अल्लाह ने तेरी तौबा स्वीकार कर ली।'

इस खुशख़बरी ने काब की आशाओं को नए सिरे से जीवन प्रदान कर दिया। आंखों में हर्ष और कृतज्ञता-भाव झलकने लगा, पीले चेहरे में लाली दौड़ गयी, वह कोठे से नीचे आने का निश्चय ही कर रहे थे कि लोग उनके पास दौड़े हुये आए और काब को शुभसूचना दी कि तबूक की लड़ाई में जो मुसलमान शरीक होने से रह गये हैं, उन की तौबा अल्लाह ने स्वीकार कर ली।

उपरोक्त ख़बर की अब पूरी तरह पुष्टि हो गयी। काब तत्काल सज्दे में गिर पड़े। यह शुक्र अदा करने के लिए जज़्बा था, देह का हर रोंगटा अल्लाह का शुक्र बजा ला रहा था, फिर वह हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में दौड़ते हुए पहुंचे, मुहाजिर और अंसार वहां बैठे थे। काब ने सलाम किया। हुज़ूर (सल्ल०) का मुबारक चेहरा ख़ुशी से चमक रहा था, चौदहवीं के चांद की तरह—पर यह भी अपूर्ण और अधूरी उपमा है। मुहम्मद स्वयं अपना उदाहरण आप थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने काब से फ़रमाया—

'ऐ काब! शुभ-सूचना हो तुझे! तेरी तौबा अल्लाह के दरबार में स्वीकार कर ली गयी, जिस दिन से तू माँ के पेट से पैदा हुआ है, इस दिन से बेहतर कोई दिन तुझ पर न बीता होगा।'

हज़रत काब बिन मालिक की अंधेरी दुनिया यकायकी आशाकिरण से जगमगा उठी, अभी-अभी आंखों से आंसू और होंठ पर आहें थीं और अब होंठों पर मुस्कान खेलने लगी। □

# बादशाहों के नाम

हुदैबिया में जब संधि-पत्र लिखा जा रहा था, तो कुरैश के दूत सुहैल इस बात पर बिगड़ गये थे कि संधि-पत्र में 'अल्लाह के रसूल (सल्ल०)' नहीं लिखा जाएगा, अतएव यह शब्द लिख कर मिटा दिया गया—पर अब सत्य उत्पीड़न के युग से आगे जा चुका था, सच्चाई के उबलते हुए सोते अब किसी के रोके नहीं रुक सकते थे।

वह देखिए अम्र बिन उमैया ज़ुमरी, द्रुतगामी ऊंटनी पर किसी लम्बी यात्रा के लिये तशरीफ़ ले जा रहे हैं, पानी की छागल साथ है, सत्तू और खजूर की थैलियाँ भी लटक रही हैं और उनके साथ एक पत्र भी है—पत्र—जी हां! अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का फ़रमान, हब्श के बादशाह 'अस-सह्म' के नाम, जो नजाशी की उपाधि से जग-प्रसिद्ध है यह शासक। इस फ़रमान में हब्श के शासक को इस्लाम लाने का निमंत्रण दिया गया है—ऐ लो! अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के दूत हब्श पहुंच भी गये। बेचारे बहुत थके हुये हैं, यात्रा भी तो कई महीने की थी। बादशाह ने नबी (सल्ल०) के पत्र को पढ़ा, चूमा, आंखों से लगाया और मुसलमान हो गया। उस भले व्यक्ति ने दलीलें नहीं मांगीं, चमत्कार नहीं पूछे, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का पत्र पढ़ते ही ख़ुदा के एक होने और अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल०) के रसूल होने को स्वीकार कर लिया—क्रास डर के मारे गिरी जा रही थी और गिरजाओं के दर व दीवार से विवशता बरस रही थी, सत्य आ चुका था, असत्य को मिट जाना ही चाहिए था।

यह कौन बुज़ुर्ग हैं? मनमोहक, चित्ताकर्षक, दायित्त्व-भाव त्यौरियों से प्रकट हो रहा था। यह अला बिन हज़रमी (रज़ि०) हैं, मुंज़िर, बहरैन के शाह के पास इस्लाम का संदेश ले जा रहे हैं। बहरैन का शाह कहने को तो फ़ारस के सम्राट (किसरा) को कर देता है, पर सच में यह प्रभुता-सम्पन्न शासक है, सचमुच स्वामी अपनी राज्य सीमाओं में काले-सफ़ेद का मालिक! —नबी

(सल्ल०) के फ़रमान को पढ़कर उसको भी ईमान की दौलत मिल गयी और अकेले नहीं, उसकी प्रजा की भारी संख्या ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। ईमान का सूर्य उदित हुआ तो उस ने अपने आस-पास के क्षेत्रों को भी जगमगा दिया।

मिस्र और स्कन्दरिया के बादशाह मकूक़स और ईरान के सम्राट खुसरो परवेज़ के पास भी दूत इस्लाम का संदेश और संमार्ग का चार्टर लेकर पहुंचे—खुसरो पत्र को पढ़ कर आग बगोला हो गया। हुज़ूर (सल्ल०) के फ़रमान को भरे दरबार में चाक कर दिया और रसूल (सल्ल०) की शान में धृष्टता पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया—दूत ईरान से वापस हुआ और उसने हुज़ूर (सल्ल०) को पूरी घटना सुनायी। हुज़ूर (सल्ल०) ने इस पर फ़रमाया—

'—उस ने स्वयं अपनी क़ौम के शासन का चार्टर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। यह कोई क़िस्सा-कहानी है कि बात आयी गयी हो गयी। शब्दों का वास्तविकता से कोई संबंध ही न हो। यह अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के शब्द थे। कुछ दिनों के बाद इस धृष्ट खुसरो को स्वयं उसके बेटे ने मौत के घाट उतार दिया और हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) के ख़िलाफ़त-काल में किसरा शासन के टुकड़े उड़ गये।—खुसरो परवेज़ को हब्श के बादशाह का भाग्य न मिल सका, पथ-भ्रष्टता और विनाश उसके भाग्य में लिखा था। कुफ़्र की अज्ञानता सत्य स्वीकार करने की राह में रुकावट बनी, यहां तक कि खुसरो के जीवन का प्रपंच ही टूट गया।

नबी (सल्ल०) के दरबार से फ़रमान भेजे जा रहे थे। दूत दरबारों में पहुंच कर फ़रमान पेश करते। दौमतुल जुन्दल के शासक अकीदर, ग़स्सान के शासक जबला और नज्द के बादशाह यमामा के भाग्य के सितारे कुफ़्र और अज्ञानता के अंधेरे से निकल चुके थे। ईमान का सौभाग्य प्राप्त हुआ-जो दंभी, हमेशा के भाग्यहीन और शासन के नशे में चूर थे, वे इस सौभाग्य से वंचित रहे। सत्य की आवाज़ कान के पर्दों से टकरा कर रह गयी, हृदय में स्थान न बना सकी। मन ने बढ़ावे दिए कि देखना! अपने पैतृक धर्म से ही कहीं विमुख न हो जाना, तुम्हारे बाप-दादा की आत्माएं क्या कहेंगी-और शैतान ने बहकाया कि तुम स्वयं लाखों व्यक्तियों के भाग्यों के स्वामी हो, तुम्हारी ज़ुबान क़ानून है, तुम्हें किसी के मशिवरे और संदेश की क्या आवश्यकता? यह तो एक प्रकार का अपमान और पराजय हुई कि किसी ने पत्र भेज दिया और उसके सामने श्रद्धा-मस्तक झट से झुक गया—मन के इन धोखों और बहलावों ने सत्य को

खुलने न दिया, अपना-अपना भाग्य और अपना-अपना नसीबा है।

यह कौन है?—यह यमन और तायफ़ के सीमावर्ती क्षेत्रों का शासक है, नाम है ज़िल कलाअ और हिमयर के शाही परिवार की नेत्र-ज्योति है। इसलिए ज़िल कलाअ हिमयरी के नाम से प्रसिद्ध है। —उसका दरबार, हरीर व दीबा के पर्दे, ईरानी क़ालीन, हाथी दांत के बने हुए दरवाज़े, सुनहरे-रुपहले बने हुये बेल-बूटे, जड़ाऊ और मूल्यवान तख़्त, दरबारी तो बड़े ऊंचे लोग होते हैं-शागिर्द पेशा, नौकर-चाकर और दास, ऐसी भड़कीली वर्दियां पहने हैं कि देखने वालों की आंखें चुंधिया जाती हैं। चाँदी की अंगीठियों में ऊद व अम्बर सुलग रहा है।

'—हमारे खुदावन्द प्रकट होने वाले हैं, बन्दे नत-मस्तक होने के लिए तैयार हो जाएं' —चोबदर ने कड़क कर कहा, उसकी आवाज़ में काफ़ी रौब था, मानो बादल गरज रहा है, इतने में ज़िल कलाअ आया, सिर पर ताज जगमगाता हुआ, यमन के सुन्दर छोकरे उसके वस्त्र के दामन को सोने के थालों में उठाए हुए, उसके आते ही तमाम दरबारी सज्दे में गिर गये—ज़िलकलाअ मुस्कराया, यदि वह हंस देता तो यह खुदा की शान के विरुद्ध था —उस का हुक्म था कि लोग उसे 'खुदा' कह कर पुकारें। बादशाह सलामत! जहां पनाह!! ग़रीब परवर!!! —ये सब पुराने और घिसे-पिटे पारिभाषिक शब्द हैं।

तायफ़ व यमन के इस 'खुदावन्द' के पास अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का फ़रमान पहुंचा और खुदा की शान कि पत्र पढ़ते ही सच्चाई खुल कर सामने आ गयी। वह मुसलमान हो गया और इस्लाम लाने के बाद ईश-भय और त्याग-भाव इतना अधिक पनपा कि एक दिन में दस-बीस नहीं, अठारह हज़ार गुलाम आज़ाद किए।

मुसलमान होने के बाद कुछ वर्ष बादशाही में गुज़ारे, पर खुदापरस्ती की राह में बादशाही को अवरोधक चट्टान सदृश पाया, राजपाट को लात मार कर और सुख-चैन को तज कर मदीना मुनव्वरा में आ कर निवास ग्रहण कर लिया। सुख-ऐश्वर्य में पला हुआ और आराम-चैन के पालने में झूला हुआ, अब मोटा-झोटा, खाता-पहनता और अधिक समय भक्ति-उपासना में बिताता। □

# एक पावन आत्मा

कैसरे रूम की शांहशाही की सीमाएं दूर तक फैली हुई थीं, कुछ क्षेत्रों में गवर्नर नियुक्त थे और कुछ भाग अर्ध-स्वतंत्र शासकों के आधीन थे, जो सम्राट को कर देते थे। शाम के क्षेत्र की गवर्नरी फ़र्वः बिन अम्र ख़ुज़ाअी के सुपुर्द थी। उस समय का गवर्नर भी आज के अधिनायकवादी बादशाहों से अधिक अधिकारयुक्त होता था।

फ़र्वः, शाम का गवर्नर भी मुसलमान हो गया, ईमान ले आया, ईशवादियों की पंक्ति में सम्मिलित हो गया। बात छिपने वाली नहीं थी। कैसरे रूम को सूचना मिली कि फ़र्वः इस्लाम ले आया, दूसरे लोग भी उस की देखादेखी इस्लाम अपनाते जा रहे हैं और फ़र्वः का धर्म-परिवर्तन जन-साधारण पर प्रभाव डालता जा रहा है।

कैसर ने फ़र्वः को अपने दरबार में तलब किया। सिपाहियों को आदेश दिया कि फ़र्वः को मोहलत न देना, जल्द से जल्द अपने साथ लेकर आना, कहीं ऐसा न हो कि जान बचाने के लिए अरब की ओर भाग जाए और इस का पलायन हमारे लिये किसी परीक्षा का कारण बन जाए– फ़र्वः को कैसर के दरबार में लाया गया।

'—मैंने सुना है, तुम ईसाई धर्म से विमुख हो कर मुसलमान हो गये हो' -कैसर ने पूछा।

'—जी हां, तुम ने ठीक सुना है। मैं अब तक अंधेरे में था। अल्लाह ने मुझे ईमान की रोशनी प्रदान की, मैं अब केवल एक ख़ुदा को पूजता हूं।' यह एक में का तीन और तीन में का एक अनर्गल और गढ़ी हुई बातें हैं'—फ़र्वः ने उत्तर दिया।

'—तुम्हारा यह साहस कि भरे दरबार में ईसाई धर्म का खंडन करते हो और वह भी इतनी धृष्टता के साथ, मानो तुम कैसरे रूम के सम्राट के दरबार में

नहीं, बल्कि किसी हम्माम में खड़े हो' —कैसर ने रोषयुक्त स्वर में कहा।

'—सत्य की बात दब कर नहीं कही जाती शाहंशाह, मन में कुछ और मुख पर कुछ और, यह छल-कपट है' —फ़र्वः इबा का तक्मा छूते हुए बोला।

'—अगर तुम ने इस नए धर्म से मुख न मोड़ा तो मैं तुम्हें गवर्नरी के पद से अलग कर दूंगा'—कैसर ने पूरे रौब में कहा।

'मुझे स्वीकार्य है; कोई भी वस्तु ईमान की क़ीमत नहीं हो सकती।' फ़र्वः ने उत्तर दिया।

'—देखो! अब भी कुछ बना-बिगड़ा नहीं है, मैं तुम्हें आदर के साथ भेंट-उपहार दे कर शाम वापस कर दूंगा, मूर्ख न बनो, मिली हुई दौलत को न ठुकराओ'—कैसर के स्वर में जैसे सहानुभूति थी।

'—मुझे इस्लाम और ईमान के मुक़ाबले में किसी दूसरे आदर की आवश्यकता नहीं है। मेरा फ़ैसला अटल और सुदृढ़ है। सारी दुनिया की बादशाही भी मेरे ईमान का मूल्य नहीं हो सकता—और —कैसरे रूम की आंखों से चिंगारियां निकलने लगीं। वह फ़र्वः की बात पूरी होने से पहले गरजने लगा।

'—ले जाओ इस मूर्ख फ़र्वः को मेरे सामने से ले जाओ, इसे क़ैद में डाल दो, लोहे की बेड़ियाँ पहनाओ, सख़्ती करो, यहां तक कि इस का दिमाग़ ठीक हो जाए।'

फ़र्वः को क़ैदख़ाने में डाल दिया गया और तरह-तरह की सख़्तियां की गयीं, कैसर ने कुछ दिन के बाद फिर मालूम कराया कि तुम इस्लाम से मुंह मोड़ लो, तो मैं अब भी तुम्हें गवर्नरी के पद पर बहाल कर सकता हूं। फ़र्वः ने कहा, यह नहीं हो सकता —फिर क़त्ल की धमकी दी गयी। यह बहुत बड़ी परीक्षा थी। कैसर समझता था कि यह जान का मामला है। अब फ़र्वः के क़दम डगमगा जायेंगे—पर फ़र्वः ने कहा, 'जान तो एक दिन जानी है, वह तख़्त पर जाए या सूली पर। पर सफलता उस जीवन के लिये और शुभ-सूचना उस जान के वास्ते है, जो सत्य की राह में काम आवे।'

फ़र्वः—नहीं! नहीं! हज़रत फ़र्वः को क़त्लगाह में लाया गया। मश्कें बंधी हुईं, पांवों में भारी बेड़ियां! कैसर ने कहाः—

'—देखो, अब भी पिछले की पूर्ति का समय बाक़ी है। मेरे एक इशारे में

जान-बख़्शी हो सकती है।'

हज़रत फ़र्वः ने उत्तर में कलिमा पढ़ा—

'अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन-न मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' (मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं।)

रसूलुल्लाह का 'ह' मुख से निकल रहा था कि निष्ठुर हत्यारे ने इस्लाम के इस फ़िदाई का सिर तन से जुदा कर दिया।

इधर बादशाहों और शासकों के नाम रसूल (सल्ल०) के दरबार से फ़रमान भेजे जा रहे थे, दूसरी ओर अरब के क़बीले गिरोह-गिरोह हुज़ूर नबी करीम (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हो रहे थे, इस्लाम की आवाज़ दूर-दूर तक पहुंच चुकी थी, तक्बीर की आवाज़ें मरूद्यानों से लेकर घाटियों, टीलों, पहाड़ों और पहाड़ियों में गूँज चुकी थीं। इस्लाम की ओर दिल खिंचते ही चले आ रहे थे। जिस ने अमृत का एक घूंट भी पी लिया, वह जीवन भर के लिए सेर हो गया। क़बीले में दो चार आदमी भी मुसलमान हो जाते, तो उनकी चाल-ढाल और चरित्र-आचरण से दूसरे भी प्रभावित होते, लोग महसूस करते कि इस्लाम स्वीकार करने के बाद दिल नहीं चेहरे तक बदल जाते हैं। यही आकर्षण ग्रामीणों को इस्लाम की ओर खींच लेता है। हर मुसलमान स्वयं अपनी जगह प्रचार, बल्कि बोलता हुआ क़ुरआन है।

ये कौन लोग हैं? दमकते हुए चेहरे, चमकते हुए माथे, गोरी रंगत, लम्बे देह, नीची इबाएं (पहनावा) निष्ठा और वफ़ा उनकी त्यौरियों से टपकी पड़ रही है— यह क़बीला नजीब के प्रतिनिधि हैं। पूरा क़बीला मुसलमान हो चुका है। उसी ने इन तेरह बुज़ुर्गों को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में भेजा है।

शायद मदीने में यह व्यापार करने के उद्देश्य से आए हैं—ऊंट और बकरियों की पंक्तियों की पंक्तियां उनके साथ हैं, अन्न भी है, खजूरें भी हैं, दिरहम व दीनार भी हैं—क़ौम ने अपने माल की ज़कात दे कर उन को मदीना भेजा है।'

'—अपनी ज़कात तुम वापस ले जाओ, और अपनी क़ौम के फ़क़ीरों में बांट दो।' हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फरमाया।

'—ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़क़ीरों को दे दिला कर जो बच रहा है, हम वही ले कर आए हैं।' नजीब की क़ौम के प्रतिनिधियों ने कहा।

'—ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! इन लोगों से बेहतर प्रतिनिधिमंडल अब तक नहीं आया' -हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने कहा और हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया।

'—अल्लाह जिस की भलाई चाहता है, उस का सीना ईमान के लिए खोल देता है।

स्वयं नजीब के प्रतिनिधिमंडल के ये सदस्य कुरआन और सुन्नत सीखने का असाधारण चाव रखते थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इन मेहमानों के आदर-सत्कार के लिए हज़रत बिलाल (रज़ि०) को नियुक्त कर दिया था। एक ओर तो उनकी रुचि इस स्तर की कि अधिक से अधिक समय अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में बिताते और सहाबा किराम (रज़ि०) से कुरआन व सुन्नत के बारे में बातें करते और दूसरी ओर उन को अपने वतन जाने की जल्दी भी थी। सहाबा किराम (रज़ि०) से बार-बार कहते कि हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में कह दो कि ये लोग अपने वतन की वापसी का निश्चय किए हुये हैं, सरकार अनुमति प्रदान करें—सहाबा (रज़ि०) ने उन से पूछा कि वतन जाने की तुम लोगों को आख़िर क्या जल्दी पड़ी है। यह पवित्र सत्संग तुम्हें दुनिया जहान में और कहां मिल सकता है—

कभी-कभी तो ये लम्हे नसीब होते हैं।

उन लोगों ने उत्तर दिया कि मन तो हमारा यहां से जाने को नहीं चाहता, पर यह शौक़ बेचैन किए हुए है कि हुज़ूर नबी करीम (सल्ल०) से जो कुछ हमने प्राप्त किया है, उसे जल्द से जल्द अपनी क़ौम को भी पहुंचा दें, ताकि वे लोग इस शुभ बात से वंचित न रहें।

जब नजीब प्रतिनिधिमंडल के सदस्य जाने लगे तो हुज़ूर (सल्ल०) ने उन सब को उपहार दिए। उपहार देने के बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने पूछा—

'तुम में कोई आदमी बाक़ी तो नहीं रह गया?'

उत्तर में कहा गया—

'—हां! रह गया है एक नव-जवान! (एक स्वस्थ सुदृढ़ नव-युवक की ओर संकेत करते हुए।)

'—हुज़ूर! मेरी क़ौम पर रहमत की वर्षा हुई है, तो मुझ पर भी एकाध छींटा पड़ जाए' —नव-युवक ने विनती की।

'—तुम चाहते क्या हो?' -हुजूर (सल्ल०) ने प्रश्न किया।

'—मैं हुजूर मैं! मेरी तमन्ना सबसे अलग है, ऐ कृपानिधान!' युवक बोला।

'—तुम्हारी तमन्ना आख़िर क्या है?' -अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पूछा। '—मैं अपने घर से यह तमन्ना ले कर चला था कि हुजूर (सल्ल०) से अपने लिए दुआ कराऊंगा, इसके लिए ख़ुदा मुझे बख़्श दे, मुझ पर दया करे और मेरे दिल को ग़नी बना दे—' नव-युवक के उत्तर पर हुजूर (सल्ल०) ने उसके लिए दुआ फ़रमायी।

हिजरत के दसवें वर्ष जब हुजूर (सल्ल०) हज के लिए तशरीफ़ ले गये, तो क़बीला नजीब के लोग भी आप की सेवा में उपस्थित हुए। आपने उनसे उस युवक का हाल पूछा, लोगों ने कहा—

'—ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! इस स्वभाव का तो कोई व्यक्ति आज तक देखने ही में नहीं आया। उस की सांसारिक सुख-वैभव के प्रति उदासीनता का यह हाल है कि उसके सामने अगर सारी दुनिया की दौलत बंट रही हो, तो वह इधर आंख उठा कर भी नहीं देखता।

प्रतिनिधिमंडलों के आने और उपस्थित होने का तांता बंधा था, एक मंडली आयी, दूसरी गयी। हमदान, सक़ीफ़, त्वै, ग़स्सान, अज़्रा, ग़ामिद, मुहारिब, दौस, सलामान, नजअ आदि क़बीलों के शिष्ट मंडल रसूल (सल्ल०) के दरबार में उपस्थित हुए और ईमान का सौभाग्य प्राप्त कर घरों को लौटे।

तायफ़, जिसके बाज़ारों में वहां के लोगों ने हुजूर (सल्ल०) पर पथराव करके मुबारक पांवों को लहू-लुहान कर दिया था और जहां के छोकरे हुजूर (सल्ल०) के पीछे-पीछे तालियां बजाते थे-उस जगह के लोग भी उपस्थित हुए, कुफ़्र और अज्ञानता का अंधकार दूर हो चुका था। अज्ञानता और अनजानेपन के पर्दे आंखों से उठ चुके थे, दिलों की दुनिया ही बदल चुकी थी। जो कभी अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) की बातें सुनना गवारा न करने थे, उन्होंने आप के आज्ञापालन का फंदा ख़ुशी-ख़ुशी अपनी गरदन में डाल लिया।

सक़ीफ़ की प्रतिनिधिमंडली का हुजूर (सल्ल०) ने इतना आदर सत्कार किया कि ख़ास मस्जिदे नबवी के आंगन में उनके लिए ख़ेमा लगाया गया। ये लोग सहाबा किराम (रज़ि०) को नमाज़ें अदा करते और क़ुरआन पढ़ते देखते, उपासना और भक्ति की इस स्थिति ने उनके दिलों को प्रभावित किया कि मुसलमान होते होते ही बनी। □

# मूर्ति भंग

अरब में क़बीले-क़बीले का बुत जुदा था। सक़ीफ़ क़बीला लात को पूजता था। अरबों में मूर्तियों की कोई गिनती न थी। एक घर में दस आदमी और हर, आदमी का उपास्य अलग-अलग! जिस पत्थर के टुकड़े और लकड़ी के तख़्ते को चाहा, इधर-उधर से छील-छाल और गढ़ कर ख़ुदा बना लिया, पर 'लात' तमाम क़बीलों का संयुक्त 'ख़ुदा' था-हुबल और उज़्ज़ा का पद प्राप्त था लात को।

सक़ीफ़ का शिष्ट मंडल जब मदीना से वापस चला गया तो हज़रत ख़ालिद बिन वलीद कुछ साथियों को साथ ले कर वहां पहुंचे और लात को गिराना शुरू किया-आस-पास हर जगह बिजली की तरह यह ख़बर फैल गयी कि लात को ढाया जा रहा है। लात उन का शताब्दियों से उपास्य रहा था, उसके प्रति श्रद्धा उन में से कुछ के मन में अब तक बनी हुई थी, तमाशाइयों के ठठ के ठठ लग गये, मर्द ही नहीं पर्देदार औरतें तक घरों से निकल आयीं। ईमान ने अभी पूरी तरह जड़ न पकड़ी थी, कोई-कोई यह समझ रहा था कि लात को जो गिराएगा, वह स्वयं नष्ट हो जाएगा। किसी क़ौम के 'ख़ुदा' को यों ही चुप-चाप आसानी के साथ, हंसी-ख़ुशी तोड़ देना कोई दिल्लगी नहीं है-सब की निगाहें लात पर जमी हुई थीं।

हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा (रज़ि०) भी ख़ालिद के साथ थे। उन्होंने कमान चिल्ले पर चढ़ायी और लात को ख़ूब ताक कर तीर जो मारा, तो अपने ज़ोर में ख़ुद ही ज़मीन पर गिर गये। कुछ लोगों की ख़ुशी के मारे चीख़ें निकल गयीं कि हमारे ख़ुदा ने मुग़ीरा को ठुकरा दिया। मुग़ीरा को इस पर क्रोध आ गया, बड़े तीखे स्वर में बोले—

'ऐ सक़ीफ़ वालो! तुम तो बड़े ही मुर्ख और कम-समझ निकले। यह पत्थर का तुच्छ और गिरा-पड़ा टुकड़ा भला क्या कर सकता है। ऐ लोगो! एक ख़ुदा की बंदगी करो और उसकी पनाह खोजो।'

हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) ने पहले उस झूठे ख़ुदा को तोड़-फोड़ कर मिट्टी में मिला दिया, फिर तमाम मुसलमान बुतख़ाने की दीवारों पर चढ़ गये और क्षण भर में सारी इमारत ढा दी, बल्कि उसकी बुनियादें तक खोद डालीं-उद्देश्य यह था कि सक़ीफ़ वालों के दिलों में लात की जो महानता जड़ जमाए हुए है, दूर हो जाए और वे अपने उपास्य का अंजाम अपनी आंखों से देख लें। —वह दिन है और आज का दिन है! सक़ीफ़ में किसी एक का माथा भी अल्लाह के अलावा किसी के सामने नहीं झुका। लात को यों ही सही-सलामत छोड़ दिया जाता, तो गुमराही की ओर हर समय लौट आने की संभावना थी। □

# रोग-शय्या पर

इस्लाम में 'ईश-भक्ति' के अतिरिक्त किसी दूसरी 'भक्ति' के लिए गुंजाइश ही नहीं है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अपने को बार-बार 'ख़ुदा का बन्दा' कहते थे, ताकि प्राण न्यौछावर करने वाले अनुयायी श्रद्धा-भाव से ओत-प्रोत हो हुज़ूर (सल्ल०) को दूसरी गुमराह क़ौमों की तरह ख़ुदा का शरीर और अवतार न समझ लें।

बरकत की तलब, इस्तिग़ासा, फ़रियादरसी और मदद चाहना— ख़ुदा की ज़ात के लिए ही मुख्य हैं। मुसीबतों का दूर करना, ग़मों का मिटाना, स्वास्थ्य प्रदान करना, सकुशल रखना, तात्पर्य यह कि इस प्रकार के तमाम गुण और इन बातों की पूर्ति मात्र अल्लाह की ज़ात के लिए यथोचित है।

इस्लाम में क़ब्रों पर जाने की जो अनुमति दी गयी है, उसका यही दर्शन और यही दृष्टिकोण है कि जाने वाले क़ब्र वालों के लिए अल्लाह से मग़्फ़िरत तलब करें और साथ ही साथ शिक्षा भी ग्रहण करें कि यह जो आज सैकड़ों मन मिट्टी के नीचे सो रहे हैं, कल चलते-फिरते और खाते-पीते थे, पर जब अल्लाह का आदेश आ गया, तो उन को एक सांस लेने की भी मोहलत न मिल सकी। हमारे साथ भी एक दिन यही मामला होने वाला है, सांसारिक जीवन और धन-दौलत को ठहराव नहीं। यह चलती-फिरती धूप-छांव सदृश है। असल जीवन तो आख़िरत (परलोक) का जीवन है, जहां सदा रहना है, बस वहीं के लिए आदमी को कुछ करना चाहिए।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) भी क़ब्रस्तान बक़ीअ में मुर्दों के लिए भलाई की दुआ फ़रमाने के उद्देश्य से तश्रीफ़ ले जाया करते थे। एक दिन पहले ही की तरह बक़ीअ तश्रीफ़ ले गये और वहां से वापस हुए तो तबियत भारी-भारी-सी थी। कुछ दिनों के बाद बुख़ार में इतनी तेज़ी हो गयी कि अबू सईद ख़ुदरी का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के मुबारक सिर से जो रूमाल बांधा गया था, मैं उसे छूता तो मेरा हाथ गर्मी की तेज़ी को सह नहीं सकता।

अल्लाह के हुक्म के सामने हर कोई मजबूर है, नबी और पैग़म्बर भी अल्लाह के हुक्म के आगे दम नहीं मार सकते, बल्कि वे तो सर्व-साधारण से कहीं ज़्यादा खुदा की मर्ज़ी के आधीन होते हैं। जिस पाक ज़ात की दुआओं ने बीमारों को शिफ़ा दी थी, आज वह खुद बीमार थी, पर बीमारी के दिनों में भी ग्यारह दिन तक हुज़ूर (सल्ल०) नमाज़ की इमामत फ़रमाते रहे। एक दिन इशा के वक़्त नमाज़ पढ़ाने के लिए वुज़ू फ़रमाया और मस्जिद में तश्रीफ़ ले जाने लगे, तो ग़श आ गया। तीन बार यही शक्ल हुई। आख़िरकार हुज़ूर (सल्ल०) ने अबूबक्र (रज़ि०) को नमाज़ पढ़ाने के लिए हुक्म दिया।

सफ़ें ठीक हो गयीं, तक्बीर कही गयी। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने मुसल्ले पर खड़े हो कर 'अल्लाहु अक्बर' कहा और नीयत बांध ली। सहाबा किराम आज मुक़्तदी और सिद्दीक़े अक्बर मुक़्तदा। यह बहुत बड़ा पद था, मर्मज्ञों ने उसी समय इस मर्म को समझ लिया था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बाद मुस्लिम समुदाय का नेतृत्व-पद सब से पहले हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) को मिलेगा। कभी-कभी वर्तमान के दर्पण में भविष्य की घटनाएं भी झलकने लगती हैं।

सहाबा किराम (रज़ि०) इसे सहन न कर सके, आंखों से अश्रुधारा बह चली और कुछ तो आवाज़ के साथ रोने लगे। हुज़ूर (सल्ल०) ने रोने की आवाज़ सुनी, तो मस्जिद में तश्रीफ़ ले गये और हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के बराबर बैठ कर नमाज़ पढ़ायी—देहान्त से पांच दिन पहले हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया—

तुम से पहले एक क़ौम गुज़री है, जिसके लोगों ने नबियों और नेक लोगों की क़ब्रों को सज्दा करने की जगह बना लिया था। तुम ऐसा काम न करना। खुदा उन यहूदियों और ईसाइयों पर लानत करे जिन्होंने नबियों की क़ब्रों को सज्दा करने की जगह बना लिया—इसके बाद फ़रमाया—

—ऐ खुदा! मेरी क़ब्र को मेरे बाद बुत न बनने दीजियो।

—उस क़ौम पर अल्लाह का प्रकोप आया, जिन्होंने नबियों की क़ब्रों को पूजा-घर बना लिया। देखो, मैं तुम को इस से मना करता हूं। —मैं अपनी बात पहुंचा चुका, ऐ खुदा! तू इस का गवाह रह। ऐ खुदा! तू इसका गवाह रह।

□

# अन्तिम घड़ियां

दानशीलता को अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के दानी हाथों पर गर्व था। इधर माल आया और उधर फ़कीरों और ज़रूरतमंदों में बांट दिया। ऐसे सख़ी -दाता के यहां अल्लाह के नाम के सिवा और हो ही क्या सकता था। यह सांसारिक जीवन की अन्तिम रात है, पर रसूल (सल्ल०) के घर में चिराग़ जलाने के लिए तेल तक नहीं है। बीमारी के घर में अंधेरी रात और भी बोझ मालूम होती है। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने एक पड़ोसिन से तेल उधार मांगकर चिराग़ जलाया।

सुबह का समय था, झुटपटा-सा था, अंधेरा और उजाला मिला-जुला-सा। सहाबा किराम मस्जिदे नबवी में नमाज़ पढ़ रहे थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने मुबारक हुजरे का पर्दा उठा कर देखा तो सहाबा (रज़ि०) को नमाज़ में तल्लीन पा कर आपके मुबारक होठों पर मुस्कान क्रीडा करने लगी-यह कृपानिधान हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की इस नश्वर जगत में अन्तिम मुस्कान थी। प्रातः के उजाले ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की मुस्कान को अदब के साथ सलाम किया और दबी ज़ुबान से दरूद भेजा।

रोग में तीव्रता बढ़ गयी थी। हुज़ूर (सल्ल०) प्याले में हाथ डाल कर बार-बार पानी का हाथ मुबारक चेहरे पर फेर लेते। हज़रत सय्यिदा फ़ातमा (रज़ि०) से प्यारे और पवित्र बाप की यह बेचैनी देखी न गयी। बे-अख़्तियार रो पड़ीं। हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने हाथ से सय्यिदा के आंसुओं को पोंछा, उसके बाद चहेते नातियों को बुलाया। हज़रत हसन और हुसैन (रज़ि०) भी नाना की बेक़रारी देख कर रो दिए। हुज़ूर (सल्ल०) ने जन्नत के इन दोनों गुलदस्तों को चूमा और उनके आदर-सम्मान के लिए वसीयत फ़रमायी, फिर हज़रत अली (रज़ि०) की तलबी के लिए हुक्म हुआ। हज़रत अली (रज़ि०) आए। परेशान, दुखी और विकल। हुज़ूर (सल्ल०) पर कमज़ोरी छायी हुई थी। मुबारक सिर को अली ने गोद में ले लिया। हज़रत अली (रज़ि०) को नसीहत फ़रमायी गयी।

अली नबी के हुजरे से बाहर चले गये तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने पवित्र सिर को अपने ज़ानू पर रख लिया। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के बेटे हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) इतने में मिस्वाक लिए हुये आ गये। मिस्वाक नर्म और ताज़ा थी। आप ने इसी हालत में मिस्वाक फ़रमायी और बोले—

—नमाज़—नमाज़—और लौंडी और ग़ुलाम के अधिकार!

इस के बाद अन्तिम शब्द—

अल्लाहुम-म-बिर्रफ़ीक़िल अआ़ला

(ऐ अल्लाह! सब से बड़े साथी (यानी अल्लाह) से मिलने की सिर्फ़ तमन्ना है)

बस फिर कोई आवाज़ न आयी। हज़रत आइशा (रज़ि०) के ज़ानू पर मुबारक सिर सुकून के साथ रखा था। नूरानी चेहरा और ज़्यादा सफ़ेद हो गया था, जैसे हुज़ूर (सल्ल०) सचमुच सो रहे हैं। चाश्त का वक़्त था, सोमवार का दिन, नबी (सल्ल०) की हिजरत का ११वाँ साल। मुबारक उम्र ६३ वर्ष और ४ दिन-जिसने दुनिया में भेजा था, उसी ने बुला लिया। मुबारक रूह पवित्र लोक में बड़े साथी से जा मिली—रहे नाम अल्लाह का।

पतिव्रता पत्नियां, घर वालों और सहाबा किराम पर दुख व रंज के पहाड़ टूट पड़े। किसी-किसी साथी की दशा तो यह थी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के देहान्त की सूचना पा कर खड़ा का खड़ा रह गया, मानो उस का शरीर निष्प्राण हो गया हो। दुख की अति ने गतिमान शरीर को थोड़ी देर के लिए मूर्ति बना दिया, दर व दीवार मूक भाषा में 'अल-विदा' कह रहे थे। हज़रत सय्यिदा फ़ातमा (रज़ि०) का कोमल तथा अबोध मन काव्य-भाषा में चीत्कार कर उठा—

'मुझ पर ऐसी विपत्तियां आ कर पड़ीं कि अगर दिन पर पड़तीं, तो रात बन जाता।'

हज़रत उमर (रज़ि०) पर इतना प्रभाव था मानो चुप्पी लग गयी हो। नंगी तलवार हाथ में ले कर बोले कि किसी के मुख से अगर यह निकला कि मुहम्मद (सल्ल०) की मृत्यु हो गयी तो कहने वाले का सिर उड़ा दूंगा। विचित्र परेशानी छायी हुई थी।

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के हुजरे में गये। पवित्र माथे को श्रद्धा के होंठों से चूमा और मस्जिदे नबवी में आ कर वक्तव्य दिया—

जो कोई मुहम्मद (सल्ल०) की भक्ति करता था, तो सुन ले कि उन (मुहम्मद सल्ल०) का देहान्त हो गया और जो कोई अल्लाह को पूजता था, वह समझ ले कि अल्लाह सदा से है और सदा रहेगा, वह सदैव जीवित है। अल्लाह का कथन है—

—मुहम्मद (सल्ल०) भी तो एक रसूल हैं। उन से पहले बहुत से रसूल और पैग़म्बर गुज़र चुके हैं। उनका अगर देहान्त हो जाए या क़त्ल कर दिए जाएं तो क्या तुम उलटे पांव फिर जाओगे? अगर कोई व्यक्ति फिर जाए तो वह अल्लाह को क्या हानि पहुंचा सकता है? और वह (अल्लाह) शुक्र करने वालों को अच्छा बदला देगा।

—सूरः आले इम्रान, आयत १४४

'अल्लाहुम-म सल्लि अला मुहम्मदिंव-व-अला आलि मुहम्मदिंव व बारिक व सल्लिम

'ऐ अल्लाह। तू रहमतों की बरिश कर हज़रत मुहम्मद पर और हज़रत मुहम्मद की आल पर और बरकतों और मेहरबानियों से नवाज़!' □

# जीवंत संदेश

सामान्य नियम है और नियम क्या है, यही होता है और हुआ करता है कि उपन्यास के नायक के देहान्त के बाद उपन्यासकार की लेखनी भी रुक जाती है और उपन्यास का अन्त कर दिया जाता है- अन्त End! जब नायक का जीवन ही समाप्त हो गया तो उस से संबंधित उपन्यास कैसे आगे बढ़ सकता है, उसे भी समाप्त हो जाना चाहिए। हर आरंभ को इसी अंत की त्रासदी का मुंह देखना पड़ता है—पर 'दुर्रे यतीम' (जिसका इंतिज़ार था) के नायक 'अल्लाह के रसूल (सल्ल०)' के जीवन और मृत्यु का दूसरों के मरने-जीने पर कदापि अनुमान न कीजिए। 'अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०)' का फ़रमान, संदेश, चरित्र-आचरण और जीवन की एक-एक त्रासदी उसी प्रकार जीवित है, जैसे वह मक्का, मदीना, तायफ़, बद्र, हुनैन, ख़ंदक, खैबर और तबूक में जीवित, व्यवहार्य, अनुकरणीय और चलायमान थी। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के संदेश और जीवन-आदर्श को पतन और विनाश से सुरक्षित बना दिया गया है, सितारों के दीपक और सूर्य-चन्द्र के हंडे बुझ सकते हैं, पर अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) हिदायत के जिस दीप को ले कर आए थे, वह बुझ नहीं सकता। सैकड़ों धर्म-युद्ध और हज़ारों महाभारत उस को नहीं बुझा सकते, लोगों ने कोशिश करके भी देख ली, पर विफल रहे। यह दीप तो आंधियों की गोद में सदा जला किया है, विरोध इस का कुछ बिगाड़ न सका। अल्लाह से कौन लड़ सकता है? मुहम्मद (सल्ल०) और उनके संदेश का विरोध वास्तव में खुदा के मुक़ाबले में युद्ध-नाद और युद्ध-घोष है ।

तलवार ही नहीं, क़लम, पुस्तक और भाषाओं ने भी अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के विरुद्ध युद्ध-मोर्चे बनाये। शैतान झूठे और छली नबियों के भेष में आए, पर झूठ पनप न सका। झूठ खुल कर रहा। बुद्धिजीवियों और विवेकियों की दृष्टि में धूल न झोंकी जा सकी। मूर्ख, भाग्यहीन और दुष्ट ज़रूर इस धोखे में आ गए, उन को आ जाना ही चाहिए था। शैतान को इस

दुनिया में अपना मिशन चलाने के लिए कुछ साथी और चाटुकार भी तो चाहिएं -सत्य से असत्य का टकराव तो जारी रहेगा। प्रकृति की ज़ोरदार मसलहत छिपी हुई है-पर सत्य वाले, सत्य के अनुयायी असत्य की इस छेड़छाड़ से न घबराते हैं न परेशान होते हैं। ऐसी परीक्षाओं और संघर्षों को देख कर उनका ईमान और बढ़ जाता है और उन की कार्यशीलता सक्रिय हो उठती है।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का संदेश जीवित है, कार्य जीवित है, आपके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द जीवित है। पवित्र जीवन की एक-एक गति सुरक्षित और जीवित है-फिर मृत्यु और अन्त कैसा? अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) आज भी उसी प्रकार नबी हैं जिस प्रकार आज से चौदह सौ साल पहले थे। समस्त पुण्य नेतृत्वों का केन्द्र अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) का व्यक्तित्व है, जो नेतृत्व और केन्द्र सत्य से हटा हुआ है, वह प्रायः भ्रष्टता और भटकाव हैं-चाहे कौम में वह एक लाख 'अतातुर्क-कमाल' ही क्यों न पैदा कर दे। □

# अदी ने देख लिया

अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) निश्चय ही अल्लाह के बन्दे और इन्सान थे और यही 'इन्सान होना' आपके पूर्णता प्राप्त होने का प्रमाण है-पर कैसे बन्दे? जिसको जन्नत की शुभ सूचना दे दी उस पर जन्नत अनिवार्य हो गई। ख़ंदक़ की लड़ाई में जब भारी पत्थर को हुज़ूर ने कुदाल से तोड़ा है तो सल्मान ने कुदाल की चोट की रोशनी में शाम, मिस्र, ईरान के वे क्षेत्र देख लिये थे, जिन पर आगे चल कर इस्लाम की पताका फहराने वाली थी।

हातिमताई को कौन नहीं जानता? दानशीलता ने उसके सिर पर ख्याति का ताज रख दिया है-उसी हातिम के बेटे थे-अदी, त्वै क़बीले के नामी सरदार, अदी बिन हातिम को भी इस्लाम स्वीकारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हुज़ूर (सल्ल०) ने अदी बिन हातिम से फ़रमाया था—

'वह समय निकट आ रहा है जब तू सुन लेगा कि क़ादसिया से एक औरत अकेली चलेगी और मक्के का हज करेगी और उसे अल्लाह के सिवा किसी प्रकार का डर व भय न होगा। बाबिल की धरती का चमचमाता महल मुसलमानों के हाथों जीत लिया जाएगा'।

अदी ने इस भविष्यवाणी के एक-एक अक्षर को अपनी आंखों से पूरा होता देख लिया। नौशेरवां के महल भी मुसलमानों के क़ब्ज़े में आ गए और कादसिया से एक औरत अकेली मक्का को हज करते हुए आती भी देख ली।

मुहम्मद (सल्ल०) खुदा के रसूल और बंदे भी—हर प्रकार की भलाइयों के स्वामी —यह भी हुआ है कि घर में कई-कई दिन चूल्हा गर्म नहीं हुआ, उपवास पर उपवास हो रहे हैं, और यह भी देखा गया कि थोड़े से खाने पर हुज़ूर (सल्ल०) ने कर कमलों को फेरा और एक गिरोह ने पेट भर कर खाना खाया, फिर भी खाना बच गया। पानी की छोटी सी छागल में हाथ डाल दिया तो उंगलियों से पानी के फ़ौवारे छूटने लगे और पूरा कारवाँ अपनी ज़रूरत पूरी करता रहा। □

# सब के रसूल

बिना किसी अतिशयोक्ति के पूरी ईमानदारी और ज़िम्मेदारी के साथ कहा जा सकता है कि इतिहास की पुस्तकों में अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) जैसा संपूर्ण तथा व्यापक व्यक्तित्व नहीं उभरता। किसी के यहां दया और क्षमा ही क्षमा है, कोई युद्ध कौशल और विजय प्राप्ति को उभारता है, कहीं शासन और व्यवस्था की जगमगाहटें हैं और कहीं उपवास और संसार त्याग की सादगी और यही नहीं, कोई कलदानियों को संमार्ग का संदेश देता है। कोई बनी इस्राईल को संबोधित कर रहा है। किसी को सालबंद और नैनवा के भटके हुओं को मार्ग-दर्शन अभिप्रेत है। कोई चीन की राज्य सीमाओं से एक क़दम आगे नहीं बढ़ाता, किसी का संदेश मात्र ईरान के आस-पास गूंज कर रह गया। किसी की बांसुरी गोकुल व्रन्दाबन के पास पड़ोस को गुंजरित करती रही-पर मुहम्मदे अरबी (सल्ल०) का संदेश देश और क्षेत्र की सीमाओं में सीमित न रह सका। प्रशांत महासागर का तट हिन्द और रूम महासागरों के द्वीप, दजला और फ़रात के किनारे, सिंध का मरुस्थल, बेस्तून की पर्वतीय घाटियां, लेबनान और अलबुर्ज़ के टीले, नील की तराई, परनीज़ की चोटियां, फ़ारस के अग्नि कुण्ड, भारत की तीर्थ स्थलियां, चर्चों की मीनारें, और मंदिरों के दरो दीवार इस संदेश से गूंज उठे। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के नव-संदेश ने क़ौमों के भाग्य बदल दिये। काले-गोरे, उजले-लाल, नीले-पीले, छोटे-बड़े, ज्ञानी-अज्ञानी, मर्द-औरत, ग़रीब-अमीर ने भी यथारुचि लाभ उठाया। इसी संदेश के कारण ग़ुलाम भी यकायकी पस्तियों से उछल कर शासन और नेतृत्व के पदों पर आसीन हो गये-यह क्रांति चेहरों और शक्लों की नहीं चिंतन और दृष्टि की, अन्तरात्मा और अन्तर्ज्ञान की थी। इसने चोरों और लुटेरों को अति आचरणशील और शान्तिप्रिय बना दिया। अवज्ञाकारियों और दुराचारियों में आज्ञापालन और सदाचार की अनश्वर आत्मा को जन्म दिया। इस क्रान्ति ने शुद्ध संस्कृति और पवित्र सभ्यता की नींव रखी—और न केवल नींव, बल्कि पूरी इमारत खड़ी कर दी, जिसकी एक-एक ईंट यथोचित संतुलन और रचना-कौशल का आदर्श है। ☐

# झलकियां

भक्ति और उपासना की वह स्थिति कि रात-रात भर अल्लाह के दरबार में खड़े रहते, मुबारक पांव सूज जाते। साथियों ने कहा कि हूज़ूर! इतना परिश्रम क्यों करते हैं? जबकि अल्लाह ने आपके अगले-पिछले गुनाहों को माफ़ कर दिया है। साथियों के इस प्रश्न के उत्तर में आपने कहा—'क्या मैं आज्ञाकारी बन्दा न बनूं?'

शूर-वीरता की यह दशा कि खूनी लड़ाइयों में जब अच्छे अच्छों के पैर उखड़ जाते तो आप इस प्रकार अडिग खड़े रहते मानो कुछ हुआ ही नहीं। शान्ति, धैर्य, निर्भीकता और खुदा की याद—ख़ैबर के विजेता शेरे खुदा हज़रत अली (रज़ि०) का कथन है कि लड़ाई जब घमासान की हो जाती तो हम (सल्ल०) की शरण खोजते थे। हुनैन की लड़ाई में साथियों के क़दम डगमगा गये थे, आतंक और घबराहट छा गई थी, पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पहाड़ की तरह अडिग खड़े थे।

एक समय की बात है। मदीने में शोर मचा कि लुटेरे आ गये। पूरे नगर में खलबली मच गई। माताओं ने अपने बच्चों को कलेजे से चिपटा लिया। हर व्यक्ति घबरा रहा था कि न जाने कौन विपदा आने वाली है? डाकू हथियारों से लैस होकर आए होंगे। न जाने किस-किस की बीवियां विधवा और किस-किस के बच्चों को यतीम होना पड़े—लोग सोच ही रहे थे कि क्या करें, क्या न करें? हुज़ूर ने तलवार ली और घोड़े पर सवार होकर नगर से बाहर पहुंचे और पूरा चक्कर लगा कर वापस लौटे और तसल्ली देते हुये कहा—'लोगो! कुछ नहीं है! कुछ नहीं है!'

विनम्रता का यह हाल कि हुज़ूर (सल्ल०) किसी के यहां तशरीफ़ ले जाते तो किसी ऊंची जगह और विशिष्ट स्थान पर बैठने का कदापि यत्न न करते। साधारण व्यक्तियों के साथ उन्हीं के बराबर में बैठ जाया करते।

शीमा हुज़ूर (सल्ल०) की दूध शरीक बहन थीं। हवाज़िन के क़बीले के

लोग गिरफ़्तार होकर आये तो उन में शीमा भी थीं। उन को देख कर हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी चादर बिछा दी—शीमा के क़दम और अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) की चादर—आश्चर्य! पर इसमें आश्चर्य की क्या बात है? कृपानिधान (सल्ल०) का दान भाव इसी तरह उद्वेलित होता है।

एक बार की घटना है कि एक व्यक्ति ने श्रद्धाभाव के साथ हुज़ूर (सल्ल०) के शुभ हाथों को चूमना चाहा तो आपने अपना हाथ खींच लिया और कहा—'यह अजमियों का काम है।'

हब्श के बादशाह नजाशी ने अपने कुछ दूत आपकी सेवा में भेजे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने स्वयं उन लोगों का सत्कार किया। साथियों ने कहा—'ऐ अल्लाह के रसूल! आप क्यों कष्ट करते हैं? यह काम तो हमें करने दीजिए।'

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया- 'उन्होंने मेरे साथियों का आदर-सत्कार किया था। मैं उसका बदला देना चाहता हूं।'

उदारता की यह शान कि अपने परिवार वालों पर सदक़ा (दान पुण्य) हराम कर दिया। हुज़ूर ने सार्वजनिक घोषणा कर दी कि जो कोई मुसलमान मर जाए उसका ऋण में चुकाऊंगा और उसके धन-संपत्ति के वारिस उसके नातेदार होंगे।

लाडली बेटी फ़ातमा (रज़ि०) के सिर पर साबित ओढ़नी भी न थी और सर्व साधारण में आप माल और दौलत बांट रहे थे। बहुत बार ऐसा हुआ कि मांगने वाले ने मांगा और हुज़ूर (सल्ल०) ने बकरी का दूध या आटा मांगने वाले को दे दिया और आपके घर में वह दिन उपवास का दिन बन गया—

साइल को नाकाम न फेरा, बख़्श दिया जो कुछ घर में था, भूखा सो रहने की आदत, सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किसी को-माल और जिंस देते तो खूब नीचा तौलते, और किसी से लेते तो इस पर ध्यान न देते। ऊंचा तौल देता तो भी आपको अप्रिय न लगाता। माल और दौलत कभी जमा ही न किया। जो कुछ आता ज़रूरतमंदों में खड़े-खड़े बांट देते।

एक ज़रूरमद ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर कुछ मांगा। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि इस समय मेरे पास देने के लिए कुछ भी नहीं है, तुम मेरे नाम पर किसी से उधार ले लो, मैं तुम्हारा ऋण चुका दूंगा। हज़रत उमर

(रज़ि०) वहां बैठे हुयें थे, बोले—'अल्लाह ने आपको अपनी सामर्थ्य और शक्ति से बढ़कर काम करने का कष्ट नहीं दिया । इस पर हुज़ूर (सल्ल०) चुप हो गये । एक श्रद्धालु अंसारी वहां बैठा था, बोला—'ऐ अल्लाह के रसूल ख़ूब दीजिए । अल्लाह मालिक है तो फिर तंगी का क्या डर? अंसारी के उत्तर पर हुज़ूर (सल्ल०) को हंसी आ गई और पवित्र चेहरे पर बिखर-बिखर गई । फिर कहा हां मझे यही हुक्म मिला है ।'

मदीने में एक यहूदी था- हृदय का स्वच्छ और नीयत का साफ़ । इस्लाम के विषय में वह बहुत कुछ सुन चुका था पर अभी इस धातु के खरा सोना बनने में एक आंच की कमी रह गई थी । यहूदी ने अपने धर्म ग्रन्थ में पढ़ा था कि नबी बड़े ही सहनशील और उदार चेता होते हैं । इसे वह आज़माना चाहता था । उसने आज़माने के लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को खजूरें ऋण के रूप में दे दीं और ऋण चुकाने का जो दिन तय हुआ था उससे पहले वह आ धमका और हुज़ूर (सल्ल०) की मुबारक चादर को ज़ोर से झटका देकर बोला-- मुहम्मद! तुम हमारा ऋण क्यों नहीं देते? खुदा की क़सम! तुम अब्दुल मुत्तलिब के घराने वाले बड़े नादहन्द और लेलूट होते हो । हज़रत उमर (रज़ि०) से सहा न गया और बड़े ही तीखे स्वर में बोले--'ऐ ख़ुदा के दुश्मन! तूने ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) को जो कुछ कहा है, अगर हुज़ूर (सल्ल०) की अवज्ञा का डर न होता तो मैं तेरी गर्दन उड़ा देता ।' हुज़ूर (सल्ल०) ने उमर (रज़ि०) पर मुस्कान भरी दृष्टि डाली और नम्र स्वर में कहा— उमर! तुम्हें तो मुझसे ऋण चुकाने के लिये कहना चाहिए था, जाओ इसका ऋण चुका दो । और तुमने जो इसे डराया और धमकाया है उसके बदले में बीस 'साअ' (पैमाना) और अधिक दे देना ।

यहूदी पर सत्य खुल चुका था । कुछ अधिक सोचने की ज़रूरत न रह गः थी । वह उसी समय ईमान ले आया और पथभ्रष्ट लोगों की संगति से निकलक 'इनाम' पाए लोगों में सम्मिलित हो गया ।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अपना काम-काज खुद अपने हाथ से करते । कपड़े धो लेते, जूता गांठ लेते, जानवरों को चारा डालते, नौकर के साथ एक दस्तरख़्वान पर बैठकर खाना खाते, छोटे-बड़े सबको सलाम करने में पहल करते । लोगों के सलाम करने का इंतिज़ार न करते । पहनावा बहुत सादा और खाना मोटा-झोटा, ज़ो सामने आ गया सहर्ष खा लिया ।

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) कई साल सेवा में रहे, पर हुज़ूर

(सल्ल०) ने कभी किसी काम पर उन्हें सख़्त-सुस्त न कहा। अपने निज के लिए किसी से बदला न लेते, न किसी से लड़ते-झगड़ते और किसी की तबियत के ख़िलाफ़ बात का बुरा मानते। हां, धर्म के मामले में उत्तेजित हो उठते— यहूदी का एक लड़का हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा किया करता था, वह बीमार हो गया तो स्वयं उसके घर पैदल चलकर उसका पूछना किया।

अकारण बात न करते, अधिकतर चुप रहते, ज़रूरत पड़ने पर होंठ हिलते। बातें क्रम के साथ और ठहर ठहरकर करते कि कोई गिनना चाहता तो एक-एक शब्द को गिन सकता था। किसी व्यक्ति को उपदेश देना होता तो सबके सामने उसका नाम न लेते, बल्कि इस तरह कहते, आजकल लोग ऐसा-ऐसा करने लगे हैं।

जब कोई व्यक्ति अपनी ग़लती पर लज्जित होकर क्षमा चाहने के लिए हज़ूर (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होता तो मारे लज्जा के गर्दन झुका लेते— यूहन्ना ने हुज़ूर (सल्ल०) के मक्का में विजयी के रूप में प्रवेश करने के बारे में भविष्यवाणी की थी— 'उसके वस्त्र पर सम्राटों का सम्राट और खुदावन्दों का खुदावन्द लिखा होगा।'

दृष्टि वाले सैकड़ों वर्ष पहले हुज़ूर (सल्ल०) के पीछे सेनाओं का अनुशासन के साथ चलना अपनी अन्तर्दृष्टि से देख चुके थे— तो यूहन्ना का यही 'सम्राटों का सम्राट' जब मक्का में दाख़िल हुआ तो मुबारक सिर को इतना झुका दिया कि कजावे से लग गया।

हज़रत उमर (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ। हुज़ूर (सल्ल०) तहमद बांधे चटाई पर विश्राम कर रहे थे। चटाई के निशान आपके पवित्र शरीर पर उभरे हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। घर के एक कोने में सेर दो सेर जौ पड़े थे और दीवार पर चमड़ा लटका था। इस दीन हीनता को देखकर मेरी आंखों में सहज ही आंसू भर आए। हुज़ूर (सल्ल०) ने मेरी आंखों में उभरी नमी को पहचान लिया। बोले— 'ऐ ख़ताब के बेटे! तुझे किस चीज ने रुलाया? मैंने कहा— 'ऐ अल्लाह के रसूल! मैं रोऊं नहीं तो और क्या करूं? क़ैसर और किसरा तो सोने के तख़्त और हरीर व दीबा के नर्म फर्श पर मज़े उड़ाएं और आप खुदा के पैग़म्बर और उसके चुने हुए व्यक्ति इस हाल में बोरिए पर जीवन बिताएं! हज़रत उमर

(रज़ि०) के उत्तर पर आपने फ़रमाया— 'खत्ताब के बेटे! क्या तू इस पर तैयार नहीं है कि उनके लिए दुनिया हो और हमारे लिए आख़िरत!'

दफ़्तर तमाम गश्त व बपायां रसीद उम्र
माहम चुनां दर अव्वले वसफ़े तो मांदाएम ।

(दफ़्तर का दफ़्तर समाप्त हो गया और उम्र अपने अंत को पहुंच रही है, फिर भी मैं अभी तक आपके पहले गुण का ही बखान करने पर लगा हूं ।)

लेकिन दृष्टि वालों और ज्ञानियों के लिए इन अधूरे चित्रों में ही बहुत कुछ शिक्षा सामग्री मिल सकती है । हृदय में दर्द और मन में निष्ठा हो तो फूल पत्तों को देख कर शिक्षाएं ग्रहण की जा सकती हैं, आंख वालों के लिए घास की एक पत्ती भी प्रकृत्ति-पुस्तक से कम नहीं है । और इस पुस्तक में तो वास्तविकताएं और सचाइयाँ प्रकट की गई हैं । इन घटनाओं में सत्य है, जीवन है, प्राण है ।

अब किसी के दिल की आंख बिल्कुल ही अन्धी हो गई हों तो उसका कोई इलाज नहीं । अन्तर्दृष्टि में थोड़ी सी ज्योति भी मौजूद है तो 'जिसका इन्तज़ार था' को पढ़ कर यह कहने पर विवश हो जाएगा— कैसा, और बस यही जीवन सच्चाई का अन्तिम मानदण्ड है ।

रमज़ान की २८वीं १३६८ हि० की प्रातः उदित होने वाली है । समीर के झोंके मदमत्त बना रहे हैं, आस-पास से कुरआन-पाठ की मनमोहक ध्वनि गुंजरित हो रही है । और उपन्यासकार हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर दरूद व सलाम भेज रहा-है । कृपा निधान पर सलाम! अन्तिम रसूल पर सलाम! मानवता के महान उपकारी पर सलाम! अब्दुल्लाह के लाडले यतीम पर सलाम!

**—माहिरुल क़ादरी**